मंगलाचरणम्

स: श्रीमान् श्रुतशालिनाँ सुयमिनां संविग्नशांतात्मनाम् ।
संक्लिष्टेषु कृपावतां भवभयोच्छित्यै प्रवृत्तात्मनाम् ।।
जीवाद्येषु जिनोदितेषु विमलं निःशंकश्रद्धावताम् ।
भव्यानामपि शांतिसागरगणी श्रेयो विधत्तां च मे ।।

मूल्य १०)

आज मरण भी अमर बन गया छूकर चरण तुम्हारे ।

नया उपमान खोजो कवि !

रचयिता—श्री "तन्मय" बुखारिया ललितपुर

नया उपमान खोजो, कवि !
हिमालय कह नहीं सकते,
कि वह विचलित हुआ है !!

[१]

तुम्हारे कोष की भाषा न उसमें व्यंजना - क्षमता,
'अविचलित' के लिए संभव नहीं कोई कहीं समता;
स्वयम्-से वे स्वयम् ही थे तभी तो 'शांति-सागर' नाम
ही प्रचलित हुआ है नया उपमान खोजो, कवि !!

[२]

विलासों ने बहुत चाहा कि बहला लें जवानी को,
जनम ने अन्त में चाहा कि दुहरा लें कहानी को;
समाधि-स्थिति मरण के सामने पर कर्म क्या करता—
विमुख विगलित हुआ है नया उपमान खोजो, कवि!!

[३]

तरल तप-तेज, उनको मृत्तिका-तन मात्र-कारा था,
उन्हें उस लोक के जिज्ञासु श्रमणों ने पुकारा था !
कि उनसे सीख लें चिन्तन, कि उनसे सीख लें संयम,
तभी तो वे गए बरबस, जगत विकलित हुआ है !

हिमालय कह नहीं सकते,
कि वह विचलित हुआ है !!
नया उपमान खोजो, कवि !!!

❀ विषय सूची ❀

१. कवितायें

२. लेख

गुणपुञ्ज, विश्वोपकारक, सत्यद्रष्टा सच्चरित्र की मूर्ति पावन महात्माओं के संस्मरण मन को दूषित भाव धारा से मुक्त कर देते हैं, अतः उनका परोक्ष संस्मरण भी आध्यात्मिक विचारधाराको निर्मल बनाने के लिये परम-उपयोगी है। विश्वनमस्करणीय आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज भी इस युग के उन महान पुरुषों में से अन्यतम हुए हैं जिनके चरण-चिन्ह मुमुक्षु जनता के लिये अनुकरणीय या अनुचरणीय पथ-पद हैं। जैन गजट के इस अंक द्वारा उनके पुनःस्मरण में जितना समय लगा वह सौभाग्यमय है।

परमपूज्य आचार्य श्री का दूध के समान स्वच्छ पवित्र जीवन तथा उनका अनुपम वीरमरण जितना अभिनन्दनीय तथा उल्लेखनीय रहा जैन गजट का यह श्रद्धांजलि अंक उतना उसके अनुरूप नहीं रहा. फिर भी जो कुछ रहा वह पाठक बन्धुओं के समक्ष है।

इस अंक के निर्माण में बीजभूत सत्प्रेरणा तथा उत्साह भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के महामन्त्री श्री जातिभूषण ला० परसादीलाल जी पाटनी से प्राप्त हुआ, उनके अनेक सुझाव और विविध आयोजनों ने इस अंक की तयारी में मूल शक्ति का कार्य किया है। वीरवर यशस्वी सेनानी भारतमाता के अमर सुपुत्र श्री सुभाषचन्द्र बोस की हिन्द सेना के प्रकाशनाध्यक्ष, नवभारत टाइम्स के सम्पादक मण्डल के अन्यतम सदस्य, सुलेखक श्री सोमसुन्दरम् के सौम्य सुन्दर सहयोग ने इस अंक के निर्माण तथा प्रकाशन में महान कार्य किया है, आपका सौजन्य और उत्साह एवं प्रयास प्रशंसनीय रहा। जैन गजट के सुयोग्य प्रकाशक श्री पं० बाबूलाल जी शास्त्री एवं महासभा के मैनेजर श्री पं० शिखरचन्द्र जी विशारद ने इस श्रद्धांजलि अंक के प्रकाशन में बहुत कार्य किया है, मेरे कलकत्ता चले जाने के कारण आप लोगों को इस कार्य में बहुत परिश्रम करना पड़ा है।

विविध कार्य-व्यस्त रहते हुए भी हमारे साधारण प्रेरणा का आदर करके विद्वान लेखकों ने अपने सुलेख भेजकर इस अंक के निर्माण में शरीर के विभिन्न उपयोगी अंगों का कार्य किया है। उनके इस स्वार्थ साधन शून्य प्रयास ने वृक्ष की शाखाओं पर पुष्पों के समान अंक के सौन्दर्य साधन का कार्य किया है, स्वस्ति श्री पट्टाचार्य विद्वान भट्टारक श्री स्वामी लक्ष्मीसेन जी कोल्हापुर तथा तार्किक ठोस विद्वान श्री प० जीवन्धर जी न्यायतीर्थ इन्दौर का तो संभवतः लेख लिखने में यह आद्य प्रयास है, तुच्छ प्रेरणा का उन्होंने कितना आदर किया यह उनके लेख से प्रगट होता है।

इनके अलावा, श्रद्धेय पं० जगन्मोहनलाल जी, पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री, सम्पादक अहिंसा, पं० वर्द्धमानजी शास्त्री, सम्पादक विश्वबन्धु, प० सुमेरचन्द्र जी दिवाकर, पं० बलभद्रजी न्यायतीर्थ सम्पादक जैन सन्देश, बाबू कामताप्रसाद जी, सम्पादक अहिंसावाणी जैन धर्म के मर्मज्ञों तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं लेखक पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार, 'नव भारत टाइम्स' दिल्ली के यशस्वी सम्पादक श्री अक्षयकुमारजी जैन, "विश्वदर्शन" के सम्पादक एव सुलेखक श्रीयशपाल जैन आदि विद्वानों ने हिन्दी एवं अंग्रेजी में मार्मिक लेख लिखकर विशेषांक का महत्व बढ़ाया है। श्री "तन्मय" बुखारिया, श्री हरिप्रसाद जी, राजेन्द्र कुमार जी 'कुमरेश', श्री पं० लालाराम जी शास्त्री, श्री पं० खूबचंद जी शास्त्री,

आदि सुकवियों ने अपनी सुकविताओं से इस अंक की सौरभ वृद्धि की है। इन सब लेखकों एवं कवियों का हम विशेष रूप से आभार मानते हैं। श्री सोमसुन्दरम जी और पं० शिखरचन्द जी ने आचार्य श्री की सल्लेखना सम्बन्धी विवरण एवं चित्र आदि प्राप्त करने के लिए तपोभूमि कुन्थलगिरि एवं अन्य सम्बन्धित स्थानों की विस्तृत यात्रा की। इन विवरणों के आधार पर श्री सोमसुन्दरम जी ने "स्वर्ग के सोपानों पर" शीर्षक जो लेख लिखा है, वह सल्लेखना के उन दिनों का सजीव एवं सुन्दर शब्द चित्र है जिसे पढ़कर विज्ञ पाठक मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार पं० शिखरचन्द जी ने अपनी यात्रा का जो रोचक विवरण प्रस्तुत किया है वह भी पठनीय है।

इस आर्थिक युग में जब तक आर्थिक सहयोग प्राप्त न हो तब तक कोई भी मनोनीत कार्य पल्लवित नहीं होता अतः इस अंक के आर्थिक सहयोगदाता महानुभावों की उदारता ने भी कार्य कारणी शक्ति का कार्य किया है।

इसके अतिरिक्त जिन महानुभावों ने दिवङ्गत आचार्य श्री के लिये अपनी विनीत श्रद्धा के सुगन्धित पुष्प भेंज कर इस श्रद्धांजलि अंक में सुगन्धि प्रदान की है, वह पाठक महानुभावों का हृदय सदा प्रफुल्लित करती रहेगी।

शक्ति प्रिंटिंग प्रेस के संचालक श्री पं० ओमप्रकाश जी, रामनाथ जी तथा उनके कर्मचारी गण ने भी प्रशंसनीय सहयोग प्रदान किया है।

उक्त समस्त महानुभावों का बहुत आभार है, आभार मानने तथा उन्हें साधुवाद प्रदान करने के अतिरिक्त हम उनकी अमूल्य सेवाओं का अन्य कुछ मूल्य उन्हें भेंट नहीं कर सकते।

श्रद्धांजलि-अंक तयार होने से ही पहले हमें कलकत्ता जाना पड़ा अतः इस अंक की तयारी में, सम्पादन में तथा प्रूफ देखने में यथेष्ठ प्रयत्न नहीं हो पाया, अतः पाठक महानुभाव त्रुटियों को लक्ष्य न बनावें ऐसी नम्र प्रार्थना है।

हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ भारतीय सज्जनों तथा विदेशी विद्वानों के लिये इस अंक में अंग्रेज़ी भाषा का भी एक स्वतन्त्र विभाग दिया गया है।

जिनकी पुनीत श्रद्धा में जैन गजट का यह अंक प्रकाशित हो रहा है वे आध्यात्मिक आचरण और शुद्धि के पथ-प्रदर्शक, निर्दोष चर्या के परिपालक आचार्य प्रवर स्वर्गस्थ आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज अपने अभीष्ट प्रारब्ध उद्दिष्ट आत्मिक सुकार्य में पूर्ण सफल हों ऐसी अन्तः कामना है।

—सम्पादक

फुटकर सहायता

इस विशेषांक में निम्न महानुभावों ने फुटकर सहायता दी है।

४३) जैन समाज वारसोईहाट, ४१) जैन समाज जैसीनगर, २१) पं० शिवमुखराय मणीन्द्रकुमार शास्त्री मारौठ ७)भागीरथ लखमीचन्द जैन पा० ट्रस्टफंड उज्जैन, ५)केशरीमल मिश्रीलाल टोडारायसिंह, ५)कमलकुयार सर्राफ अवागढ़ २) स्व० जावित्रीदेवी अवागढ़, २) मानकचन्द जैन अवागढ़, २) श्रीदेवी अवागढ़, २) भगवती देवी अवागढ़ १) जयदयाल अवागढ़ १) कमलकुमार पंसारी अवागढ़

प्रकाशक की ओर से

परम पूज्य, प्रातः स्मरणीय, श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज की अमर सल्लेखना की भव्य एवं प्रेरणाप्रद स्मृति को स्थायी रूप देने के उद्देश्य से "जैन गजट" का यह "श्रद्धांजलि विशेषांक" प्रकाशित करते हुए मैं अपने को धन्य मानता हूँ। "जैन गजट" के विशेषांकों की जो माला मेरे प्रकाशकत्व में सन् १९४२ में "अपरिग्रह विशेषांक" के साथ आरम्भ हुई थी, उसका यह नवीनतम एवं अमर सुवास-भरा सुमन है, ऐसी मेरी धारणा है।

आचार्य श्री की सल्लेखना एवं इंगिनी मरण, आज के जडवादी संसार को रोमांचित करने वाली आध्यात्मिक घटना थी, जिसका महत्व न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए, अपितु आने वाली पीढ़ियों के लिए भी अत्यधिक मूल्य का होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। भौतिक प्रगति की चकाचौंध में आत्म-विस्मृत हो, मानव समाज आध्यात्मिकता की ओर से विमुख-सा हो गया था। आचार्य श्री की मृत्युंजय तपस्या ने उसे झकझोर कर इस चिरन्तन सत्य का फिर एक बार बोध करा दिया कि आत्मा पुद्गल से पृथक है, स्वतन्त्र है और श्रेष्ठ भी। ज्यों ज्यों समय बीतता जायेगा, आचार्य श्री के वीर मरण का महत्व भी त्यों-त्यों बढ़ता ही जायेगा। विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में आचार्य महाराज की भव्य सल्लेखना स्थायी स्थान प्राप्त कर चुकी है। अतएव, इस ऐतिहासिक पर्व के विवरण को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना, हमारे जैसे लोगों का, जिन्हें इन लोकोत्तर महातपस्वी के समकालीन होने का महान गौरव प्राप्त है, अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है।

इसी कर्त्तव्य-निष्ठा से प्रेरित होकर हम यह विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। जिन यतीन्द्र की आध्यात्मिक साधना की स्मृति में यह प्रकाशित हो रहा है, उसके सर्वथा अनुरूप इसे बनाना हमारे-जैसे दुर्बल मानवों की सीमित शक्ति एवं सामर्थ्य के बाहर की बात थी। हां, इतना मैं अवश्य कहूँगा कि हमने इस विशेषांक को उतनी ही श्रद्धा, लगन एवं परिश्रम के साथ तैयार किया है, जितनी कि श्रद्धा के साथ कोई धर्मनिष्ठ शिल्पी, देव-प्रतिमा का निर्माण करता है। हमें आशा है कि गुणग्राही पाठक हमें इसकी कमियों के लिए क्षमा करेंगे और हमारी इस विनम्र भेंट को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

इस विशेषांक को तैयार करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कितने ही महानुभावों ने हाथ बटाया है। उन सबके प्रति मैं कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ।

विशेषांक प्रकाशित करने की प्रेरणा देने वाले, उसकी योजना बनाने वाले तथा अथक परिश्रम एवं सामयिक सूझ-बूझ के साथ उसके प्रकाशन को सफल बनाने में अमूल्य सहयोग देने वाले, महासभा के महामन्त्री, जातिभूषण लाला परसादीलाल जी पाटनी के प्रति मैं किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करूं? यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि उनकी असाधारण लगन, सुयोजित कार्य दक्षता एवं अध्यवसाय के ही बल पर यह अंक इस रूप में प्रकाशित हो सका है।

विशेषांक के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने, तथा सजाने में "नव भारत टाइम्स" दिल्ली के सहायक सम्पादक श्री सोमसुन्दरम जी, पं० अजितकुमार जी शास्त्री तथा महासभा के मैनेजर पं० शिखरचन्द जी का परिश्रम सराहनीय रहा। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। विशेषांक में जिन लेखकों कवियों एवं श्रद्धालुओं ने अपनी रचनायें और श्रद्धांजलियां भेजकर अनुग्रहीत किया है, उनको भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मुद्रण के कार्य को इतने आकर्षक एवं सुन्दर ढंग से सम्पन्न करने के लिए मैं वदलिया प्रिंटिंग प्रेस, शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, रूबी आर्ट प्रेस के मालिकों कर्मचारियों का अत्यन्त आभारी हूँ। इनके अलावा ब्लाक बनाने वाले रामचन्द एण्ड कम्पनी, दिगम्बर आर्ट काटेज के कारीगरों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। उत्तम ढंग से विशेषांक की जिल्द बांधने वाले कुशल सुरेश एण्ड कम्पनी के संचालकों एवं कारीगर को भी धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है।

कई अनिवार्य कारणों से विशेषांक के प्रकाशन में अप्रत्याशित विलम्ब हो गया है। सहिष्णु पाठकों एवं समाज से प्रार्थना है कि इसके लिए हमें क्षमा करेंगे और इस श्रद्धा—सुमन को कृपा पूर्वक स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत करें।

बाबूलाल शास्त्री

Editor's Note

The supreme sacrifice of Acharya Shanti Sagar Maharaj has added a glorious chapter to the spiritual history of mankind. The great saint, by his memorable penance, demonstrated the superiority of the spirit over matter at a critical juncture of world-history, when men, dazzled by the blinding glamour of mechanical progress and material achievements, had almost forgotten the real purpose of life. His great fast assumes, therefore, equal importance and value to the entire human race irrespective of colour or creed.

It is with a view to give an idea of the late saint's personality and the noble cause he lived and died for to our non-Hindi-knowing brothren that we have included some articles in English, in this "Homage Number". Written by authoritative scholars, these articles, we are sure, will help the readers understand the basic principles of Janism and also know the Acharya as a man, a saint and as a spiritual guide of mankind.

Ajit Kumar Shastri
Editor

卐 महामन्त्री जी का वक्तव्य 卐

दिगम्बर जैन समाज के महान उद्धारक, वीतराग परम तपस्वी चारित्र्य चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज की ऐतिहासिक सल्लेखना एवं इंगिनी-मरण, आधुनिक आध्यात्मिक जगत की एक अद्वितीय महत्व पूर्ण घटना थी। वैसे दिगम्बर जैन यतियों में समय समय पर अनेकों ने सल्लेखना धारण की होगी, परन्तु ईसा से पूर्व सन २६० को प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी की सल्लेखना के उपरान्त १० वीं शताब्दी तक मार्ग अविच्छिन्न चलता रहा। इधर एक हजार वर्ष में इतनी व्यापक ऐतिहासिक गरिमा की सल्लेखना शायद ही अन्य किसी ने धारण की हो, जितनी कि आचार्य श्री ने। अपने इस अद्भुत व्रत द्वारा आचार्य श्री ने जहां जैन समाज में एक नयी ही स्फूर्ति एवं प्रेरणा का संचार किया, वहां विज्ञान-सेवी आधुनिक जगत के सम्मुख इस महान सत्य का निरूपण भी कर दिया कि चैतन्य जड़ से महत्तर है और अधिक शक्तिमान भी। अन्य सब प्रकार से स्वस्थ होने पर भी केवल दृष्टि के क्षीण होने के कारण साधु-चर्या में अन्तराय आने की एक मात्र आशंका से कोई यती सल्लेखना धारण कर सकता है और शान्ति एवं सम्यक्त्व के साथ मरण को वरण कर सकता है, इसकी कल्पना भी करना जड़वादी आधुनिक समाज के लिए असम्भव था। उसी को आचार्य महाराज ने सम्भव सिद्ध कर दिया। इतना ही नहीं, अपितु अन्तिम क्षण तक उन्होंने अपने मन, वचन एवं काय पर आश्चर्यजनक नियन्त्रण कायम रक्खा और आत्मा के ध्यान में लीन हो, होठों से ओंकार जप करते हुए, उन्होंने अपने नश्वर शरीर को उसी निर्मोही रूप से विसर्जित किया, जैसे कोई जीर्ण कन्था को उतार फेंकता है। ऐसी उत्कृष्ट, सर्वथा स्वच्छ प्राणाहुति को प्रत्यक्ष देख कर यदि समस्त शिक्षित संसार विस्मय-चकित एवं श्रद्धा-वनत हो गया है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

जिन धर्म- दीपक आचार्य श्री की इस अदभुत सल्लेखना ज्योति को अक्षुण्ण बनाये रखने, तथा कृतज्ञ समाज की ओर से उनकी पुण्य स्मृति को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करने के उद्देश्य से भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने जो विनम्र प्रयास किया है, वही जैन गजट के इस श्रद्धांजलि विशेषांक के रूप में श्रद्धालु पाठकों के सम्मुख उपस्थित है।

आचार्य महाराज के पावन चरणों में इस श्रद्धा-सुमन को अर्पित करते हुए हम उसकी तुच्छता को भली प्रकार अनुभव कर रहे हैं। फिर भी यदि हम इसे भेंट करने का साहस कर रहे हैं तो उसका कारण हमारा यह विश्वास ही है कि हमारे हृदय की सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति को दृष्टि में रखकर आचार्य श्री की अमर आत्मा एवं विद्वत् समाज इसे स्नेहपूर्वक स्वीकार कर लेगा। अस्तु।

हमारी यह अभिलाषा थी कि आचार्यश्री के तपस्यामय जीवन से हिन्दी भाषियों के साथ साथ अहिन्दी भाषियों—खासकर विदेशियों को भी परिचित कराया जाय। साथ ही, जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का भी संक्षेप में बोध कराना हमारा उद्देश्य था। इसीकारण इस विशेषांकमें हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी में भी कुछ प्रमुख विद्वानों के सार गर्भित लेख दिये गये हैं। हमें विश्वास है कि इससे जैन, धर्म के सम्बन्ध में अजैनों में—विशेषकर विदेशियों में—फैली हुई कुछ भ्रान्त धारणाओं का उन्मूलन हो सकेगा और वह जैन धर्म एवं समाज के सच्चे स्वरूप को कुछ अंशतक समझ सकेंगे। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर हमने इस विशेषांक की प्रतियां विदेशों के चुने हुए पुस्तकालयों को उपहार-स्वरूप भेट करने का निश्चय किया है। जिन धर्मनिष्ठ, उदारचेता महानुभावों ने इस शुभ कार्य में आर्थिक योगदान दिया है उनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित की जा रही है। हम उन सब सज्जनों का हृदय से आभार मानते हैं।

आचार्य श्री की अमर सल्लेखना के समय लिये गये अमूल्य चित्रों को संकलित कर इस विशेषांक में क्रमबद्ध रूप से दिया गया है जिससे सल्लेखना के आरम्भ से लेकर

चरमोत्कर्षतक आचार्य श्री की स्थिति का दैनंदिन का दृश्य पाठकों के सामने सजीव रूप से आ जाय। साथ साथ सल्लेखना की दैनन्दिनी भी अलग से दी गयी है जिसमें प्रत्येक दिन की मुख्य-मुख्य बातों का संक्षिप्त विवरण मिलता है।

आचार्य श्री का "चित्रमय जीवन-परिचय" एक नया ही प्रयास है। अत्यन्त परिश्रम से उपलब्ध चित्रों तथा धुंधले चित्रों के आधार पर बनायी गयी रेखानुकृतियों के सहारे, आचार्य श्री की बाल्यावस्था से लेकर सल्लेखना पूर्व तक की सम्पूर्ण जीवनी, चित्रों में ही दी गयी है।

आचार्य श्री के तथा उनसे सम्बन्धित कई अन्य रंगीन एवं साधारण चित्र भी अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जुटाकर इसमें दिये गये हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग डेढ़ सौ चित्र इस विशेषांक में दिये गये हैं। इन सब चित्रों को उपलब्ध कराने में जिन अनेकों श्रद्धालु महानुभावों ने हमारी सहायता की, उन सबके प्रति महासभा की ओर से मैं हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूँ।

अनेक जैन एवं अजैन विद्वानों तथा भक्तों के मूल्यवान लेख, संस्मरण, कवितायें एवं श्रद्धांजलियां इस विशेषांक में प्रकाशित हो रही हैं। अलग अलग उन सबके यहां नाम लेना स्थान-संकोच के कारण सम्भव नहीं। हमारी प्रार्थना स्वीकार कर, अपने व्यस्त जीवन की कुछ बहुमूल्य घड़ियां इस विशेषांक की शोभा एवं महत्व बढ़ाने में लगाने वाले उन सब महानुभावों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस विशेषांक के लिए इतनी विविध, एवं महत्वपूर्ण सामग्री जुटाने में तथा उसे आकर्षक ढंग से सजाने में स्थानीय "नवभारत टाइम्स" के सहायक सम्पादक श्री सोमसुन्दरम जी, जैन गजट के संपादक पं० अजितकुमार जी शास्त्री, पं० बाबूलाल जी शास्त्री, प्रकाशक, जैन गजट" तथा पं० शिखरचन्द जी विशारद, मैनेजर महासभा ने सराहनीय सहयोग दिया।

अनेक अप्रत्यशित कारणों से विशेषांक के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हो गया, जिसके लिए हम उदार पाठकों से क्षमा-प्रार्थना करते हैं। जिस महान पर्व की पावन स्मृति में यह श्रद्धा-सुमन अर्पित किया जा रहा है, यदि सहृदय पाठक इसे उसके शतांश भी उपयुक्त मानें तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

परसादीलाल पाटनी, महामन्त्री महासभा

सहायकों की नामावली

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में प्रकाशित इस विशेषांक के जो महानुभाव १०१) रुपया देकर सहायक बने हैं उनकी नामावली निम्न प्रकार है:-

१. सर सेठ हुकमचंद जी, राजकुमारसिंह जी ।
२. श्री सरसेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर।
३. श्रीमान एस० पी० जैन,
प्रोप्राइटर—जैन बुक एजेंसी, नई देहली ।
४. श्रीमान सेठ सुमेरचन्द जी पाटनी, लखनऊ।
५. श्रीमान कुन्दनलाल जी गंगवाल लखनऊ।
६. श्रीमान सेठ नथमलजी सेठी कलकत्ता
७. श्री सेठ भँवरीलालजी बाकलीवाल लालगढ़ ।
८. श्रीमान सेठ दीपचन्दजी चांदमलजी नागोर ।
९. श्रीमान सेठ जगन्नाथ जी पांड्या कोडरमा ।
१०. श्री सेठ चन्दूलालजी सराफ, बारामती ।
११. श्रीमान सेठ सुगनचंदजी बगड़ा, सुजानगढ़ ।
१२. दि० जैन पंचायत प्रतापगढ़ मा. पं. रामचन्द्र जी ।
१३. श्री ला० हीरालाल जी कपूरचंदजी जौहरी दिल्ली ।
१४. श्री रा० ब० सेठ हरकचंदजी पांड्या, रांची ।
१५. श्री सेठ राजाराम महावीरप्रसादजी, शिवपुरी ।
१६. श्री सेठ हरकचन्द जी सेठी, तिनसुकिया ।
१७. श्री सेठ चंपालालजी झूमरमलजी तिनसुकिया ।
१८. ब्र० पं० सुमतिबाई जी, शोलापुर ।
१९. श्री ला० कालूराम महावीरप्रसाद जी, दिल्ली ।
२० ला० पन्नालाल जी जैनी ब्रादर्स, देहली ।
२१. सेठ गनपतराय जी सरावगी, लाड़नू ।
२२. सेठ कुन्दनमल भंवरलालजी लुहाड्या, पाडली ।
२३. सेठ कुन्दनमल चंपालालजी पांड्या-सुजानगढ़ ।
२४. ला० जयनरायन जी जैन, पानीपत वाले फर्म टिड्डूराम जयनारायन सदर बाजार, देहली ।
२५. स्वस्ति श्री भट्टारक लक्ष्मीसेनजी, कोल्हापुर ।
२६. स्वस्ति श्री भट्टारक जिनसेनजी, महसाल ।
२७. सेठ बालचन्द लालचन्द जी भौंमकर, बार्शी ।
२८. श्री राजूबाई रावजी दोशी, शोलापुर ।
२९. सेठ रावजी देवचन्दजी शोलापुर ।
३०. श्री ब्र० पं० चन्दाबाई जी, आरा ।
३१. श्री सेठ चांदमलजी पांड्या गोहाटी ।
३२. सेठ घनश्यामदास जी सरावगी लालगढ़ ।
३३. कन्हैयालाल कस्तूरचन्द जी सेठी दीनहट्टा ।
३४. श्री सेठ सरूपचन्द जी धूलियान ।
३५. श्री दि० जैन पंचायत नलवाड़ी ।
३६. श्री लाला फूलचन्दजी अजमेरा देहली ।
३७. श्री सेठ लालचन्द जी सेठी उज्जैन ।
३८. श्री लाला हरिचन्द जी जैन,
कूचा उस्ता हीरा बाजार गुलियान देहली ।
३९. श्री सेठ विधीचन्द जी गंगवाल जयपुर ।
४०. श्री सेठ सागरमल जी पांड्या गिरीडीह ।
४१. सेठ भाईचंदजी रूपचन्दजी दोशी, बम्बई ।
४२. श्री सेठ कुन्दनमल जी सेठी, सुजानगढ़ ।
४३. श्री अपासाहिब जम्बूराव विराज, चिकौड़ी ।
४४. ला० बंगालीदास खेमचन्द जैन
रेलवे क्लीयरिंग एजेंट गली गुलियां, देहली ।
४५. ला० बालकिशनदास जी जैन
फर्म—गोपीनाथ बाबूलाल कागजी आगरा ।
४६. ब्र० पं कमलाबाई जी विशारदा संचालिका आदर्श महिला विद्यालय महावीरजी ।
४७. श्री रा० सा० सेठ मोतीलाल जी, ब्यावर ।
४८. श्री मास्टर जयप्रसाद जी जैन, जगाधरी ।
४९. श्रीमती गुणमालादेवी मातेश्वरी सेठ बालचन्द जी पाटनी, मनीपुर (इम्फाल)
५०. श्रीमती ज्ञानवतीदेवी, सं० आ० इ० चंद्रकीर्ति यात्रा संघ, देहली ।
५१. सेठ गेनीलाल मांगीलालजी बड़जात्या नागौर ।
५२. नानकचंद गुलाबचंद अग्रवाल कोसीकलां ।
५३. इन्दरचंद जी, प्रो० कौशल बुकडिपो छिंदवाड़ा ।
५४. जैन ब्रादर्स ५१।५८ कलट्टरगंज कानपुर ।
५५. दि०जैनसमाज डिबरूगढ़।
५६. श्री माणिकचन्द वीरचन्द जी गांधी फल्टन ।
५७- दि० जैनमहिला समाज पलासवाड़ी ।
५८. मिश्रीलाल पुसराज पाटनी नागौर वाले, जोरहाट ।
५९. केशरीमल जीतमलजी सवलावत डेह ।
६०. मोहनीदेवी धर्मपत्नी मेघराज पाटनी मनीपुर ।

स्वर्ग के सोपानों पर
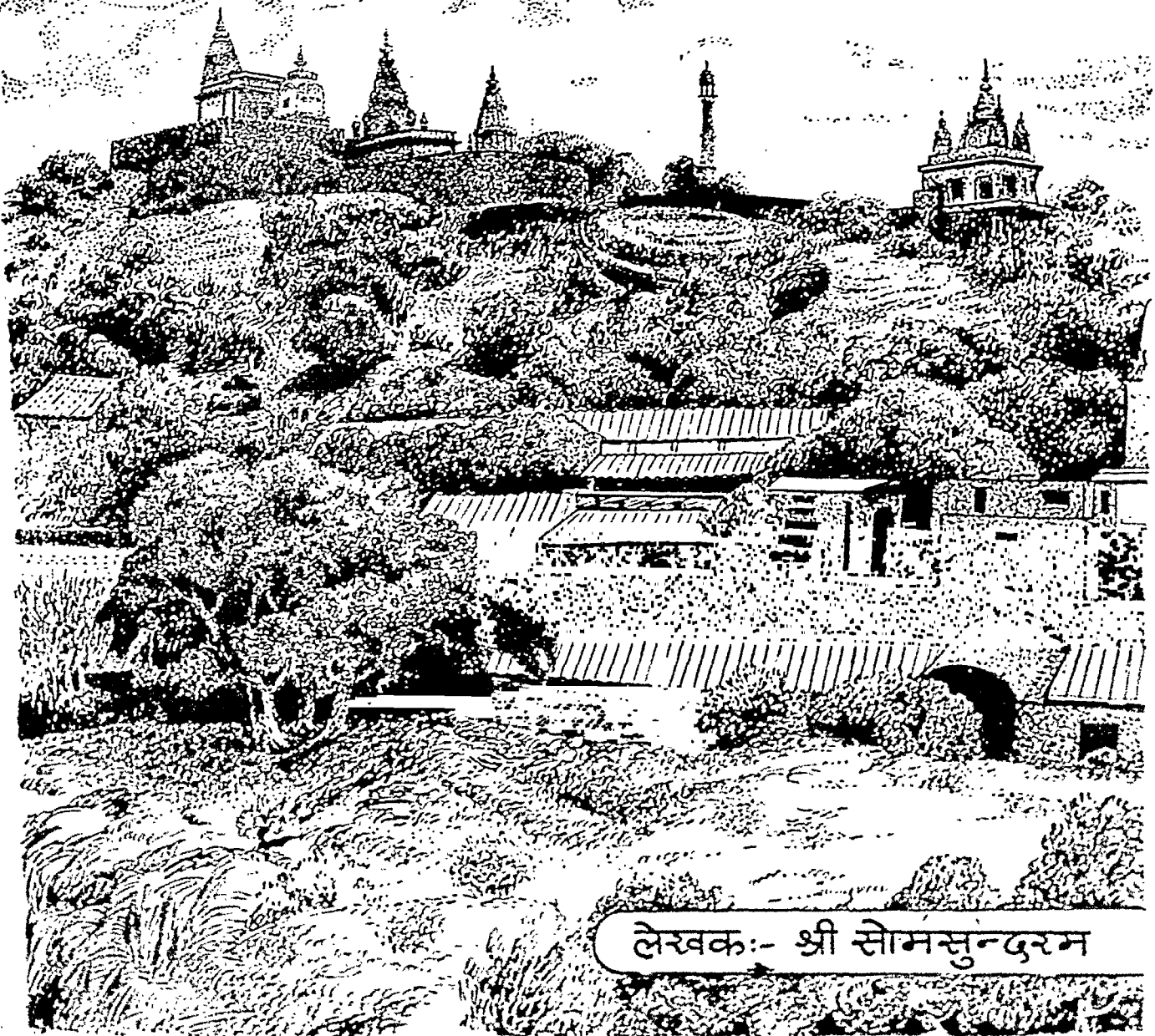
आज मरण भी अमर बन गया,

छूकर चरण तुम्हारे ।

एक जरा का जर्जर, पंजर
कुछ सांसों का कोमल सा स्वर
अखिल विश्व का गीत बन गया
जीवन का संगीत बन गया ॥

हरिप्रसाद "हरि" ललितपुर

卐

स्वर्ग के सोपानों पर

लेखक—श्री पूर्ण सोमसुन्दरम
सहायक सम्पादक नवभारत टाइम्स देहली

महा तपस्वी, चारित्र चक्रवर्ती, श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज की ३६ दिन की यम-सल्लेखना, हाल के विश्व आध्यात्मिक इतिहास की एक अविस्मरणीय एवं अभूतपूर्व घटना थी। उस महान घटना का प्रत्यक्ष दर्शन करने का यद्यपि लेखक महोदय को सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, तथापि तपस्यास्थल कुन्थलगिरि तक जाकर प्रत्यक्षदर्शी महानुभावों से तथ्य-संकलित कर उन्होंने आचार्य महाराज के स्वर्गारोहण का यह सजीव, रोचक, एवं स्फूर्तिदायक विवरण प्रस्तुत किया है। जैन न होते हुये भी लेखक महोदय की दिगम्बर जैन धर्म के प्रति हार्दिक आस्था एवं अनुराग है। आचार्य श्री के तो वह श्रद्धालु भक्त हैं। यम-सल्लेखना के अविस्मरणीय दिनों को उन्होंने इस लेख में आँखों के सामने सजीव रूप से लाकर खड़ा कर दिया है।

"महाराज! यह आप क्या कह रहे हैं? आपके सभी भक्त दूर-दूर हैं। वे सब आपके दर्शन एवं सेवा-पूजन के अभिलाषी होंगे। कम से कम उनमें से प्रमुख लोगों को सूचना देकर पहले यहां बुला लिया जाय, उनसे परामर्श कर लिया जाय और फिर आप सल्लेखना के सम्बन्ध में निश्चय करें तो अच्छा होगा।" संघपति गेन्दनमल जी ने गुरुभक्ति के कारण रुद्ध कण्ठ से विनती की।

आचार्य शान्तिसागर महाराज मुस्कुराये और अत्यन्त सरल भाव से, किन्तु गम्भीर अर्थ भरे शब्दों में कहा, "यह तो मैं अपने आत्म-कल्याण के लिए कर रहा हूं। इसमें दूसरों से क्या पूछना? जीव अकेले आता है, अपने किये का फल भोगता है, अपने आत्मोद्धार के साधन आप ही जुटाता है और फिर अकेले ही चला जाता है। न आते समय उसका कोई साथी होता है, न जाते समय। इसलिए उसे औरों की क्या परवाह?"

संघपति ने गद्गद् स्वर में कहा, "फिर भी महाराज, आपके दर्शन से भक्तों का उद्धार होगा न? भक्तों के कल्याण का आप सदैव ध्यान रखते आये हैं। अब भी उनको आत्म-कल्याण का अवसर देना चाहिए न?"

"जिनका जैसा भाग्य होगा, आत्म कल्याण का अवसर उनका उस रूप में अवश्य प्राप्त होगा ही। दूसरों के कर्मों का निर्धारण मैं स्वयं थोड़े ही कर सकता हूँ? मुझे तो अपने ही ऊपर अधिकार है, अपने ही कर्मों के लिए मैं उत्तरदायी हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि सल्लेखना धारण करने का उचित समय अब आ गया है। अन्तरात्मा के सामने मैं और किसी की बात को कैसे महत्व दे सकता हूँ?"

महाराज की कोमल वाणी में वज्र-सम कठोर संकल्प की गूंज थी। वह उस वीतराग की वाणी थी जिसने चालीस वर्ष की निरन्तर तपस्या से मोह, लोभ, क्रोध आदि वैरियों पर विजय पा ली थी और जो प्रत्येक कार्य को आत्म-कल्याण की कसौटी पर कस कर परखता था और

खरा उतरने पर उसे कर डालता था, चाहे सारा संसार ही क्यों न उसका विरोध करे। आचार्य श्री के संकल्प को न आंसुओं की धारा गला सकती थी न विरोध की आग जला सकती थी।

यह बातचीत, कुंथलगिरि के सुरम्य क्षेत्र में, जो हैदराबाद राज्य की सीमा पर, शहरों की भीड़-भाड़ से दूर, एकान्त स्थल में स्थित है, १३ अगस्त, १९५५ को हुई थी।

यद्यपि आचार्य श्री ने सल्लेखना धारण करने की अपनी इच्छा १३ अगस्त को ही प्रकट की थी, फिर भी यह संकल्प उन्होंने अचानक ही कर डाला हो, सो बात नहीं थी। "योगेनान्ते तनुत्यजां" वाली परम्परा को अपनाने वाले आचार्य श्री, त्याग के जिस पथ पर पग-पग आगे बढ़ते जा रहे थे, इस जन्म में उसका चरमोत्कर्ष सल्लेखना द्वारा ही हो सकता था, यह उनको आरम्भ में ही विदित था और वह आरम्भ से ही उसके लिये अपने को तैयार करते आये। ज्योतिषियों ने उनकी जन्म-कुण्डली के आधार पर उनकी आयु का निर्धारण कर रक्खा था, यह भी उनको मालूम था। उनको ज्ञात था कि और एक-दो वर्ष वह जीवित रह सकते हैं। इस बात का भक्त लोगों ने उन्हें स्मरण भी कराया था। परन्तु आचार्य महाराज को संकल्प-च्युत करने में वह सफल नहीं हो सके।

आचार्य महाराज भक्तों के हृदय को अचानक आघात अथवा पीड़ा पहुँचाना नहीं चाहते थे, इसी कारण उन्होंने अपने संकल्प को धीरे-धीरे, क्रमबद्ध रूप से प्रकट किया। १३ अगस्त को उन्होंने संघपति से उपरोक्त बातचीत की और केवल इतना संकेत किया कि सल्लेखना धारण करने का हमारा विचार है। परन्तु इससे पहले ही कई दिन से वह केवल एक-एक या दो-दो ग्रास ही आहार के रूप में लेते थे। १० अगस्त से उन्होंने दूध, सिंघाड़ा आदि सब त्याग दिये और केवल मुनक्का, बादाम आदि का रस ही लेने लगे थे। १४ अगस्त तक यही क्रम चला।

१४ अगस्त को आचार्य श्री ने घोषणा की कि वह आठ दिन की नियम सल्लेखना का व्रत धारण करेंगे जिसमें केवल जल लेने की छूट होगी। नियम सल्लेखना उस व्रत को कहते हैं जिसके द्वारा दिगम्बर जैन मुनि अपने को यम-सल्लेखना अथवा समाधि-मरण के लिए तैयार करते हैं। इसमें आहार का सम्पूर्ण परित्याग होता है। केवल बीच-बीच में जल लेने की छूट होती है।

नियम-सल्लेखना-ग्रहण के तीन दिन के अनन्तर १७ अगस्त को महाराज ने यह ऐतिहासिक घोषणा की कि वह जल की छूट के साथ यम-सल्लेखना धारण करने का निश्चय कर चुके हैं। यह घोषणा क्या थी, मरण को आमन्त्रण था। सुन कर संघपति एवं श्रावक-गण एक साथ विस्मित एवं शोकार्द्र हुए। विस्मय इस कारण कि इस जड़वादी पंचम काल में भी आध्यात्मिक साधना-प्रधान चतुर्थकाल का सा आत्मा को विशुद्ध करने वाला अपूर्व दृश्य उन्हें देखने को मिल रहा था। शोक इस बात पर कि आचार्यश्री जैसे महान तपस्वी के स्वर्गारोहण के बाद यतियों का ऐसा अद्भुत आदर्श एवं सत्य-पथ प्रदर्शक और कोई मिलना कठिन था।

भक्तों की भीड़

भक्तों की हृत्तन्त्रियां बज उठीं। साथ-साथ चारों ओर तार और दूरभाषी (टेलीफ़ोन) द्वारा सन्देश भेजे गये। जिस किसी ने भी सुना, अवाक रह गया, नत-मस्तक हो गया। भक्तों की दर्शनार्थी भीड़ उसी प्रकार चारों दिशाओं से कुन्थलगिरि की ओर प्रवाहित होने लगी, जैसे समुद्र की ओर नदियां। आचार्य महाराज चाहते थे कि उनके अन्तिम क्षण एकान्त ध्यान में बीतें। परन्तु उनकी यह कामना पूरी नहीं हो सकी। जैन समाज ने यह सिद्ध कर दिया कि अभी वह इतना अवनत नहीं हो गया कि एक अद्वितीय यतीन्द्र की गरिमा को पहचान न सके; उसकी वन्दना करने को, उस ज्योतिर्मय आत्मा के निवास मृण्मय शरीर के आंखें-भर अन्तिम दर्शन करने को लालायित न हो उठे। लोग चारों ओर से आये। बीस-तीस, सौ-सौ, हज़ारों की संख्या में। आगन्तुकों की संख्या निरन्तर बढ़ती ही गई। कुन्थलगिरि ने ऐसा दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। वह शान्त, निस्तब्ध, एकान्त स्थान 'आचार्य शान्तिसागर महाराज की जय' के घोष से गूंज उठा। वह जयघोष आकाश को चीरता हुआ ऊपर गया।

सल्लेखना क्यों ?

भक्ति की इस भावना और हार्दिक श्रद्धापूर्ण परवशता के साथ-साथ लोगों के मन में रह-रह कर यह भी प्रश्न उठता था कि आखिर महाराज ने समाधि-मरण का व्रत क्यों धारण किया ? कोई रोग नहीं, कोई शिथिलता नहीं, आयुष्य भी अभी शेष है, ऐसी स्थिति में यह सल्लेखना क्यों ?

आचार्यश्री के स्वर्गारोहण-सम्बन्धी तथ्य संकलित करने के उद्देश्य से हाल में जब मैंने दक्षिण की यात्रा की, तब मेरे मन में सर्वोपरि यही प्रश्न था। संघपति श्री गेन्दनमल जी ने इस प्रश्न के उत्तर में बताया मुझे कि महाराज की आंखें कमजोर हो गई थीं, इस कारण उन्होंने यह निश्चय किया था। परन्तु इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन जी से ही मुझे प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा कि दृष्टि के क्षीण हो जाने से महाराज के व्रतों-नियमों में बाधा पहुँचने की आशंका थी। इस कारण धर्म की रक्षार्थ आचार्यश्री ने सल्लेखना व्रत धारण किया।

पूज्य लक्ष्मीसेन जी ने मेरी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" से निम्न श्लोक भी सुनाया:—

"उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनु-विमोचन – माहुः सल्लेखनामार्याः॥

[कोई उपसर्ग या संकट आने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, वृद्धावस्था के कारण शैथिल्य होने पर अथवा ऐसा रोग आ जाने पर जिसका कोई प्रतीकार या चिकित्सा न हो सके, धर्म की रक्षार्थ तन को त्यागना बड़ों द्वारा सल्लेखना कहा गया है।]

आचार्य शान्तिसागर जी का समस्त जीवन धर्म की ही सेवा में, उसी के संपूर्ण पालन में बीता था। दृष्टि के क्षीण हो जाने के कारण वह स्वयं यह नहीं देख पाते थे कि आहार-विहार में कोई अन्तराय तो नहीं हो गया है। धर्म ही जिन महापुरुष का उच्छ्वास-निश्वास रहा हो, वह इस स्थिति में जीवित रहना कैसे पसन्द कर सकते थे? ऐसी धर्म विरुद्ध, परवशतापूर्ण जीविका उनके लिए असह्य प्रतीत हुई तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

भ्रान्त धारणा

आचार्य श्री के सल्लेखना धारण के सम्बन्ध में हाल में कुछ भ्रांत धारणा कुछ समाचार-पत्रों में व्यक्त की गयी थी। कुछ व्यक्तियों ने यहां तक कह डाला कि वह 'आत्म-हत्या' थी। इस प्रकार अनर्गल बातें करने वाले व्यक्ति यदि शान्ति के साथ इस विषय पर विचार करते तो ऐसी बातें नहीं कर सकते थे।

आत्महत्या का प्रचलित अर्थ अपनी हत्या करना है। प्रायः जब कोई जीवन से निराश हो जाता है या जब किसी के मनको असह्य आघात या धक्का लगता है, तब भावावेश में आपे से बाहर होकर वह प्राणान्त कर ले तो उसे आत्महत्या कहते हैं। ऐसी आत्महत्या मूर्खता का परिणाम है।

इसके विपरीत, आचार्य श्री की सल्लेखना पवित्र थी, पवित्र उद्देश्य से प्रेरित थी, शास्त्र-सम्मत थी और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल थी। आचार्यश्री यती थे। यतियों के लिए जैन-आगमों में विदित नियमों का जब तक वह पूर्णतया पालन कर सकते थे, तब तक उन्होंने सल्लेखना का नाम तक नहीं लिया। इतना ही नहीं, बल्कि जब किसी ने सल्लेखना धारण करने का परामर्श दिया, तब भी उन्होंने उसे ठुकरा दिया और परामर्श देने वाले को समझाया।

बारह वर्ष पूर्व

कुंथलगिरि में जब कुछ भक्तों ने आचार्य श्री से अनुरोध किया कि अभी सल्लेखना धारण न करें, तब महाराज ने उनको बारह वर्ष पहले का एक संस्मरण सुनाया।

बारह वर्ष पहले, आचार्यश्री कुछ अस्वस्थ थे। तब उनके एक धनी भक्त के सुपुत्र जो अमरीका से उच्च डाक्टरी परीक्षा पास करके लौटे थे, उनको देखने आये। महाराज के शरीर की 'परीक्षा' करने के बाद उन्होंने कहा, "महाराज! आपको गले का कैन्सर (नासूर) हो गया है। उसका इलाज भी नहीं हो सकता। अतएव अच्छा यही है कि आप सल्लेखना धारण करें।"

यह परामर्श सुनकर महाराज मुस्कुराये। उन्होंने उस युवक से कहा, "देखो भैया! मुझे कैन्सर नहीं है। इसलिए तुम्हारी चिन्ता निरर्थक है। इसके अलावा, धर्म के क्षेत्र में, आत्म-कल्याण के लिए मुझे क्या करना चाहिए, यह बताने का तुम्हें अधिकार नहीं है। इसकी तो व्यवस्था मैं स्वयं कर लूंगा। सल्लेखना धारण करने का जब उचित समय आयेगा तब मुझे स्वयं अन्तः प्रेरणा होगी और मैं वह व्रत धारण कर लूंगा।"

यह संस्मरण सुनाने के बाद महाराज ने कुन्थलगिरि में भक्तों से कहा, "इस घटना को बारह वर्ष हो चुके हैं। न मुझे उस समय कैंसर था, न बाद में कभी हुआ परन्तु अब की बात कुछ और ही है। मेरी दृष्टि क्षीण हो गयी है। इस कारण प्राणि-संयम रखने में मुझे कठिनाई होगी।

अत: अब सल्लेखना धारण करना मेरा कर्त्तव्य है।"

दिगम्बर जैन यतियों के लिए यह आवश्यक है कि वह चलते-फिरते, उठते-बैठते किसी जीव को पीड़ा न पहुँचायें। इसी प्रकार, आहार लेते समय उन्हें सजग होकर यह देखना पड़ता है कि कहीं भूल से भी कोई जीव आहार में न आ जाय। दृष्टि क्षीण होने पर यह सावधानी रखना कठिन हो जाता है। दूसरों के भरोसे रहना पड़ता है। ऐसा जीवन सच्चे दिगम्बर जैन यतियों के लिए मरण से भी बुरा होता है।

दिगम्बर जैन यतियों के लिए धर्म ही मातृ-समान है। वही उनका जीवन-सर्वस्व है। यदि शारीरिक शिथिलता के कारण धर्म के पालन में बाधा होने की आशंका हो, तो वह प्रसन्नतापूर्वक प्रायोपवेश करके, आत्मचिन्तन में लीन हो जाते हैं और शरीर को उसी प्रकार त्याग देते हैं, जैसे जीर्ण-शीर्ण कन्था को लौकिक जन। दिगम्बर जैन यतियों की दृष्टि में शरीर की उपयोगिता धर्म-पालन के साधन के रूप में ही है। जिस क्षण शरीर की यह क्षमता नष्ट हो जाती है, उसी क्षण उसकी उपयोगिता भी नहीं रह जाती और दिगम्बर जैन साधु बिना किसी मोह के उसे विसर्जित कर देते हैं। इसी कारण उनके इस समाधि-मरण को वीर-मरण कहते हैं।

भारतीय परम्परा भी यही रही है कि जीवन में करने योग्य सब कार्य कर चुकने के बाद अन्त में योग द्वारा शरीर त्याग दिया जाय। इक्ष्वाकुवंश के राजाओं के गुणों का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने भी कहा है, "योगेनान्ते तनुत्यजाम्" अर्थात वे योग द्वारा अन्त में शरीर को त्यागते थे।

इस प्रकार शान्तिपूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट विदित होगा कि आचार्य श्री का सल्लेखना धारण उनके जीवन-यज्ञ की पूर्णाहुति थी, उनकी तपस्या की अन्तिम साधना थी।

"धर्म का आश्रय लो"

परन्तु कठिनाई यह है कि मोह का पर्दा जब दृष्टि पर पड़ जाता है तब बड़े-बड़े विद्वान भी सत्य को बिसार देते हैं। 'आचार्य श्री हमारे मध्य नहीं रहेंगे, शीघ्र ही हमें छोड़ जायेंगे'—इस बात का स्मरण करके सभी श्रावक गण शोकार्द्र हो रहे थे।

एक दिन प्रख्यात विद्वान पं० जगन्मोहनलाल जी कटनी ने आचार्यश्री से पूछा, "महाराज! आजतक धर्म के क्षेत्र में आप ही समस्त समाज के बड़े आश्रय थे, समय-समय पर आप ही निर्भयतापूर्वक समाज का मार्ग - दर्शन किया करते थे। अब आप हमें छोड़कर जा रहे हैं। आपके बाद हम किसका आश्रय लें ?"

"जिसका आश्रय हम लेते थे उसका" महाराज ने शान्ति के साथ उत्तर दिया।

"हम समझ नहीं पाये महाराज। ज़रा अधिक स्पष्ट करने की कृपा करें।" पण्डित जी ने प्रार्थना की।

महाराज बोले,—"हम जीवन भर किसके आश्रित रहे ? केवल धर्म के न ? रत्नत्रयरूप तत्व के न ? रत्नत्रयरूपी वह धर्म ही सबका अभयप्रद और दुःख से तारण करने वाला है। इसीलिए कहता हूँ, आप लोग भी उसीका आश्रय लें।"

सुनकर पण्डित जी अवाक् रह गये।

जब देश के प्रमुख धनाढ्य एवं समाज-नेता आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये तब भी आचार्य महाराज ने उनको यही सन्देश दिया कि "धर्म का संरक्षण करो और स्वयं भी धर्म मार्ग पर स्थिर एवं सावधान रहो।"

वह मूर्तिमान जिन धर्म थे। धर्म के बिना उनका अस्तित्व नहीं था। धर्म-पालन में बाधा होने पर जीवित रहना उनके लिए असह्य था। उनकी सल्लेखना का रहस्य यही है।

दीर्घ चिन्तन

आचार्य महाराज कुन्थलगिरि पहुँचने से पूर्व बारामती में थे। भक्तों का यह विचार था कि महाराज चातुर्मास बारामती में ही करेंगे। इस कारण जब ३० मई को उन्होंने अचानक यह घोषणा की कि हम कुन्थलगिरि जायेंगे, तो लोगों को आश्चर्य हुआ। महाराज के निकटवर्त्ती लोगों तक को यह कल्पना नहीं थी कि वह कुन्थलगिरि में चातुर्मास करने वाले हैं और यह उनका अन्तिम और ऐतिहासिक चातुर्मास होगा। महाराज के अनन्य भक्त संघपति गुरुभक्त सेठ श्री चन्दूलाल सराफ तथा अन्य श्रावक तो महाराज का यह निर्णय सुन कर

अत्यन्त दुखी हुए। उन्होंने महाराज से आग्रह पूर्वक प्रार्थना की कि वह बारामती में ही चातुर्मास करें।

परन्तु महाराज ने कुन्थलगिरि जाने का निर्णय कुछ और ही उद्देश्य से किया था। भला वह उसे कैसे बदल सकते थे? "मैं अपनी इच्छा एवं अन्तरात्मा के आदेशानुसार कार्य करता हूं। मुझे मत रोको। लौकिक मोह में पड़ कर मेरे मार्ग पर बाधा डालना उचित नहीं।" यह कह कर ३० मई के प्रातःकाल महाराज बारामती से कुन्थलगिरि रवाना हुए।

८४ वर्ष से ऊपर की आयु। आंखों में वेदना। कठोर व्रतों से तप्त कृश शरीर। फिर भी महाराज प्रतिदिन आठ नौ मील अनायास पैदल चलते थे और १२ जून को कुन्थलगिरि से दो मील दूर स्थित रामकुण्ड नामक स्थान पर पहुंचे। विचार यह था कि वहां विराम करने के बाद अगले दिन कुन्थलगिरि चला जाय। परन्तु दोपहर के सामायिक के बाद आकाश में बादल छाने लगे और वर्षा होने के लक्षण दिखायी दिये। तब आचार्य महाराज ने उसी समय कुन्थलगिरि की ओर प्रस्थान कर दिया। सायं वह कुन्थलगिरि पहुंच कर क्षेत्र-दर्शन कर चुके ही थे कि घन-घोर वर्षा हुई, मानो वर्षापति इन्द्र, महाराज का स्वागत कर रहा हो। महाराज ने तब विनोद में कहा, 'वर्ष भर से क्षेत्र के अंग पर जो धूल जमी थी, वह हमारे आने के साथ साथ वर्षा से धुल गयी और क्षेत्र स्वच्छ हो गया!"

इस अतिश्रम के फलस्वरूप महाराज को तीन-चार दिन तक बुखार आया।

प्रथम संकेत

आचार्य श्री सल्लेखना धारण करने का विचार कर रहे हैं, इसका प्रथम संकेत १३ जून को मिला। उस दिन उनके जन्म दिन के उपलक्ष्य में कुन्थलगिरि में विशाल सभा आयोजित की गयी। कई प्रमुख नेताओं विद्वानों के भाषणों के बाद महाराज ने अपने प्रवचन के बीच कहा— "दृष्टि मन्द होने के कारण सल्लेखना धारण करने की इच्छा से मैं यहां आया हूँ। यदि इस चातुर्मास में दृष्टि की मन्दता बढ़ी, तो मैं निश्चित रूप से सल्लेखना धारण करूंगा। इस बीच का समय अधिक से अधिक आत्म-ध्यान में बिताया जायेगा।"

आत्म-चिन्तन में तो महाराज का अधिकांश समय वैसे ही व्यतीत होता ही था। अब वह अधिकाधिक अन्तर्मुख होते गये। उनकी वाणी में सदैव स्फटिक जैसी स्पष्टता एवं स्वच्छता रहती ही थी। परन्तु अब उनके एक एक शब्द में आत्मानुभूति की दिव्य ज्योति की झलक स्पष्ट दिखायी दी।

(श्री बालचन्द देवचन्द शहा बी० ए० की असीम श्रद्धा एवं दीर्घ दृष्टि के फलस्वरूप आचार्य श्री के इन दिनों के प्रवचन-रत्न उनके मूल रूप में संसार को प्राप्त हुए हैं। जैन समाज उनके निकट अत्यन्त आभारी है।)

इन्द्रिय संयम पर बल

एक दिन के प्रवचन में महाराज ने इन्द्रिय-संयम की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि भोगों का आरम्भ में ही—भोगने से पूर्व ही—परित्याग करने वाला श्रेष्ठ त्यागी है। भोगने के बाद भोगों का त्याग करने वाला मध्यम त्यागी है। आजीवन भोग न छोड़ने वाला तो अत्यन्त हीन होता है।

इसी प्रसंग में महाराज ने एक व्यावहारिक दृष्टान्त देते हुए कहा—"तीस वर्ष की सर्विस के बाद सरकार भी अपने कर्मचारियों को पेन्शन देकर कार्यमुक्त कर देती है। पचपन वर्ष की आयु के बाद सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त हो जाता है। तो क्या, कम से कम इस पचपन वर्ष की आयु के बाद सांसारिक व्यापारों से मुक्त होकर आत्म-कल्याण का मार्ग अवलम्बन करना नहीं चाहिए? इच्छाओं के जंजाल में उलझे रहने से आखिर कौनसा फल मिलताहै?

"अपने परिश्रम से आपको चाहे कितनी भी सम्पत्ति प्राप्त हो, तथापि पुण्यवान की दृष्टि में वह क्षण भर को भी टिक नहीं सकती। पुण्यवान वास्तव में अपने आप में सुखी रहता है। तब फिर आप लोग आखिरी क्षण तक सुख पहुँचाने के उद्देश्य से परिश्रम करके क्यों पाप-बंध करते जा रहे हैं?"

आत्मदर्शन का उपाय

बृहदारण्यको पनिषद के अनुसार, महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहा—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। मैत्रेयि आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन इदं सर्वं विदितम्।"

("निश्चय ही आत्मा ही वह वस्तु है जिसका दर्शन, श्रवण, चिन्तन एवं ध्यान किया जाना चाहिए। मैत्रेयी, आत्मा ही के दर्शन, श्रवण, मनन एवं अभिज्ञान से यह सब विदित होता है।

इस उपदेश का एक और पहलू व्यावहारिक भाषा में गीता में स्पष्ट किया गया है। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं--

"उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैवह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

[योगी आत्मा का आत्मा द्वारा ही उद्धार करे। आत्मा को कभी अवनत न होने दे। क्योंकि निश्चय ही आत्मा ही आत्मा का मित्र है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु भी।]

२० जून को दोपहर के समय अपने प्रवचन में आचार्य श्री ने आत्मा सम्बन्धी उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों का मानों सार निचोड़ कर रख दिया। उन्होंने कहा--

"मनुष्य को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। उदास और निराश होना ठीक नहीं। प्रयास करते रहने से यश अवश्य मिलता है। जैसे लकड़ी को लकड़ी के साथ घिसते रहने पर अग्नि अवश्य प्रकट होती है, उसी प्रकार निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर आत्मलाभ अवश्य होता है।

"अपने को घटिया समझना ठीक नहीं। केवली के समान अनन्त शक्ति प्रत्येक में विकसित हो सकती है, इस सत्य पर विश्वास रक्खो। सभी जीवों को सिद्धों सरीखा (यानी भविष्य में सिद्ध बनने की सामर्थ्य रखने वाले) समझो। किसी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

आत्मदर्शन कैसे प्राप्त किया जाय, इस विषय पर बोलते समय आचार्य श्री के शब्दों में प्राचीन महर्षियों की वाणी गूंज उठी। उन्होंने कहा—

अन्य सब विचार छोड़ कर स्वयं पद्मासन धारण कर बैठ जाओ और अपने निजी सच्चिदानंद स्वरूप का विचार करते जाओ। मन को अपने आप पर केन्द्रित करने तथा इस रीति से एकाग्र होने में समय लगता है। पर निरन्तर प्रयत्न करने पर कुछ समय बाद शरीर की बाह्य प्रकृति अपने आप विस्मृत हो जायेगी और आत्मा का शुद्ध स्वरूप दृष्टिगत होने तथा उसका अनुभव होने लगेगा। उसी क्षण से कर्मों की निर्जरा आरम्भ हो जायेगी।"

आचार्य श्री ने आत्मानुभूति के आधार पर यह जो उपदेश दिया, उसमें कुन्दकुन्दाचार्य के 'समयसार' के इस श्लोक का भाव मुखरित हो रहा था--

"पण्णाये घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा।!"

(प्रज्ञा से गृहीत होने वाली वही चैतन्य वस्तु वास्तव में "अहं" है। शेष सब भाव मुझ से परे हैं, यह ज्ञात होना चाहिए।)

सच्ची भक्ति

इसी प्रकार २१ जून को सच्ची भक्ति की व्याख्या करते हुए महाराज ने कहा--"भक्ति करने से देव मुक्ति प्रदान करते हैं यह समझना ठीक नहीं। मुक्ति, क्या, किसी को और कोई दे सकता है? वह तो अपने ही परिश्रमों से प्राप्त होती है। देव - पूजा, स्तुति आदि तो व्यवहार-क्रिया है जिनका उद्देश्य आत्मा को विशुद्ध करना होता है। देव के सम्मुख मुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करना केवल उपचार मात्र है।

जिनेन्द्र भगवान ने वीतराग परमात्मपद जिस मार्ग द्वारा प्राप्त किया था, उस मार्ग और उन उपायों को समझना तथा उस पर अचल श्रद्धा रखकर उसी प्रकार उस मार्ग पर चलना यही खरी भक्ति है। इस भक्ति द्वारा अन्त में मुक्ति अवश्य मिलेगी।"

इस प्रकार दिन पर दिन महाराज अन्तर्मुख होते गये। आत्मचिन्तन बढ़ा। २५ जून को उन्होंने प्रवचन के बीच कहा, "मुझ में इतनी शक्ति नहीं कि मेरी बातों से तुममें से एक को भी त्यागी बनने की प्रेरणा प्राप्त हो सके। तथापि कर्तव्य समझ कर यह कहता हूं। इस काल में "धर्मध्यान" ही तारक है। उसी से आत्मा का कल्याण होगा। मनुष्यजन्म की सार्थकता ही यही है। तुम्हें यह जो अपूर्व अवसर मिला है, इसे व्यर्थ न गंवाओ।"

अगला सोपान

इस प्रकार महाराज जीवन-यज्ञ की पूर्णाहुति की ओर पग-पग करके आगे बढ़ते जा रहे थे। ५ जुलाई को प्रातः-काल स्वाध्याय के उपरान्त महाराज ने कहा, "मेरी दृष्टि की मंदता यहां आने के बाद बढ़ने लगी है। दो वर्ष पूर्व जब मैं यहां आया था, तब इस स्थान पर दृष्टि में तनिक सुधार हुआ था। परन्तु इस बार ऐसा नहीं हुआ। चलते

समय परावलम्बन की अनिवार्यता तथा उसके कारण होने वाला व्रतातिचार दिन पर दिन असह्य होता जा रहा है। अतएव शीघ्र ही सल्लेखना व्रत आरम्भ करना होगा। परमपूज्य भद्रबाहु आचार्य की भांति साथ में किसी को न लेकर एकान्त में जाकर सल्लेखना करूं, यही इच्छा है।"

इसके दो दिन बाद अर्थात् ७ जुलाई को महाराज ने उपवास रक्खा और दिन भर मौन भी रहे। तब साथ के लोगों ने विनय पूर्वक निवेदन किया कि महाराज, इस प्रकार अचानक उपवास रखना उचित नहीं। उससे अनिष्ट परिणाम होने की आशङ्का है। साथ ही शास्त्र-स्वाध्याय पूरा करने से पूर्व मौन धारण करना भी ठीक नहीं।

८ जुलाई को महाराज ने मौन त्याग दिया और कहा, "मुझे अपनी इच्छानुसार काम करने दो। उसमें तुम कुछ भी बोलना नहीं। मैंने अपना मार्ग बड़े सोच-विचार के बाद निश्चित किया है। अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार जो मैं ठीक समझूं, वही मार्ग मुझे अपनाने दो।"

१८ जुलाई से महाराज ने प्रति दिन केवल दो-दो ग्रास मात्र आहार लेना आरम्भ किया। बीच-बीच में उपवास भी करते थे। इससे पहले आचार्यश्री "दशहरा-दीवाली" से पूर्व सल्लेखना ग्रहण करने की सोच रहे थे,परन्तु अब वह "भाद्रपद या उससे पूर्व" ही सल्लेखना धारण करने का विचार व्यक्त करने लगे।

४ अगस्त को शोलापुर से डा० मुले और डा० अरोसकर आये और महाराज की परीक्षा की। उन्होंने बताया कि महाराज की आंखों का इलाज नहीं हो सकता। चश्मे से भी कोई लाभ नहीं।

सल्लेखना-धारण का महाराज का संकल्प डाक्टरों के इस कथन से पुष्ट हुआ।

१० अगस्त से उन्होंने केवल बादाम और मुनक्के का रस ग्रहण करना आरम्भ किया। १३ अगस्त को संघपति मोतीलालजी (?) बम्बई से आये। महाराज ने उनसे कहा कि मैं सल्लेखना धारण करना चाहता हूँ।

अन्तिम आहार

१४ अगस्त को महाराज ने अन्तिम रूप से आहार लिया। आहार था, केवल मुनक्का और बादाम का रस। इस महान तपस्वी को अन्तिम आहार कराने का श्रेय बारामती के गुरुभक्त सेठ श्री चन्दूलाल जी सराफ़ को प्राप्त हुआ।

१५ अगस्त को, कुन्थलगिरि के नीचे वाले अपने कमरे में आचार्य महाराज ने यह घोषणा की कि वह आठ दिन की नियम-सल्लेखना का व्रत रक्खेंगे जिसमें केवल पानी पीने की छूट होगी। यह नियम-सल्लेखना-व्रत चल ही रहा था कि १७ अगस्त को उन्होंने उसी स्थान पर यम-सल्लेखना या समाधि-मरण की घोषणा की। इस प्रकार आचार्यश्री का सल्लेखना-व्रत १५ अगस्त से ही समझना चाहिये।

स्वतन्त्रता-दिवस पर

आचार्यश्री जो कुछ करते थे, अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा से ही करते थे। विशेष कर आत्मकल्याण के क्षेत्र में तो वह केवल "अन्तरादेश" को मानते थे, अन्य किसी की बात सुनते ही नहीं थे। अत: १५ अगस्त से सल्लेखना धारण करने का उनका संकल्प विशेष महत्व रखता है।

१५ अगस्त का दिन भारत का स्वतन्त्रता-दिवस है। भारत माता के सुदीर्घ इतिहास में एक जाज्वल्यमान नया अध्याय १५ अगस्त १९४७ को ही आरम्भ हुआ था। उस राष्ट्रीय मुक्ति दिवस पर आचार्य श्री का सल्लेखना धारण प्रतीकात्मक महत्व का है। उसी दिन कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर वह स्वर्ग के सोपानों पर पग-पग आगे बढ़ने लगे थे। यद्यपि इस भव में उनकी मुक्ति जैन-मतानुसार सम्भव नहीं, फिर भी भट्टारक श्री जिनसेन जी का यह कथन सत्य हो सकता है कि तीसरे भव में आचार्य श्री मुक्ति प्राप्त करेंगे। शायद इसी का संकेत करने के लिए उनकी अन्तरात्मा ने आध्यात्मिक सिद्धान्तों की जननी भारत माता के मुक्ति-दिवस पर सल्लेखना धारण करने की उन्हें प्रेरणा दी हो।

मैं ऊपर जाऊंगा

आचार्य श्री के कुछ शब्द भी इस बात की ओर संकेत करते हैं। १७ अगस्त को यम-सल्लेखना की घोषणा करने के बाद ही महाराज ने कहा, "मैं ऊपर जाऊंगा।" उनका मतलब था कि गिरि के ऊपर वाली गुफा में जाकर रहूँगा।

इस पर श्री जिनसेन जी ने कहा, "महाराज, आज तो अमावस्या है। आज ऊपर जाना ठीक नहीं।

महाराज ने सारगर्भित विनोद के साथ उत्तर दिया, "स्वयं भगवान महावीर कार्तिकवदी अमावस को ऊपर (मोक्ष) गये थे, तो हमारे जाने में क्या आपत्ति हो सकती है ?

उसी समय महाराज ने कुन्थलगिरि क्षेत्र कमेटी के मन्त्री श्री माणिकचन्द जी, श्री वालचन्द देवचन्द सहा तथा व्यवस्थापक श्री गोपाल वालाजी वीडकर को बुलाकर ऊपर जाने की सूचना दी और ऊपर के मुख्य मंदिर के पास वाली गुफा (कमरा) में रहने लगे।

ममत्वहीन

दो हज़ार वर्ष पहले आचार्य प्रवर कुन्दकुन्द ने आत्मानुभूति भरे इन शब्दों को मुखरित किया था—

"अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्मओ णाणदंसणसमग्गो।
तह्मि ट्ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि॥"

[मैं वास्तव में एक हूँ, विशुद्ध हूं, ममत्वहीन हूँ और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। ऐसी आत्मा की अनुभूति में स्थिर रहता हुआ मैं इन सब (काम-क्रोधादि) आस्रवों को नष्ट कर दूंगा।]

इस ममता को त्यागने की वात कहने में जितनी रोचक है उतनी ही कठिन है। यह भली प्रकार जानते हुए भी कि पुद्गल का जीव से कोई सम्वन्ध नहीं, पुद्गल के प्रति मोह को जीव छोड़ नहीं पाता। नीड़ से उड़ जाने के वाद पंछी नीड़ को भूल भले ही जाय, साधारण मनुष्य यह कल्पना तक मन में लाते हिचकता है कि आत्मा से विमुक्त होने के वाद शरीर का कोई महत्व नहीं, किन्तु शरीर के प्रति जीव का ममत्व निरर्थक है। यह वोध उन्हीं विरले वीतरागों में हो सकता है, जो वासना की केंचुली को उतार फेंक चुके हैं। दो हज़ार वर्ष पहले, महात्मा तिरवल्लुवर ने (जिनको जैन लोग आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य मानते हैं) अपने भक्तों से कहा था कि "मेरी मृत्यु के वाद मेरे शरीर को किसी निर्जन वन में ले जाकर छोड़ दीजिए।' शरीर के प्रति ऐसी सम्पूर्ण निर्ममता आज के युग में पाना कठिन है।

१७ अगस्त को आचार्य श्री जव यम-सल्लेखना महाव्रत की घोषणा कर चुके थे, तव उनके भक्तों के मन में स्वभावत: यह प्रश्न उठा कि स्वर्गारोहण के वाद महाराज के शरीर का क्या किया जाय। श्री माणिकचन्द वीरचन्द और श्री वालचन्द ने निवेदन किया, "महाराज अपनी कोई इच्छा या आदेश हो तो वतायें।

आचार्य श्री ने मुस्करा कर कहा, "वताऊं तो पूरा भी करोगे ?"

"अवश्य ! आज्ञा कीजिए," भक्तों ने कहा।

"अच्छी तरह पुन: विचार करलो। वाद में वदलना मत" आचार्य श्री ने कहा।

भक्तों ने जव पुन: आश्वासन दिया तव आचार्य महाराज वोले, "देह-विसर्जन के वाद मेरे शरीर को किसी नदी के निर्जन तट पर या किसी पर्वत के शिखर पर एकान्त स्थान पर छोड़ दो।"

सुन कर भक्त लोग सन्न रह गये। वालचन्द जी ने कहा, "महाराज, यह क्रम तो केवल मुनिसंघ के लिए नियत है। हम तो श्रावक हैं। हम पर यह आज्ञा कैसे लागू हो सकती है ?"

"तो फिर अपनी इच्छानुसार करो। निर्दोष (जीव या घास-फूस रहित) स्थान पर विना आडम्वर के दाह कर्म कर दो। स्मारक वगैरह कुछ नहीं चाहिए" महाराज ने स्वीकृति दी।

भीष्म पितामह की भांति मरण की प्रतीक्षा करते हुए, शरीर की दाह क्रिया के सम्वन्ध में इस प्रकार निर्ममता के साथ आदेश देना आचार्य श्री जैसे वीतरागियों ही के लिए सम्भव था।

शरीर पर नियन्त्रण

वैसे १५ अगस्त से ही महाराज पूर्णतया निराहार रहते थे। छत्तीस दिन के उपवास में जल भी उन्होंने कुल आठ वार ही लिया था। फिर भी अन्त तक उनका मन स्वच्छ, शान्त एवं सुनियन्त्रित था। और शरीर पर उनका नियन्त्रण आश्चर्यजनक था। १० सितम्वर तक अपनी गुफा से वह प्रतिदिन दर्शनार्थ मुख्य मंदिर में नियत समय पर जाते थे और दर्शनार्थियों को दर्शन देते थे। विभिन्न विषयों पर लोगों से चर्चा भी करते थे।

उधर दर्शनार्थी लोगों की भीड़ चारों ओर से वरावर अधिक संख्या में आती जा रही थी। महाराज एकदम अन्तर्मुख हो गये थे, इसी कारण उनका कृश शरीर उस भीड़-भाड़ एवं शोरगुल से होने वाली विघ्न-वाधाओं को सह सका।

अपने ही घर में

इन्हीं दिनों एक बार प्रख्यात विद्वान पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर ने आचार्य श्री से पूछा, 'महाराज, आपको किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ?"

महाराज ने कहा, "जब हम सदैव अपने ही घर में बैठे हैं तो हमें कष्ट किस बात का होगा ?"

बाद में अपने आशय को और स्पष्ट करते हुए महाराज ने कहा—

"हमारा हमेशा आत्मध्यान चलता है। देखो, आत्मध्यान के समय हम यहां नहीं रहते। भाव-मन के द्वारा हम अनेक सिद्धों की भूमि में जाकर अनन्त सिद्धों के स्वप्न में ध्यान करते हैं, जहां देशभूषण-कुलभूषण भगवान विराजमान हैं।

"हम उनका ध्यान नहीं करते। हम अपनी ही शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं। उसी का स्वरूप सदैव चिन्तन में लाते हैं। इस आत्म चिन्तन के समय ऐसा लगता है कि हम अपने घर में ही बैठे हुए हों। हमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।"

आचार्य महाराज के कठोर व्रत एवं श्रम का ध्यान करके भक्त लोग पीड़ित होते थे, परन्तु उस आत्मानन्द में लीन निस्पृह यती को इससे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचती थी। शरीर की यातना से आत्मा निर्लिप्त थी। इसी सम्यक्त्व एवं सत्यज्ञान के कारण वह अन्त तक अपने मन, वचन एवं काय पर काबू रख सके।

आचार्य पद

२४ अगस्त को प्रातःकाल भक्ति-पाठ के अनन्तर संघपति गेन्दमल जी एवं सेठ चन्दूलाल सराफ की विनती पर आचार्य श्री ने अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य वीरसागर महाराज को आचार्य पद प्रदान करने की महत्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा को सब ने शिरोधार्य माना।

नम्रता

२६ अगस्त को तीसरे पहर की सभा में आचार्य महाराज ने उपस्थित सभी जनों से अत्यन्त नम्रता पूर्वक क्षमा-याचना की और स्वयं भी सब को क्षमा-प्रदान किया। वह दृश्य हृदयद्रावक था। जो इच्छा-द्वेष से ऊपर उठ कर आत्मानुभूति में लीन रहते थे, उन मुनिराज को, साधारण जनों से इस प्रकार नम्रतापूर्वक क्षमा-याचना करते देख सब के हृदय भर आये। सब गद्-गद् हो उठे।

महासभा को सन्देश

महात्मा गांधी के बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि वह थोड़े से थोड़े सरल शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कह देते थे। आचार्यश्री की भी यहँ प्रतिभा विख्यात है। सल्लेखना धारण के बाद उनकी यह प्रतिभा चरम विकास को पहुँच गई थी। उन दिनों वह बहुत कम बोलते थे, पर जो कुछ उनकी वाणी से प्रकट होता था वह कार्य सूत्रों का सा अगाध अर्थ गाम्भीर्य-युक्त होता था।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के महामन्त्री लाला परसादीलाल जी पाटनी, महाराज के दर्शनार्थ एवं उनके दिव्य आदेश की प्राप्ति के लिये २६ अगस्त को कुन्थलगिरि पहुँचे। दोपहर बाद करीब दो बजे वह महाराज के समीप गये और प्रणाम करके पास में बैठे। महाराज ने उनको देखते ही मधुर मुस्कान के साथ, स्निग्ध स्वर में कहा, "बहुत लम्बे से आये।"

इस सरल वाक्य में कितना गूढ़ अर्थ भरा हुआ था। "आप में धार्मिक प्रवृत्ति एवं गुरु-भक्ति इतनी प्रबल है कि इतनी लम्बी दूर की परवाह न करके आप यहाँ पहुँचे।" यह इसका एक तात्पर्य था। "दिगम्बर जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था के उत्तरदायित्वपूर्ण महामन्त्री होने के नाते अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये आपने इतनी लम्बी यात्रा की, यह सराहनीय है।"—यह भाव भी उसमें था। साथ ही, "मैं लम्बे अर्से से आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। सो आप भले आये।"—यह भी स्नेहमय उद्गार उसमें निहित था।

कोई आश्चर्य नहीं कि इस वात्सल्यमय वाक्य को सुन कर श्री पाटनी जी गद्-गद हो उठे और अश्रुमय नेत्रों से उन वीतराग के श्रीमुख की आभा का अमृतपान करते भक्ति-विह्वल हो बैठे रहे।

महासभा पर आचार्यश्री का वरद हस्त सदैव रहा है। धर्म की रक्षार्थ समाज का नेतृत्व करने में महासभा की तत्परता पर महाराज प्रसन्न थे। इसी कारण जब पाटनी जी ने महासभा के लिये कोई आदेश देने का अनुरोध किया तो महाराज ने कहा—

"महासभा सदा की भांति धर्म-रक्षा में सदा कटिबद्ध रहे, धर्म को कभी न भूले और धर्म के विरुद्ध कभी कोई कार्य न करे।"

यह एक ऐसा वाक्य था जिसकी व्याख्या में पोथी की पोथी लिखी जा सकती है। महासभा का अस्तित्व ही तभी तक सार्थक होगा जब तक वह धर्म पर आने वाली विपदाओं-संकटों का प्रतिरोध कर धर्म की रक्षा करती रहे। वास्तविक धर्म क्या है, धर्म का मौलिक रूप एवं आधार क्या है, इसका विशद एवं सुस्पष्ट ज्ञान न हो तो धर्म की रक्षा वह कैसे कर सकती है? इसीलिये महाराज ने धर्म को न भूलने और धर्म के विरुद्ध कोई कार्य न करने पर बल दिया।

महासभा के लिये आचार्यश्री ने यह जो अमर सन्देश दिया, वह प्रत्येक धार्मिक जैन के हृत्पटल पर अङ्कित होने योग्य है और सर्वथा अनुकरणीय है।

दीक्षा-दान

आचार्यश्री ने इंगिनी-मरण का व्रत लिया था। अर्थात् सल्लेखना-धारण के पश्चात् उन्होंने सब प्रकार का वैयावृत्य सेवा-टहल बन्द करवा दिया। उनके श्रम-श्रान्त शरीर को थोड़ी-बहुत भी राहत पहुँचाने के लिए कोई किसी प्रकार की सेवा नहीं कर सकता था। ८४ वर्ष की वृद्धावस्था में इतनी कठोर तपाग्नि में शरीर को तपाना और मन को उस यातना से अछूता रखना कितना अतिशय श्रम-साध्य है, यह कोई भी सहृदय व्यक्ति कल्पना कर सकता है।

इस कठोरतम तपश्चर्या के मध्य आचार्यश्री अपने पदोचित कार्यों को भी निर्बाध रूप से पूरा करते जा रहे थे। कितने ही श्रावकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की व्रत-दीक्षाएं लीं। इनमें उल्लेखनीय ब्रह्मचारी भरमण्णा जी को क्षुल्लक पद की दीक्षा प्रदान करना है।

ब्रह्मचारी भरमण्णा, आठ वर्षो से महाराज के साथ रहे और अटल निष्ठा, हार्दिक भक्ति एवं श्रद्धा के साथ महाराज की सेवा-शुश्रूषा करते रहे। जब आचार्यश्री की उपस्थिति में क्षुल्लक सुमतिसागर जी द्वारा दीक्षा विधि कराई गई तो उपस्थित जनता गद-गद हो गई। नये क्षुल्लकजी का दीक्षा-नाम सिद्धिसागर रक्खा गया।

एक ठोस कार्य

जब कोई महान ऐतिहासिक घटना आंखों के सामने घटती हो, तो निकट से देखने वाले बहुत कम लोग उसकी महत्ता ठीक-ठीक आँक पाते हैं। उस अवसर का उपयुक्त एवं स्थायी हितकारी लाभ उठाने की सूझ तो विरले ही लोगों में होती है।

आचार्यश्री की सल्लेखना की बात तो और भी अनूठी थी। उसकी ऐतिहासिकता को प्रायः सभी जैन प्रमुख अनुभव कर रहे थे। परन्तु भावुकतावश उनमें से किसी को बहुत दिन तक यह न सूझा कि आधुनिक यन्त्र-साधनों की सहायता से इस अवसर के क्या-क्या लाभ उठाये जा सकते हैं। महाराज के अनेक चित्र लिये गये और चल-चित्र भी निर्मित हुआ। पर महाराज के अन्तिम सन्देश को विभिन्न भाषाओं में ध्वनि-मुद्रित करने की आवश्यकता शुरू में किसी को नहीं सूझी। बम्बई के श्री निरंजनलाल जी और जगतप्रसाद जी को जब यह सूझा तब तक महाराज के उपवास के पच्चीस दिन व्यतीत हो चुके थे।

८ सितम्बर गुरुवार को महाराज से जब निवेदन किया गया कि समाज के नाम अन्तिम सन्देश दें, तो महाराज ने कहा, "बड़ा विलम्ब कर दिया आप लोगों ने। दस-पन्द्रह दिन पहले ही यह काम हो जाना चाहिए था। अब शरीर में शक्ति उतनी नहीं रह गई है। फिर भी यथाशक्ति जिनवाणी के महत्व पर कुछ कहूँगा। उसे घर-घर पहुँचाओ। लोगों को इसका तात्पर्य समझाओ। इसके द्वारा आत्म-कल्याण का सही मार्ग दृष्टिगत होगा।"

केवल मराठी भाषा में महाराज का सन्देश ध्वनि-मुद्रित किया और ९ सितम्बर के दिन उपस्थित हजारों दर्शकों को बार-बार सुनाया गया। सुन कर श्रावक लोग भक्ति-विह्वल हो उठे।

शेडवाल में क्षुल्लक श्री पार्श्वकीर्ति जी से हाल में जब मैं बातचीत कर रहा था तब महाराज की इस अन्तिम सन्देश की चर्चा चली। पार्श्वकीर्ति जी ने तब गद्-गद स्वर में कहा, "केवल बाईस मिनट के संक्षिप्त भाषण में महाराज ने जिनधर्म के समस्त मूल-सिद्धान्तों का सार निचोड़ कर रख दिया है।" यह सन्देश इस अंक में अन्यत्र प्रकाशित हो रहा है। उसे पढ़ने पर पाठक स्वयं देख सकेंगे कि पार्श्वकीर्ति जी का कथन किस प्रकार अक्षरशः सत्य है।

मरण को सामने देखकर भी जो अपने सिद्धान्तों पर अटल रहता है, वही सच्चा आध्यात्मिक योगी या साधु कहला सकता है। इस दृष्टि से भी आचार्य श्री का अन्तिम संदेश ऐतिहासिक महत्व का है। उसे पढ़ते या सुनते समय यह अलौकिक अनुभव होता है कि एक-एक शब्द आचार्य श्री के हृदय से निकल कर पाठक या श्रोता के मर्मस्थल को छू जाता है। सरलता, ओज, एवं प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से आचार्य श्री का यह अन्तिम सन्देश विश्व आध्यात्मिक साहित्य की अमूल्य निधि माना जा सकता है। आचार्यश्री की दिव्य वाणी को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने की व्यवस्था करने में जिन जिन ने योग दिया, उन सबके प्रति जैन समाज एवं आध्यात्मिक जिज्ञासुगण अत्यन्त आभारी हैं।

आत्मिक ज्योति

आचार्यश्री की शारीरिक शक्ति दिनों दिन घटती गयी। १२ सितम्बर को दर्शन के समय लोगों में बहुत शोर मचा। इससे आचार्य श्री के ध्यान में बाधा हुई और बोले, इसकी अपेक्षा मुझे कहीं दूर किसी एकान्त स्थान पर छोड़ दो जहां कोई भी पास न रहे, तो अच्छा।'

आचार्य श्री के इन व्यथापूर्ण शब्दों का लोगों पर ऐसा गहरा असर पड़ा कि १४ सितम्बर को दर्शन के समय लोगों ने सराहनीय अनुशासन रक्खा और एक दम मौन रहे।

महाराज का शरीर क्षीण होने पर भी उनकी आत्मिक ज्योति बराबर बढ़ती ही गयी। डाक्टरों ज्योतिषियों का विचार था कि १४ सितम्बर के बाद आचार्य श्री जीवित नहीं रहेंगे। परन्तु उनकी भविष्यवाणी झूठी साबित हुई।

१६ सितम्बर को आचार्य श्री की शारीरिक स्थिति कुछ बिगड़ने लगी। इस कारण उन्होंने इच्छा प्रकट की कि उनके ऊपर से परदा हटा दिया जाय और केवल एक चटाई के ऊपर, पीछी पर सिर रख कर उनको लिटा दिया जाय। ऐसा ही किया गया।

अन्तिम दर्शन

१७ सितम्बर को महाराज के शरीर की परीक्षा करने वाले वैद्यों एवं नाड़ी विशारदों ने कह दिया कि महाराज का देहावसान होने में अधिक समय नहीं है। उधर हजारों की संख्या में दर्शनार्थी उनके अन्तिम दर्शन के लिए लालायित थे और अधीर हो रहे थे। यह निश्चय किया गया कि लोगों को दर्शन कराया जाय। संघपति श्री गेंदनमल जी के सुझाव पर महाराज को पद्मासन में बिठाया गया। ध्यान मग्न आचार्य श्री को पहले इस बात की सुधि तक न थी। बाद में जब उनके ध्यान में बाधा हुई तब उन्होंने इशारे से बताया कि मुझे लिटा दो। शरीर की उस निर्बल दशा में पद्मासन धारण कर बैठना श्रमसाध्य कार्य था। सो मन की सारी शक्ति उसी में लगानी पड़ती थी। ध्यान में उससे बाधा पहुँचती थी। इसी कारण महाराज ने कहा कि मुझे लेटे रहने दो। इस तरह दुबारा लिटाते समय महाराज के क्षीण काय को अतीव वेदना हुई। फिर भी ६॥ से ११॥ बजे तक एक ही करवट में लेटे हुए उन्होंने हजारों को दर्शन दिये।

उस दिन रात भर महाराज का जीवन अन्न तव में था।

स्वर्गारोहण

१७ सितम्बर की रात भर भट्टारक लक्ष्मीसेन जी, भट्टारक जिनसेन जी, क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी, क्षुल्लक सिद्धिसागर जी आदि त्यागी गण महाराज के पास बैठकर णमोकार-मन्त्र जप रहे थे। क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी ने मुझे बताया कि महाराज स्वयं भी ओंकार मन्त्र जप रहे थे, जो उनके होठों के हिलने से प्रकट होता था।

१८ सितम्बर को करीब सवा छः बजे लोग चरणामृत (अभिषेक जल) लेकर पहुँचे। क्षुल्लक सिद्धिसागर जी ने महाराज से कहा, "महाराज, चरणामृत लाये हैं।" महाराज ने इशारे से बताया कि उनके अंगों पर चरणामृत लगाया जाय। क्षुल्लक सिद्धिसागर जी ने महाराज के शरीर पर अभिषेक जल का लेप किया और महाराज का हाथ अपने हाथ में लेकर चरणामृत का स्पर्श कराकर वह हाथ महाराज के माथे पर रखा।

संघपति श्री गेन्दनमल जी और शांतप्पा वैद्य भी इस समय साथ थे। गेन्दनमल जी ने मुझे बताया कि चरणामृत धारण करने के कुछ मिनट बाद महाराज का उच्छ्वास निःश्वास द्रुतगति से चलने लगा। कुछ समय बाद उसकी गति एकदम धीमी हो चली। अचानक एक झटका सा आया। बस, सांस बन्द हो गयी। उस समय ठीक ६ बजकर ५० मिनट हुए थे।

इस प्रकार वह महान आत्मा, जिसने दिगम्बर जैन

धर्म का पुनरुद्धार किया, पंचतत्व का चोला उतार कर, स्वर्ग सिधार गयी। वह मधुर वाणी, जो चालीस वर्षों से निरन्तर जिनवाणी का प्रचार करती रही, निस्तब्ध हो गयी। वे अथक चरण, जिन्होंने भारत की चप्पा-चप्पा भूमि पर विहार किया था, निष्क्रिय हो गये। धर्मप्रभावना का यह सूर्य अस्ताचल के पीछे ओझल हो गया।

महाराज के तपस्याग्नि में तपे कृश शरीर की दाह-क्रिया, भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन जी एवं जिनसेन जी के संचालकत्व में कुन्थलगिरि के क्षेत्र में ही सम्पन्न की गयी। दाहक्रिया से पूर्व उन तपस्वी के शरीर को विमान पर वीरासन में बिठाकर तीर्थ क्षेत्र की परिक्रमा करायी गयी। इस अवसर पर लाखों की संख्या में जन-सागर उमड़ पड़ा और उस दिव्य देह के दर्शन कर अपना जीवन सार्थक किया। सभी की आंखें सजल थीं। सभी के कंठ रुंधे हुए थे। सभी के हृदय शोकार्द्र थे।

विधिवत अभिषेक इत्यादि के बाद, चन्दन की चिता पर घी एवं सुगन्धि-द्रव्य डालकर अग्नि सुलगायी गयी। सूर्यास्त होते वह शरीर, जो एक महान आत्मा का ८४ वर्ष तक निवास स्थान रहा, भस्म हो गया, दिगम्बर जैन धर्म के इतिहास का एक ज्योतिर्मय अध्याय उसके साथ समाप्त हो गया।

अद्वितीय यतीन्द्र

दिगम्बर जैन मुनि कई हुए हैं, विद्यमान हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। परन्तु आचार्य शान्तिसागर महाराज का स्थान उनमें अद्वितीय रहा है। वह वास्तविक अर्थों में मूर्त्तिमान धर्म थे। दिगम्बर जैन आगम पर उनका सा अटल विश्वास एवं श्रद्धा शायद ही अन्य किसी में पायी जा सकती है। आगमों का वह जीवन भर अक्षरशः पालन करते रहे। आगम-विरोधी कार्य चाहे कोई भी करे, वह उसका डटकर विरोध करते थे। जिनवाणी का प्रचार एवं आगमों की रक्षा उनका जीवन-ध्येय रहा। इस ध्येय की पूर्त्ति में बड़ी से बड़ी बाधाओं को उन्होंने अनायास पार किया, कठोर से कठोर यातनायें सहीं और अन्त में निःस्पृहता पूर्वक प्राणोत्सर्गतक कर दिया। यह उन्हीं के अनवरत प्रयास का फल है कि जैन-समाज में गत चालीस वर्षों में जैसी धार्मिक जागृति हुई है वैसी उससे पहले भी कई शताब्दियों में नहीं देखी गयी।

> जल में थल में अम्बर में
> वह आडम्बर से शून्य रहा
> अडिग अजेय दिगम्बर साधु
> ज्ञायकता में लीन रहा :
>
> —क्षुल्लक सिद्धसागर

वह आदर्श यती थे, चारित्र चक्रवर्ती की उपाधि उनके साथ लगकर सार्थक हो गयी थी। अपने ऊपर वह जितना कठोर नियन्त्रण रखते थे, उतना ही कड़ा अनुशासन अन्य यतियों पर भी रखना चाहते थे। धर्म ही उनकी शक्ति एवं सम्बल था तपश्चर्या में हिमालय के समान उन्नत होने पर भी उनमें गंगा के समान सारल्य भी था। यही कारण था कि नितान्त निर्मूढ़ या निर्धन व्यक्ति भी उनकी सेवा में उतनी ही सुगमता से पहुँच सकता था जितनी कि पण्डित लोग और धन-कुबेर। राव हो या रंक, सब उनकी दृष्टि में समान थे। आत्मोद्धार उनका ध्येय था, परन्तु साथ ही वह हजारों-लाखों का उद्धार कर गये। वैराग्य का उपदेश देते थे, परन्तु उनके सान्निध्य से कोई भी व्यक्ति निराश नहीं लौट सकता था। उनकी बातचीत में गूढ़ आध्यात्मिक सत्यों के साथ साथ मधुर विनोद भी अमृतधारा की भांति फूट पड़ता था। स्वाध्याय एवं साधना के बल पर उन्होंने इतना शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि बड़े बड़े माने हुए विद्वान उनकी विद्वत्ता का लोहा मानते थे। फिर भी वह अपने प्रवचनों को शब्द-चातुरी की जगमगाहट ने कभी सजाते नहीं थे। इसी कारण उनके सरल, सुबोध प्रवचन, श्रोता के हृदय पर बैठ जाते थे।

ऐसे महान तपस्वी, दयामय आचार्य एवं सन्त अब हमारे बीच में से उठ गये हैं। उनके लिए स्मारक बनाने की विभिन्न योजनायें बन रही हैं। परन्तु उनका वास्तविक स्मारक तो उनका यशस्वी नाम होगा जिसे न जरा छू सकती है न मरण।

वीतराग आचार्य शान्तिसागर जी की जय।

श्री देशभूषण कुलभूषण दिगंबर जैन सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि (जि० उस्मानाबाद) येथें

परमपूज्य, योगीन्द्रचूडामणि, धर्मसाम्राज्य नायक

श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती आचार्यवर्य शांतिसागर महाराज

यांनीं आपल्या यमसल्लेखना-उपोषणाचे २६ वे दिवशीं दि० ८-९-१९५५ गुरुवार रोजीं सा ५-१० ते ५-३२ वाजपर्यंत २२ मिनिटे मराठी भाषेंत दिलेला अंतिम 'आदेश व उपदेश'

'ॐ जिनाय नमः। ॐ सिद्धाय नमः। ॐ अर्हं सिद्धाय नमः। भरत ऐरावत क्षेत्रस्थ भूत भविष्य वर्तमान तीस-चौबीसों भगवान नमो नमः। सीमंधरादि वीस विहरमान-तीर्थंकर भगवान नमो नमः। ऋषभादि महावीर पर्यंत चौदाशे बावन्न गणधरदेवाय नमो नमः। चौसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वराय नमो नमः। अंतकृत केवली मुनीश्वराय नमो नमः। प्रत्येक तीर्थंकर वेली दहादहा घोरोपसर्ग विजयी मुनीश्वराय नमो नमः। (मराठीमध्ये बोलूं? चालूं आहे का? हूं।

'अकरा अंग चौदा पूर्व शास्त्र महासमुद्र आहे। त्याचें वर्णन करणारे आज कोणी श्रुतकेवली नाहीं। कोणी केवली नाहीं। आमच्यासारखे क्षुद्र काय वर्णन करणार? आत्म्याचा कल्याण करणारा जिनवाणी सरस्वती श्रुतदेवी आहे। अनंत समुद्राइत के आहे। तर त्याचे मध्ये जिनधर्म हा कोणी जीव धारण करील त्या जीवाचा कल्याण अवश्य होईल। त्यापैकी एक अक्षर! ॐ अक्षर!! ॐ एकच अक्षर जो धारण करतो त्या जीवांचा कल्याण होतो सम्मेदशिखरजीवर भांडण करणारे दोन वानर त्याचें स्मरणानें स्वर्गाला गेले। याचें स्मरणानें सुदर्शनसेठी स्वर्गाला गेला। (खोकल्याचा ठसका) सप्त व्यसनधारी अंजनोचर स्वर्गाला गेलं—मोक्षाला गेलं। हे तर सोडा नीच जातीचा कुत्ता, जीवंधरमुनि—जीवन्धर कुमाराच्या उपदेशानं सद्गतीला गेला। इतका महिमा जिनधर्माचा आहे। परंतु (दीर्घ श्वास घेऊन) कोण धारण करीत नाही। जैन होऊनसुद्धां जिनधर्मावर विश्वास नाहीं। अनंत कालापासून जीव व पुद्गल दोन्ही भिन्न आहे हे सर्व जग जाणतो, परंतु विश्वास नाहीं। पुद्गलालाच जीव व जीवाला पुद्गल मानीत आला आहे। दोन्हींचे गुणधर्म अलग आहे। हे दोन्ही अलग अलग आहे। जीव पुद्गल आहे का? का पुद्गल जीव आहे! पुद्गल तर जड आहे। स्पर्श रस, वर्ण, गंध त्याचे गुण आहे। ज्ञान दर्शन चेतना हें लक्षण जीवाचे आहे। आपण तर जीव आहे।

जीवाचा पक्ष घेतला तर पुद्गलाचा घात होतो। पुद्गलाचा पक्ष घेतला तर जींवाचा घात होतो। परंतु मोक्षाला जाणारा जीव हा एकटाच आहे पुद्गल नाहीं। जीवाचं कल्याण होणं अनंत सुखाला पोचविणं आपलं काम आहे। परंतु मोहनीय कर्मानं जग सगलं भूलून गेलं आहे। दर्शन मोहनीय कर्म सम्क्त्यवाचा घात करतो। चारित्रमोहनीय कर्म चारित्राचा घात करतो। तर आपण कार्य केला पाहिजे ? सुख प्राप्त करण्याकरिता काय केला पाहिजे ? दर्शन-मोहनीय कर्माचा क्षय करण्याकरितां **सम्यक्त्व** धारण केले पाहिजे। चारित्रमोहनीय कर्माचा क्षय करण्याकरिता **संयम** धारण करावा। हा आमचा **आदेश** आहे ! **उपदेश** आहे !!

'अनंत कालापासून जीव मिथ्याकर्माच्या योगाने संसारामध्ये फिरत आहे। तर, मिथ्याकर्माचा नाश केला पाहिजे। सम्यक्त्व धारण केले पाहिजे। तर ! सम्यक्त्व काय आहे ? याचा समग्र वर्णन कुंदकुंदाचार्यांनी समयसार, नियमसार, प्रवचनसार पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड व गोम्मटसारादि ग्रंथामध्ये तसा वर्णन केलेले आहे। पण याच्यावर श्रद्धा ठेवतो कोण ? तर ! आपला आत्मकल्याण करून घेणारा जीव श्रद्धा ठेऊन सुख कशानं होईल याचा अनुभव घेतो। असंच संसारामध्ये फिरावयाचं असेल, तर, अनादि कालापासून फिरत आलाच आहे उपाय नाहीं। तर !

आपणकाय केलं पाहिजे?—'दर्शनमोहनीय कर्माचा क्षय केला पाहिजे। दर्शनमोहनीय कर्माचा क्षय आत्म-चिंतनाने होतो। कर्मांची निर्जरा आत्मचिंतनानच होतो। दान पूजा केले तर पुण्यबंध होतो तीर्थ यात्रा केले तर पुण्यबंध होतो हर एक धर्माचा काम पुण्यबंधाचें कारण आहे। परंतु केवलज्ञान होण्याला, अनंत कर्माची निर्जरा होण्याला आत्म-चिंतनहैच साधन आहे। तें आत्म-चिंतन चौवीस घंटे पैकीं छह घड़ी उत्कृष्ट, चार घड़ी मध्यम, दोन घड़ी जघन्य, निदानला दहा पंधरा मिनिटे, निदान आमचे म्हणणें पांच मिनिटे आत्म-चिंतन करावा। आत्मचिंतनाशिवाय सम्यक्त्व प्राप्त होत नाहीं; संसारबंध तुटत नाहीं; जन्म, जरा, मरण सुटत नाहीं। सम्यक्त्वाशिवाय दर्शनमोहनीयकर्माचा क्षय होत नांहीं। सम्यक्त्व होऊन सासट सागरपर्यन्त हा जीव राहील। तर चारित्र मोहनीय कर्मांचा क्षय करण्याकरितां संयमच धारण केले पाहिजे। संयमा शिवाय चरित्र मोहनीय कर्माचा क्षय नाहीं। तर कसवी असो हर एक जीवानं संयम धारण करायाला पाहिजे। भिऊं नका ? संयम धारण करावयास भिऊं नका? कपड्यांत संयम नाहीं। कपड्यांत सातवे गुणस्थान नाही। सातवे गुणस्थानाशिवाय आत्मानुभव नाहीं। आत्मानुभवा-शिवाय कर्मनिर्जरा नाहीं। कर्मनिर्जराशिवाय केवलज्ञान नाही व केवलज्ञानाशिवाय मोक्ष नाही। म्हणुन भिऊं नका ! भिऊं नका !! संयम धारण करावयास भिऊं नका। ॐ सिद्धाय नमः।

'सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि असा दोन भेद आहेत। सविकल्प समाधि कपड्यामध्यें ग्रहस्थाला होतो। कपड्यामध्ये निर्विकल्प समाधि नाहीं। निर्विकल्प समाधि साधल्या शिवाय सम्यक्त्व होत नाही। बाबानो ! म्हणून भिऊं नका ! मुनिपद धारण करा ! निर्विकल्प समाधि झालेनंतरच खरा सम्यक्त्व होतो। आत्मानुभवाशिवाय सम्यक्त्व नाहीं। व्यवहारसम्यक्त्व खरा नाहीं। हा साधन आहे। फल येण्यास फूल जसे कारण आहे। तसे व्यवहार सम्यक्त्व कारण आहे। असा कुंदकुंदस्वामीनं समयसारांत सांगितला आहे। निर्विकल्प समाधि मुनिपद धारण केल्यावरच होतो। सातव्या गुणस्थानापासून बाराव्यागुणस्थनापर्यंत पूर्ण होतो। तेराव्या गुणस्थानांत केवलज्ञान होतो। असा नियम आहे। शास्त्रामध्यें सांगितलं आहे।

'म्हणुन भिऊं नका ! भिऊं नका !! काय ? तर संयम धारण करा। याच्याशिवाय कल्याण होणार नाहीं। पुद्गल आणि जीव भिन्न भिन्न हे सर्वजग सामान्यपणें समजतो। खरं समजलं नाहीं। खरं समजलं असतं तर ? भाई,बंधु, माता, पिता हें आपलें म्हणुन समजलं नसतं। हा सगला पुद्गलाचा संबंध आहे। जीवाचा कोणी नाही रे बाबा ! कोणी नाहीं !! जीव अकेला आहे ! अकेला आहें !! त्याचा कोणीं नाहीं। अकेलाच फिरतो आहे। मोक्षालाही अकेलाच जाणार आहे। (खोकल दोन वेलां)

देवपूजा-गुरुपास्ती, स्वाध्याय-संयम, तप व दान या सहाक्रिया आहेत। असि, मसि, कृपि शिल्प, वाणिज्य आणि विद्या या सहा धंद्यापासून होणाऱ्या पापाचा त्या सहा क्रियांनी क्षय होतो। याच्यानं इंद्रियसुख मिलतो। पुण्य

आचार्य शांतिसागर के प्रति

रचियता—श्री जयकुमार 'जलज' इलाहाबाद

मनुजों को अमिय बाँटने वाले सागर
तुम धरती का विषपान किये चलते हो।

तुम चलते तो तूफान शरम जाते हैं, तुम रुकते तो विश्राम भरम जाते हैं।
तुम क्षण भर यदि हंसते हो तो अधरों पर, अनगिन प्रभात, मधुमास विलम जाते हैं।
वन्दी रहते हैं प्रलय भ्रुकुटि-रेखा में, मुस्कानों में निर्वाण लिए चलते हो।
मनुजों को अमिय बाँटने वाले सागर, तुम धरती का विषपान किए चलते हो॥

तुम चिन्तित होते रवि के रथ रुक जाते, अभिषेक तुम्हारा करने वादल छाते।
'तुम विष पी लेते हो दुनियां का' सुनकर, कितने ही विषधर विष देने को आते।
हम पथिक मोह-वश तुम्हें न जाने लेकिन, तुम मंजिल का आह्वान लिये चलते हो।
मनुजों को अमिय बाँटने वाले सागर, तुम धरती का विषपान किये चलते हो॥

यौवन गतिमय, वृद्धत्व तुम्हारा छूकर, दो चरण कि जैसे चलते-फिरते भूधर
तुम चलती-फिरती मुक्ति सतन, सावाहन, आवागमनों के वन्धन की इस भू पर।
तूफान तुम्हारा पथ बुहारते हैं, तुम, संकेतों में निर्माण लिए चलते हो।
मनुजों को अमिय बाँटने वाले सागर, तुम धरती का विषपान किए चलते हो॥

प्राप्त होतो। पंच पापाचा त्याग केल्यापासून पंचेंद्रिय सुख मिलतो पण मोक्ष मिलत नाही। संपत्ति, संतति, वैभव, राज्यपद, इन्द्रपदपुण्यानें मिलतो। परंतु मोक्षफक्त आत्मचिंतानंच मिलतो। नय, शास्त्र, अनुभव या तिन्हींचा मेल घालून पहावा। मोक्ष कशानं मिलतो ? मोक्षआत्मचिंतनानच मिलतो। ही भगवंताची वाणी आहे। ही एकच सत्य वाणी आहे। हा वाणीचा एक शब्द ऐकले तर जीव चढ़ून मोक्षाला जातो। तर ! हा वाणी कोणता आहे ? तर 'आत्मचिंतन' वाकी कांहीं केलं तर पुण्यवंध पड़तो। मोक्ष मिलण्यास 'आत्मचिंतन' च कारण आहे। हे कार्यकारायच पाहिजे।

"सारांश 'धर्मस्य मूलं दया' जिनधर्माचा मूल 'सत्य अहिंसा' आहे, सत्य अहिंसा' आपण सगले तोंडानं म्हणतो। स्वयंपाक जेवण स्वयंपाक जेवण फक्त तोंडानं म्हटल्यानं पोट भरतो कां ? क्रिया केल्याशिवाय—जेवल्याशिवाय पोट भरत नाहीं। क्रियामध्यें आणलं पाहिजे।

"वाकी सर्व सोडा। 'सत्य अहिंसा' पाला। सत्यामध्यें सम्यक्त्व होतो व अहिंसामध्यें सर्व जीवाचं रक्षण होतो। म्हणून हा व्यवहार करा। हा व्यवहार पाला। त्यामुले कल्याण होतो। (आतां पुरे हे) ॐ नमः।"

मानव कल्याण का आधार सत्य और अहिंसा

आचार्य महाराज का अन्तिम अमर संदेश

[परम पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने कुंथलगिरि (हैदराबाद) में आमरण अनशन के २६ वें दिन ता० ८ सितम्बर को शाम के ५ बजे मराठी में मानव-कल्याण के लिये जो उपदेश दिया वह रिकार्ड किया गया था। आचार्य श्री के उस अमर संदेश का हिंदी में अनुवाद समाज की जानकारी के लिये यहां प्रकाशित किया जा रहा है।]

ॐ नमः सिद्धेभ्यः २। पंचभरत, पंच ऐरावत के भूत भविष्यत् काल सम्बन्धी भगवानों को नमस्कार हो। तीस चौबीसी भगवानों को, श्री सीमन्धर आदि तीर्थंकर भगवानों को नमस्कार हो। ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त के १४५२ गणधर देवों को नमस्कार, चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नमस्कार, चौंसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वरों को नमस्कार। अन्त-कृतकेवलियों को नमस्कार। प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में होने वाले १०-१० घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरों को नमस्कार हो।

ग्यारह अंग चौदह पूर्व प्रमाण शास्त्र महासमुद्र है। उनका वर्णन करने वाले श्रुतकेवली नहीं हैं, उसके ज्ञाता केवली श्रुतकेवली भी अब नहीं हैं। उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं? जिनवाणी सरस्वती 'श्रुत देवी' अनन्त समुद्र तुल्य है। उसमें कहे गये जिन-धर्म को जो धारण करता है उसका कल्याण होता है। उसको अनन्त सुख मिलता है। उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा नियम है। एक अक्षर ॐ है। उस एक ॐ अक्षर को धारण करके जीवों का कल्याण हुआ है। दो बन्दर लड़ते-लड़ते सम्मेदशिखर से स्वर्ग गये। सेठ सुदर्शन स्वर्ग को गया। सप्त व्यसन-धारी अंजन चोर स्वर्ग को गया। कुत्ता महा नीच जाति का जीव जीवन्धरकुमार के णमोकार मन्त्र के उपदेश से देव हुआ। इतनी महिमा जैन धर्म की है किन्तु (श्वास लेते हुए) जैनियों को अपने धर्म में श्रद्धा नहीं है।

जीव और पुद्गल पृथक् पृथक् हैं

अनन्त काल से जीव पुद्गल से भिन्न है; यह सब लोग जानते हैं पर विश्वास नहीं करते। पुद्गल भिन्न है जीव अलग है। तुम जीव हो, पुद्गल जड़ है इसमें ज्ञान नहीं है, ज्ञान दर्शन चैतन्य जीव में है। स्पर्श रस गंध वर्ण पुद्गल में हैं, दोनों के गुण, धर्म अलग-अलग हैं। पुद्गल के पीछे पड़ने से जीव को हानि होती है। तुम जीव हो, मोहनीय कर्म जीव का घात करता है। जीव के पक्ष से पुद्गल का अहित है। पुद्गल से जीव का घात होता है। अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष जीव को ही होता है पुद्गल को नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पंच पापों में पड़ा है। दर्शन मोहनीय के उदय ने सम्यक्त्व का घात किया है। क्या करना चाहिये? सुख प्राप्ति की इच्छा है, तो दर्शन मोहनीय का घात करो, चारित्र मोह का नाश करो, संयम धारण करो, दोनों मोहनीय का नाश करो, आत्मा का कल्याण करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव संसार में फिरता है। मिथ्यात्व का नाश करो, सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है? सम्यक्त्व का वर्णन समय-सार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, गोम्मटसार आदि बड़े-बड़े ग्रन्थों में है, पर इन पर श्रद्धा कौन करता है? आत्म-कल्याण वाला ही श्रद्धा करता है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। ॐ सिद्धाय नमः।

कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिन्तन

तुम्हें क्या करना चाहिये? दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करो, आत्म-चिन्तन से दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय होता है, कर्मों की निर्जरा भी आत्म-चिन्तन से होती है।

मानव कल्याण का आधार

दान से, पूजा से, तीर्थ-यात्रा से पुण्य-बन्ध होता है। हर धर्म कार्य से पुण्य का वन्ध होता है किन्तु कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिन्तन है। केवलज्ञान का साधन-आत्म-चिंतन है। अनन्त कर्मों की निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन है। आत्म-साधन के सिवा कर्म-निर्जरा नहीं होती है। कर्म-निर्जरा विना केवल-ज्ञान नहीं होता और केवल-ज्ञान विना मोक्ष नहीं होता। क्या करें? शास्त्रों में आत्मा का ध्यान उत्कृष्ट ६ घड़ी का, मध्यम ४ घड़ी और जघन्य २ घड़ी कहा है। कम से कम १०–१५ मिनट ध्यान करना चाहिये। हमारा कहना यह है कि कम से कम ५ मिनट तो आत्म-चिंतन करो। इसके विना सम्यक्त्व नहीं होता। सम्यक्त्व के विना संसार-भ्रमण नहीं छूटता। सम्यक्त्व के पश्चात् संयम धारण करो। सम्यक्त्व होने पर ६६ सागर यहां रहोगे। चारित्र मोहनीय का क्षय करने के लिये संयम धारण करना चाहिए, इसके विना चारित्र मोहनीय का क्षय नहीं होता संयम धारण किये विना सातवां गुणस्थान नहीं होता और सातवें गुण-स्थान के विना उच्च आत्म-अनुभव नहीं होता। वस्त्र धारण में सातवाँ गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व और संयम धारण के विना समाधि संभव नहीं

ॐ सिद्धाय नमः। समाधि दो प्रकार की है एक निर्विकल्प समाधि और दूसरी सविकल्प समाधि। गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए विना निर्विकल्प समाधि नहीं होगी अतएव निर्विकल्प समाधि पाने के लिये मुनि पद पहले धारण करो। इसके विना निर्विकल्प समाधि कभी नहीं होगी। निर्विकल्प समाधि हो तो सम्यक्त्व होता है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। आत्म-अनुभव के सिवाय सम्यक्त्व नहीं है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा (परमार्थ) नहीं है। फूल जैसे फल का कारण है, व्यवहार सम्यक्त्व आत्म-अनुभव का कारण है। आत्म-अनुभव होने पर खरा (परमार्थ) सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्प समाधि मुनि पद धारण करने पर होती है। सातवें गुणस्थान से वारहवें पर्यन्त निर्विकल्प समाधि होती है। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है, ऐसा शास्त्र में कहा है। यह विचार कर डरो मत कि क्या करें? संयम धारण करो। सम्यक्त्व धारण करो। इसके सिवाय कल्याण नहीं है, संयम और सम्यक्त्व के विना कल्याण नहीं है। पुद्गल और आत्मा भिन्न हैं यह ठीक ठीक समझो। तुम सामान्य रूप से जानते हो, भाई, वन्धु, माता, पिता पुद्गल से सम्वन्धित हैं, उनका जीव से कोई सम्वन्ध नही है। जीव अकेला है वावा (भाईयो), जीव का कोई नहीं है। जीव भव भव में अकेला जावेगा। देवपूजन, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तप ये धर्म कार्य हैं। असि मसि कृषि शिल्प-विद्या वाणिज्य ये ६ कर्म कहे गये हैं। इनसे होने वाले पापों को क्षय करने को उक्त धर्म क्रिया कही हैं, इससे मोक्ष नहीं है। मोक्ष किससे मिलेगा? केवल आत्म-चिंतन से मोक्ष मिलेगा और किसी क्रिया से मोक्ष नहीं होता।

जिनवाणी का अपूर्व माहात्म्य

भगवान की वाणी पर पूर्ण विश्वास करो इसके एक २ शब्द से मोक्ष पा जाओगे। इस पर विश्वास करो। सत्य वाणी यही है. एक आत्म-चिंतन से सव साध्य है और कुछ नहीं है। वावा! (भाई) राज्य सुख सम्पत्ति संतति सव मिलते हैं, मोक्ष नहीं मिलती है। मोक्ष का कारण एक आत्म-चिंतन है। इसके विना सद्गति नहीं होती है।

सारांश—'धर्मस्य मूलं दया' प्राणी का रक्षण दया है। जिन धर्म का मूल क्या है? 'सत्य और अहिंसा।' मुख से सव सत्य अहिंसा बोलते हैं मुख से भोजन २ कहने से क्या पेट भरता है? भोजन किये विना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिये। वाकी सव काम होंगे। सत्य अहिंसा पालो। सत्य से सम्यक्त्व है। अहिंसा से दया है। किसी को कष्ट नहीं दो। यह व्यवहार की वात है। सम्यक्त्व धारण करो संयम धारण करो। इसके विना कल्याण नहीं हो सकता।

आचार्य श्री के कुछ संस्मरण

लेखक—श्री पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी

विचारशील आलोचक यदि किसी का प्रशंसक बन जाय तो उसकी प्रशंसा का मूल्य एवं महत्व सौगुना बढ़ जाता है। विद्वान जगन्मोहनलाल जी ने आचार्य श्री के "ढोंग" का भेद लगाने के उद्देश्य से "गुप्तचर" बनकर उनको निकट से परखा। इस निकट की जांच के फलस्वरूप जब उन्होंने पाया कि आचार्य श्री आगमों के नियमों का अक्षरशः पालन करने वाले आदर्श यती हैं, तो वह उनके प्रशंसक एवं भक्त बन गये। अपने इस कायापलट का रोचक वर्णन श्री पं०जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने इस लेख में किया है और आचार्य श्री के अनुपम व्यक्तित्व की अनेक मनोहारी झाँकियाँ भी प्रस्तुत की हैं।

कटनी में आचार्य संघ का चातुर्मास उत्तर प्रान्त में दक्षिण प्रान्त के साधुओं का प्रथम चातुर्मास था। यह चातुर्मास हमारी इच्छा के सर्वथा विपरीत किन्तु हमारे पूर्व पुण्योदय मात्र का फल था।

विक्रम सं० १९८४ में जब संघपति सेठ घासीलाल पूनमचन्दजी चतुर्विध संघ को लेकर सम्मेदशिखर जा रहे थे, तब उत्तर प्रान्त में उथल पुथल मच गई थी। पत्र पत्रिकाएं एक स्वर से साधु संघ का विरोध कर रहीं थीं। इतने श्रावक-श्राविकाओं का सामान, मोटर नौकर चाकर आदि का परिकर साधु का महान् परिग्रह है, ऐसे परिग्रही दिगम्बर जैन साधु नहीं माने जाएं यह उस समय उत्तर प्रदेश के सामाजिक प्रमुख पत्रों की आवाज थी। पत्रों के पाठक गण एक स्वर से उसका समर्थन करते थे। उनमें मैं भी था, और मेरे अनेक विद्वान् मित्र भी।

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा—तीर्थराज का दर्शन ये दोनों आकर्षण हम लोगों को भी शिखर जी ले गए। चारों ओर धार्मिक वातावरण था। महत्पुण्य की सामग्री थी, तो भी हमें एक खटका था, वह यह कि कहीं उन मुनियों का दर्शन न हो जाय—जिन्हें हमारा हृदय शिथिलाचारी मुनि मान रहा था। १ सप्ताह का युग वहीं बीता पर प्रसन्नता यह रही कि मुनि दर्शन के सङ्कट का सामना नहीं करना पड़ा। यदि कभी दर्शन मार्ग चलते हो भी गया तो वह 'दर्शन' अश्रद्धा पूर्वक होता था, मुनिपने की भावना उनके प्रति कभी उत्पन्न नहीं हुई।

संघ शिखर जी से विहार कर उत्तर प्रान्त की ओर आया, क्रमशः इलाहाबाद ज्येष्ठ मास में पहुँचा। विचार था चातुर्मास के निर्णय का। अनेक स्थान के भक्त गण प्रार्थना करने इलाहाबाद पहुँचे। उनमें भूले भटके हमारे नगर के एक जैन बन्धु भी थे। उनने भी कटनी चातुर्मास की प्रार्थना की। बहुत ही आश्चर्य जनता को हुआ जब आगरा, देहली, कानपुर, बनारस आदि के अनेक श्रीमंतों की प्रार्थना को किनारे रखकर आचार्यश्री ने कटनी के चातुर्मास की—सहज देखा देखी से कीगई प्रार्थना को मंजूर किया।

कटनी अनेकानेक तार आए, पर यहां से सिवा इंकार के कोई उत्तर हमने नहीं भेजा। संघपति जी ने हमारे सब इंकारी तार रद्दी की टोकरी में डालकर हमारी इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल किन्तु आचार्य श्री की आज्ञा से कटनी ही चातुर्मास का निर्णय कर उस ओर प्रयाण कर दिया।

हमने यह समाचार सुनकर अपने एक सहयोगी के साथ इलाहाबाद के मार्ग में भेंट कर बहुत टालटूल की पर

संघपति जी ने एक न मानी। हमने वहुत वहाने किए कि हमारे यहां इस साल प्लेग की वीमारी आयगी। हर तीसरे साल आती है। इस पर परम भक्तराज संघपति ने यह उत्तर दिया कि आचार्य श्री के चरण पड़ने पर प्लेग आपके गांव से सदा को भाग जायगी। पता नहीं कि इस भक्त राज की भावना का यह फल हुआ या आचार्य श्री की पुण्यतपस्या का प्रभाव हुआ २८ वर्ष से कटनी में प्लेग नहीं आई। उस समय तो हम भक्त राज की इन वातों को थोथा ही समझते थे अत: स्पष्ट इंकार कर दिया कि चातुर्मास कटनी में न हो सकेगा। संघ वापिस ले जाइये। संघपति ने हमारा स्पष्ट उत्तर पाकर हमें भी स्पष्ट उत्तर दिया कि संघ कटनी की ओर प्रयाण कर चुका है, रुकेगा नहीं चाहे कटनी से दूर जंगल में टीन के टपरे डाल कर चौमासा हम लोग करालेंगे, पर मार्ग रुकेगा नहीं। हम लोग मजवूर होकर लौट आए।

समय आता गया। मैं चिन्तित था, सोचा कि गुप्त परीक्षा की जाय और कटनी में तथा समाज के क्षेत्र में खुल कर विरोध किया जाय। मैं गुप्त वेष से मार्ग में संघ में सम्मिलित हो गया। संघपति चले गए थे उनके भाई संघ में थे अत: मुझे पहिचानने वाला कोई न था। १ सप्ताह के वाद यह जान सका कि मुझे संघ के संवन्ध में मात्र भ्रम है। ये परम शुद्ध दिगम्वर साधु हैं। मैंने उसी वेष में वन्दना की। वह स्थान अमरपाटन था, जव मैंने अपने जीवन में उन्हें मुनि रूप में जाना। उस सप्ताह के भीतर दिन रात एक ही कार्य था उनकी चर्या की हर प्रकार परीक्षा करना। जो समझ में न आवे उसे एक दम साथी द्वारा प्रश्न कराकर आचार्य श्री से उसका उत्तर जानना।

मेरे इस छद्म वेष का भण्डाफोड़ तव हुआ जव मैहर ग्राम संघ पहुंचा। रेल्वे स्टेशन होने से मैं वहां से भागना चाहता था कि हमारे ग्राम के अनेक युवक भी वहाँ पहिले से स्वागतार्थ संघ के आ गए थे, मिल गए। उन्होंने जव मुझे "पंडितजी" कहकर सम्वोधन प्रारम्भ किया, और आचार्य श्री के पूछने पर परिचय दिया तव आचार्य श्री को आश्चर्य हुआ कि ८—१० दिन से संघ के साथ साथ आने वाला व्यक्ति किस प्रकार छद्म वेष से उनकी परीक्षा करता रहा।

मेरी इस छद्म यात्रा का फल उत्तम रहा, और वड़े आनन्द से ५।। मास कटनी चातुर्मास हुआ।

कटनी चातुर्मास

प्रथम दिन ही आचार्य संघ का १०००० व्यक्तियों ने स्वागत किया। समारोह से नव निर्मित भव्य विशाल छात्रालय भवन में चातुर्मास हुआ। चतुर्विध संघ के चरण रज से पवित्र यह संस्था आज भी "श्री शान्ति निकेतन जैन विद्यालय" के नाम से चल रही है। यह संस्था भवन दिगम्वर जैनधर्म के इस काल के लिए एक ऐतिहासिक स्थान वन गया।

कटनी में आचार्य संघ के चातुर्मास प्रारम्भ होने पर पचासों सामाजिक व्यक्ति केवल संघ की परीक्षार्थ आए। वह उत्तर प्रदेश की जनता के लिये स्वर्णिम युग था जव वे अपनी परीक्षा की अग्नि में स्वयं तप कर विशुद्ध परिणामी वने और उन्होंने अपना भ्रम दूर कर मुनि दर्शन प्राप्त किया और अपने जीवन को सफल वनाया। प्रतिदिन प्रभात काल-जिन पूजन कर छात्रालय के भवन में आचार्य-संघ पूजन होता। गायन वादन के साथ आचार्य भक्ति के भजन होते। तदनन्तर दोनों ओर तखत पर आचार्य संघ रहता सामने श्रावक जन और मध्य में जिनवाणी के प्रवचन का मुझे सौभाग्य मिलता।

अनन्तर श्रावक जन आहार दान का लाभ उठाते; मध्यान्ह सामायिक के वाद संघ के साधुजनों द्वारा उपदेश होता। रात्रि में सामायिक के वाद श्रावक जन पुन: संघ दर्शन करते, आवश्यक वैयावृत्य करते, यह थी दिन चर्या। समाज की प्राय: सभी प्रकार की विभूतियों ने कटनी में संघ दर्शन किया, तथा कटनी समाज को गौरवान्वित किया। कटनी में श्री सेतूलाल जी ने अगहन वदी २ को आचार्य श्री को आहार देकर पश्चात् छात्रालय भवन के प्राङ्गण में स्थित एक उखटे आम्र वृक्षकी एक शाखा के नीचे पूजन किया। आश्चर्य है कि उस वृक्षमें कभी फूल फल नहीं आते थे पर उस साल वैशाख में वही एक शाखा फूली और फली। वाद वह वृक्ष उखड़ कर धराशायी हो गया। यह एक प्रत्यक्ष अतिशय देखा गया।

कटनी से प्रयाण

कटनी से प्रयाण के समय जनता रोती थी, आचार्य

श्री मुस्कुराते थे लोगों की मोह की महिमा पर। विलहरी-ग्राम में ३-४ घर थे और ५ मन्दिर, संघ वहां गया। ग्राम में पानी खारा है। गांव बाहिर से लोग जल लाते हैं। ऐसी स्थिति में अपने जीवन भर हाथ के पानी पीने का नियम करना श्रावकों को कठिन था; पर संघ को दान का लोभ भी नहीं छोड़ सकते थे अतः नियम किया। विश्वास पूर्वक उस स्थान पर कुआ खोदा जिस चबूतरे पर संघ के साधु बैठ गए थे। कालान्तर में कुआ तयार होने पर उसका जल मीठा ही निकला। जैन जैनेतरों में इस घटना से जैन धर्म की प्रभावना हुई। यह भी एक आश्चर्य जनक घटना हुई।

पिपरौद

यह ग्राम विलहरी से ८ मील है। मार्ग दो थे, छोटा और बड़ा। छोटे मार्ग में एक भयंकर सर्प रहता था। उसके मारने का उपाय कर भी लोग मार नहीं पाते थे और वह अनेक पशुओं और मनुष्यों को यमलोक पहुँचा चुका था। बहुत रोके जाने पर भी आचार्य संघ ने छोटे मार्ग से ही पिपरौद जाना जारी रखा। परमाश्चर्य हुआ जब वहां से समस्त संघ के निकलने पर सर्पराज केवल फरण उठाकर देखते रहे और किसी पर आक्रमण नहीं किया। उस दिन से सभी के लिए वह मार्ग विघ्न रहित बन गया। यह तीसरा अतिशय देखा गया।

अतिशयों पर मेरा स्वयं भी विश्वास नहीं रहता था आज भी कहीं अतिशयों की बात सुनता हूँ तो विश्वास नहीं होता, पर जो घटनाएं प्रत्यक्ष गोचर हों उनसे इंकार भी नहीं किया जा सकता इसी कारण मैंने उन्हें यहां लिखा है। संभवतः बहुत से सज्जन मेरे इस लिखने पर भी विश्वास नहीं करेंगे पर मैं अपने अविश्वास वातावरण के बाद उत्पन्न इन अतिशयों को भुला नहीं सकता इसलिए इन्हें लिखा है।

ललितपुर चातुर्मास के संस्मरण

ग्राम २ भ्रमण कर जब संघ ललितपुर आया तो संघ के आहारमें दूध और फलोंका उपयोग श्रावकों द्वारा देते व साधु जनों को लेते देखकर एक सज्जन न रह सके। उन्होंने आचार्य श्री से निवेदन किया कि यह प्रान्त गरीब है वह इन खर्चो को वहन नहीं कर सकता।

आचार्य श्री ने कहा कि आप लोग ऐसा खर्च स्वयं उठाते क्यों हैं? आप साधु को अपने योग्य भोजन से ही भोजन क्यों नहीं देते? वे सज्जन बोले कि देश २ के प्रमुख पुरुष मनमाना पैसा खर्च कर भी उत्तम से उत्तम आहार विधि लगाते हैं तब हम गरीब श्रावक क्या करें? यदि हम नहीं करते तो हमें लज्जा आती है। आचार्य श्री ने प्रेम से उक्त बात सुनी और सब साधुओं को बुला कर परिस्थिति का ज्ञान कराया। तत्काल साधुओं में किसी ने दूध, किसी ने घी, किसी ने मीठा, किसी ने नमक, किसी ने सभी रसों का त्याग किया, फलों का त्याग प्रायः सबने किया। आचार्य श्री ने सब रसों का त्याग कर सिंहनिःक्रीडित व्रत को अंगीकार किया।

इस व्रत में १-२,१-३,२-४,३-५, इस क्रम से उपवास करते हैं और उसी क्रम से घटते हैं संख्या ९ तक जाती है। मैं ललितपुर गया तब महाराज ७ उपवास के बाद पारणा करने वाले थे और ८ उपवास उसके बाद लेने वाले थे। मैंने भी आहार दान देने का विचार किया। आश्चर्य था कि आचार्य श्री मेरे गृह पर भी मेरे पुण्योदय से पधारे। मैंने देखा कि केवल मूंग की दाल बिना नमक की और बिना नमक की रोटी इतना मात्र साधु लेगा, और वह भी ७ दिन के बाद। पश्चात् ८ उपवास लेना है, मेरी रूह कांप उठी। कदाचित अन्तराय न हो जाय, अच्छा होता कि कहीं अन्यत्र निर्विघ्न आहार हो जाते। मैंने क्यों प्रतिग्रह किया। मेरे दोनों हाथ और पैर कांपने लगे। तलकचन्द शाह वकील फलटन ने मेरी हालत देखी तो समझा कि अन्तराय हो जायगा, यदि इनके हाथ से लोटा छूट गया तो। उन्होंने आगे चलकर लोटा ले लिया और आहार दान दिया। मैं एक तरफ बैठ गया और हाथ जोड़े देखते व अनुमोदना करते बैठा रहा। अन्तमें एक ग्रास जलमात्र दिया। आचार्य श्री की यह घोर तपस्या और निरीह वृत्ति आश्चर्य में डालने वाली थी। यह उन की महान् आश्चर्यकारी तपस्या थी।

स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतराय जी

उक्त बैरिस्टर सा० ललितपुर दर्शनार्थ आए। ये इंगलैंड जारहे थे। इस विचारसे उतरे जो बड़ी दूर जाना है, कब लौटना होता है या नहीं होता। दिगम्बर साधु का चातुर्मास स्थान मार्ग में है। बिना दर्शन किए उलंघ कर

ज़ाना ठीक नहीं। दर्शन कर अपने को पवित्र किया। आचार्य श्री के पास कुछ ऐसे भी भक्त आ जाते थे जो अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों के प्रति अश्रद्धा का भाव संघ में जगाते रहते थे। वैरिस्टर सा० के कुछ धार्मिक प्रश्न थे। प्रायश्चित्त शास्त्र में वर्णित अनेक विषयों पर शंकाएं थीं। वे चाहते थे कि आचार्य श्री से शंका समाधान किया जा सके। मुझ से उनने चर्चा की उन्होंने वताया था मेरी २२ शंकाओं में ७-८ का समाधान आपने भेजा था वह मुझे ठीक लगा। कुछ समाधान अन्य विद्वानों ने भी भेजे जो ठीक थे। फिर भी ७-८ प्रश्न शेष हैं, जिनका समाधान नहीं हुआ। यहां मेरे प्रति वातावरण अश्रद्धा मूलक है अतः आप ही प्रश्न करें तो मैं समाधान सुनलूंगा। मैंने वैरिस्टर सा० से कहा कि आचार्य श्री से आप खुद वात करें आप दर्शनार्थ श्रद्धा से आए तव अश्रद्धा मूलक वातावरण कैसा ?

मैं आचार्य श्री के पास गया। वाहिर से ही आवाज मिली कि एक ब्रह्मचारी महाराज से कह रहे हैं कि वे भ्रष्ट वैरिस्टर आए हैं। माँसभक्षी सुरा-पायी हैं, न जाने किस परीक्षा को या उपद्रव को उठाने आए हैं, सुनकर मेरा माथा ठनका। मुझे देखकर ब्रह्मचारीजी चुप हो गए और किनारा कस गए। मैंने आचार्य श्री को वताया कि महाराज ये ब्रह्मचारी व्यर्थ वुराई करते हैं, झूठी वातें वनाते हैं। वैरिस्टर सा० धर्मात्मा श्रद्धालु पंचाणुव्रतधारी हैं। पूर्वापर संवंध सप्रमाण ज्ञात होने पर आचार्य श्री को विश्वास हुआ। ब्रह्मचारीजी को वुलाकर उन्होंने प्रमाण मांगे और तव वे वोले मैंने सुना था। आचार्यश्री ने उन्हें ऐसे ऐसे झूठे संवाद पर विश्वास करने तथा उनका प्रचार करने पर उनकी भर्त्सना की।

वैरिस्टर सा० ने शुद्ध वातावरण में अपने शेष प्रश्नों का आचार्य श्री से समाधान प्राप्त किया। वहुत संतोष व्यक्त किया तथा रात्रि में नगर की आम सभा में अपनी दिगम्वर जैन धर्म व दि० जैन साधुओं के प्रति असीम श्रद्धा का परिचय दिया।

देहली चातुर्मास

देहली चातुर्मास के अवसर पर भी मुझे जाने का सौभाग्य मिला। जाने पर कुछ वातावरण दूसरा ही मिला जैन अनाथालय के विशाल भवन में आचार्य संघ का आवास था। एक शिष्ट महोदय से परिचय हुआ वात-चीत के सिलसिले में वोले कि पंडितजी आपके आचार्य महाराज को फोटो उतरवाने का वहुत शौक है। क्या मुनियों को ऐसा शौक उचित है ? मैंने अपनी समझ के अनुसार उन्हें समझाया पर मैं उन्हें सन्तुष्ट न कर सका। एक दूसरे सज्जन जो वात-चीत के समय आगये थे वोले ३-४ दिन से तो आचार्य महाराज फोटोग्राफरको साथ ले जाते हैं और शहर में जहां अच्छी २ विल्डिग हैं-जनसमुदाय है—वहां अपना फोटो उतारने की प्रेरणा करते हैं। मुझे भी यह वात खटकी और आचार्य श्री के सम्वन्ध में अनेक विरुद्ध विचार उदित होने लगे। मुझे चैन न पड़ी, मैंने आचार्य दर्शन के वाद उसी दिन संध्या समय ३ वजे एकान्त में उनसे प्रश्न किया। उस समय १०-५ सज्जन खास २ आ गए थे। मैंने पूछा कि गुरुदेव ! आपको फोटो उतराने का शौक है ? आप फोटोग्राफर खुद साथ लेकर विशिष्ट स्थानों पर अपना चित्र लेने की प्रेरणा करते हैं। यह वात यहां अपवाद के रूप में सुनने में आई सो क्या वात है ?

आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि अपवाद हो सकता है, हमें उसकी चिन्ता नहीं है, पर वास्तव में वात यह है कि हमें चातुर्मास के २ माह वीतने पर यह ज्ञात हुआ कि इस नगर में "हमारे उन्मुक्त विहार की सरकारी आज्ञा नहीं है।" कुछ वन्धन है। और वह यह कि जव हम नगर में जांय, तव १० आदमी हमें घेर कर चलें ताकि दिगम्वरता का प्रदर्शन लोगों को न हो। हमें जव यह ज्ञात हुआ तो हमने इस वन्धन को तोड़कर अपने धर्म प्रतिपालन की अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना उचित समझा। अव कई दिन से हम किसी को साथ नहीं आने देते, स्वयं उन्मुक्त विहार करते हैं, और यह चाहते हैं कि एक दिगम्वर जैन मुनि इस राजधानी में—किले के सामने से, जुमामस्जिद के सामने से, वाइसराय भवन के सामने से, असेम्वली भवन के सामने तथा अन्य अनेक राजकीय भवनों और जनसमाज के वाजारों से उन्मुक्त विहार कर सकता है यह वात सप्रमाण सिद्ध हो, तथा भविष्य में भी मुनि विहार सारे भारत में अक्षुण्ण हो जाय। शताब्दियों के जो प्रति-वंध दि० जैन मुनि विहार पर हैं वे दूर हो जाँय। इस उद्देश्य से उन २ स्थानों व जन समुदायों में चित्र उतराए हैं। देहली ही क्यों ? भारत के सभी प्रधान नगरों में सड़कों व वाजारों में हमने प्रेरणा कर फोटो उतराये हैं ताकि मुनि-

विहार प्रतिबंध दूर हो। हमने श्रावकों से कह दिया है कि आप पर कोई आपत्ति नहीं आयगी। जो कानूनी या जनता की ओर से विघ्न या उपसर्ग आयेंगे उन्हें हम मुनि-धर्म की स्वतन्त्रता की रक्षा हित स्वयं झेलेंगे। हमें इस मार्ग पर चलने से अपने धर्म की सुरक्षा दृष्टिगोचर होती है। मुनि का मार्ग स्वतन्त्र है। वह केवल आगमोक्त अपने चारित्र के नियमों में नियंत्रित है। अन्य सारे नियन्त्रण जो उसके मुनि-धर्म के परिपालन में किंचित् भी बाधक हों, उसे मुनि कभी स्वीकार न करेगा। हमारे इस उद्योग से अन्य सभी दि० जैन मुनियों में साहस होगा, और दि० जैनधर्म की प्रभावना ही होगी। हो सकता है कि हमें अनेक विघ्नों या उपसर्गों का सामना करना पड़े, समाधि लेनी पड़े पर इससे हमारे धर्म को बाधा नहीं प्रत्युत उसकी रक्षा है।

इस शंका को स्थान देना असंगत है कि हमें फोटो उतराने का शौक है। हमारे शरीर की स्थिति तो जीर्ण अधजले काठ की है उसका क्या चित्र ? और फिर वे चित्र हम कहां रखेंगे और उनका क्या करेंगे ? पर श्रावकों का यह कर्त्तव्य है कि हमारे व्यक्ति गत स्मरण हेतु नहीं, बल्कि मुनि विहार की स्वतंत्रता के प्रमाण स्वरूप उन सब चित्रों को सम्हाल कर रखें। भविष्य में वे दि० जैन धर्म की रक्षा के लिये ऐतिहासिक प्रमाण होंगे।

आचार्य श्री के उक्त स्पष्टीकरण से हम सब अवाक् रह गए। अपने आप पर बड़ी ग्लानि हुई। उनके महान् गंभीरतम विचारों और दि० जैन मुनि धर्म की रक्षाहित घोराति घोरोपसर्ग सहन करने की क्षमता पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मैंने कहा कि महाराज आपको ये सब बातें जनता पर प्रकट कर इस अपवाद को दूर करना चाहिए। महाराज श्री ने उत्तर दिया कि अच्छे कार्य करते हुए भी यदि अपवाद आये तो उसे भी सहना मुनिधर्म है न कि उसका प्रतिवाद करना।

आचार्य श्री के महान् मानस प्रति बिम्ब का दर्शन कर मैं आत्म विभोर हो गया।

प्रतापगढ़ चातुर्मास

उक्त अवसर पर हमारे नगर के वयोवृद्ध स० सि० कन्हैयालाल जी १२ आदमियों के संघ सहित दर्शनार्थ पहुँचे। करीब १० दिन वहां ठहरे बहुत आनन्द रहा। यहां अच्छे जिनालय हैं। गर्भ गृह, मध्यम गृह और बाह्यगृह ऐसी ३ वेदियां जिनालय में हैं। गर्भ गृह के अभिषेक के लिए प्रातः मन्दिर में भी स्नान करना आवश्यक है। मैं भी एक दिन सम्मिलित हुआ। बीस पंथ आम्नाय यहां प्रचलित है। मन्दिर में भगवान् के अभिषेक के पूर्व चरणों में पूर्व दिन के लगे हुए चंदन को छुड़ाने का कार्य प्रारंभ हुआ एक बड़ी कूची से पानी डाल २ कर रगड़ २ कर चंदन छुड़ाया जा रहा था। जब छूट नहीं रहा था तब मैंने देखा कि भगवान् के चरणों में गढ्डे पड़ गए हैं और उनमें चंदन भर गया है जो छुड़ाने पर भी नहीं छूट रहा और जिसके लिए जोरों की रगड़ाई हो रही थी।

मुझे बहुत दुःख हुआ। अभिषेक पूजन के बाद मैंने सब घटना आचार्य श्री को बताई। मेरे निवेदन करने पर उन्होंने भरी सभा में लोगों की भर्त्सना की। उन्होंने कहा कि क्या भगवान् के चरण चन्दन से चर्चने का यह अर्थ है, कि भगवान के पैर ही छिल जायं ? ऐसी मूढ़ भक्ति से तो पाप ही हाथ लगेगा। कार्य विवेक से करना चाहिए। पंथ मोह छोड़ कर आगम के वास्तविक अर्थ को समझो। आचार्य श्री के उक्त विवेचन से हमें यह बात भली भांति ज्ञात हुई कि कुछ लोगों में जो यह धारणा है कि आचार्य श्री बीस पंथ आम्नाय के पोषक हैं वह नितान्त भ्रम पूर्ण है। आचार्य श्री वास्तव में आगम मार्ग के पोषक हैं।

बारामती-चातुर्मास

मुंबई में दशलाक्षणी पर्व के बाद सेठ निरंजनलाल जी के साथ में बारामती आया। श्री पं० सुमेरुचंद जी दिवाकर सिवनी वहां थे। ३ दिन तक संयत-पद के संबंध में चर्चा रही। आचार्य श्री ९३ वें सूत्र में संयत पद न रहने और मैं रहने के पक्ष में था चौथे दिन श्री पं० मक्खन लाल जी न्यायालंकार पधारे। उन्होंने अपनी निजी युक्तियों से मेरा पक्ष खंडन करना प्रारंभ किया, पर उनकी युक्तियों से आचार्य श्री सहमत न थे। पं० जी का कहना था कि प्रारंभ की ४ मार्गणाएं द्रव्यापेक्षया भी हैं शेष मार्गणाएं भावापेक्षया हैं। आचार्य श्री का कथन था कि सभी मार्गणाएं द्रव्य और भाव उभय परक कथन करने वाली हैं। मैं चुप बैठ गया, आचार्य श्री और पंडित जी की बहस छिड़ गई। मैंने यह देखा कि किस प्रकार आचार्य श्री ने पंडित जी को निरुत्तर किया। आचार्य श्री की तर्कपूर्ण वर्णन शैली देखने वाले मुग्ध

हो जाते थे। उनके बोलते समय न तो चेहरे पर उतार चढ़ाव आता था, और न वाणी ही अपनी मन्द मुसकान युक्त स्तर से ऊंची नीची ही होती थी, फिर भी युक्तियां अकाट्य होती थीं। वे इतने स्नेहालु शब्दों में समझाते थे जैसे कोई भूले भटके अपने सगे संबंधी को मार्ग पर लगा रहा हो, और जब तक वह मार्ग पर न आवे तब तक थोड़ीसी चिन्ता नजर आ रही हो तथा उत्सुकता ज्ञात हो रही हो।

दूसरे दिन प्रातः एक सुन्दर पुष्प गुलाब का लाकर पं० मक्खनलाल जी ने आचार्य श्री के चरणों पर रख दिया। आचार्य श्री बोले पंडित जी विद्वान होकर भी यह "अतिरेक" कैसा? पंडित जी ने कहा कि जब देव को पुष्प चढ़ाया जा सकता है तब गुरु को क्यों नहीं। आचार्य श्री बोले कि भाई सामने चढ़ा दो आंग पर क्यो? फिर लोग धीरे २ माथे पर चढ़ावेंगे तो दिगम्बरता ही समाप्त हो जायेगी। यह एकेन्द्रिय जीव है, हमारे शरीर की गर्मी से उसे बाधा हो सकती है। यह ठीकनहीं इस नगर में इसी तरह के अतिरेक से कुछ भाइयों ने एक मुनिराज के प्राण संकट में डाल दिए। एक समय मुनिराज के आने पर लोगों ने यह सोच कर कि भगवान् का पंचामृताभिषेक हो सकता है तो गुरु का भी किया जाना चाहिए। उनका पञ्चामृताभिषेक कर दिया। वे ज्वर पीड़ित थे सन्निपात हो गया। अतः हर जगह विकेक से भी काम लेना चाहिए भक्ति के अतिरेक में अपना विवेक न खोना चाहिए। पंडित जी उनके तर्कपूर्ण उत्तर को सुनकर मौन हो गए। उपस्थित जनता को भी आश्चर्य हुआ। हमारे विद्वान दिवाकरजी ने उक्त वार्तालाप को तत्काल लिपि बद्ध अपनी डायरी में भी कर लिया।

इस घटना में भी आचार्य श्री के आगम पुष्ट विचारों का दर्शन होता है। न उन्हें तेरह पंथ या बीस पंथ का पक्ष न विरोध। वे आगम सम्मत मार्ग का उपदेश करते थे समाज उसे माने या अपने पंथ के अनुसार कार्य करे उसे हठ पूर्वक प्रेरणा नहीं करते थे। वे सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में समान रूप से पूज्य थे।

ऐसे तो छोटे मोटे अनेक संस्मरण हैं तथापि मुझ से संबन्ध रखने वाली कुछ घटनाओं को स्मरण कर मैंने यहां अंकित किया है।

कुंथलगिरि-समाधिस्थान

जब आचार्य श्री ने अपने नेत्रों की कमजोरी के कारण समाधि ग्रहण की तब मैं भी कुंथलगिरि दर्शनार्थ गया। कठिनता से आचार्य श्री का दर्शन नजदीक से कर सका। संघपति जी ने कहा की महाराज ने एक बार आपकी याद की थी। मुझे बहुत कष्ट हुआ कि मैं इतनी देर से क्यों आया। दर्शन करने पर आचार्य श्री ने पूछा कौन है? मैंने अपना नाम बताया। महाराज बोले आप देर से आए अब मेरी शक्ति अधिक बात करने की नहीं है। हमें बहुत दुःख हुआ। पर लाचारी थी मुझे समाचार भी देर से मिला जब "जैनगजट" पढ़ा। अस्तु।

मैंने आचार्य श्री से निवेदन किया कि गुरुदेव! "अब हम लोग निराधार हो गए। आपने भव कूप भ्रमण से हमारा उद्धार किया सहारा दिया। अब हम लोग क्या करें? आचार्य श्री ने अल्प सार गर्भित शब्दों में मुझे उत्तर दिया। "क्यों? व्यक्ति का क्या अवलम्बन? जिस धर्म ने हमें तारा जिससे तीर्थंकर प्रभु तीर्थंकर बन सके उस धर्म का अवलम्बन करो। वही सबके लिए शरणभूत है।"

मैंने दूसरा प्रश्न किया कि गुरुदेव। गत २८ वर्ष से मैंने आपका और आपने मेरा परिचय पाया क्या मेरा कल्याण होगा? आचार्य श्री बोले। "आपका परिणाम अच्छा है तो कल्याण अवश्य होगा।"

उत्तर इतना स्पष्ट था कि मुझे सतत परिणाम-विशुद्धि के लिए प्रेरणा करता रहेगा।

संघ के प्रधान मन्त्री की हैसियत से मैंने जब संदेश की याचना की तब भी आचार्य श्री ने उत्तर दिया—

संघ के विद्वान यदि स्वयं धर्म को पकड़े रहेंगे तो अवश्य सफल होंगे अन्यथा नहीं।

आचार्य श्री का वह अंतिम पुण्य दर्शन जीवन की अन्तिम साध थी। वह सदा अविस्मरणीय रहेगी। ये जीवन के पुण्य क्षण कैसे आए कैसे चले गये कुछ पता नहीं। अबतो उनकी एक मात्र यादगार है जो अकेला ही जीवन का आधार है।

आचार्य श्री की लोकोत्तर साधना

[लेखक—श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार]

हिन्दी के वयोवृद्ध, अनुभव-वृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध पत्रकार तथा लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने इस मार्मिक लेख में मानव जीवन के चरम ध्येय की रूप-रेखा खींची है और उसकी पृष्ठ भूमि में आचार्य श्री की सल्लेखना के सही महत्व का मूल्यांकन किया है। उनके तर्क युक्त एवं गवेषणापूर्ण लेख को पढ़ने के बाद पाठक सहज ही उनके इस निष्कर्ष से सहमत हो जायेंगे कि "आचार्य श्री ने इस मृत्युंजय पद को पाकर जीवन के महानतम उत्कर्ष का जो आदर्श हमारे सामने उपस्थित किया है, वह अतुल प्रकाश-पुंज हमारे सामने सदा ही बना रहेगा।···

किसी जैन आचार्य का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि "न धर्मो धार्मिकैर्विना"। इसका अभिप्राय यह है कि धर्म धार्मिक लोगों के बिना जीवित नहीं रह सकता। धर्म विशुद्ध रूप से आचरण का विषय है और ग्रन्थों अथवा शास्त्रों का नहीं। ग्रन्थ अथवा शास्त्र उसको समझने और उसका स्वरूप स्पष्ट करने में केवल सहायक हो सकते हैं। वे उसमें जीवन डाल कर प्राणवान नहीं बना सकते। ग्रन्थ अथवा शास्त्र निर्जीव पदार्थ के समान हैं। प्राणवान तो मनुष्य है जो धर्म को अपने आचरण में ढाल कर उसको प्राणवान बनाने की क्षमता रखता है। दीपक प्रकाश का साधन है। वह स्वयं कुछ भी कर नहीं सकता। उसका उपयोग करना और उससे लाभ उठाना मनुष्य का काम है। यदि मनुष्य उससे काम न ले तो प्रकाश देने वाली उसकी शक्ति निरर्थक हो जाय।

यही स्थिति हमारे धर्म ग्रंथों और धर्म शास्त्रों की है। उनसे लाभ उठाने में ही उनकी सार्थकता है और जो मनुष्य उनको अपने जीवन में पूरा उतार कर उनसे लाभ उठा लेता है वह धन्य हो जाता है। ऐसे धार्मिक लोग उनको प्राणवान बना कर धर्म की रक्षा करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार जिस धर्म को आचरण में पाला जाता है और उसकी रक्षा की जाती है, वह मनुष्य की अथवा मनुष्य समाज की रक्षा करता है। जिस धर्म की उपेक्षा अथवा हत्या कर दी जाती है वह मानव समाज के भी विनाश का कारण बन जाता है। धर्म का पालन न करना ही मनुष्य के ह्रास, पतन अथवा विनाश का मुख्य कारण है। इसी कारण धर्म ग्रन्थों अथवा धर्म शास्त्रों के और उनमें निहित धर्म के रहते हुए भी मानव समाज का पतन हो जाता है।

यदि कोई मनुष्य दीपक के प्रकाश से काम नहीं लेता अथवा काम नहीं ले सकता तो वह दीपक को दोष नहीं दे सकता। हमारे धर्म शास्त्र और धर्म गुरु दोनों ही इस बात पर पूरा जोर देते हैं कि मनुष्य की कथनी और करनी एक सरीखी होनी चाहिये। जो कुछ वह कहे वैसा ही करे, तो उसका अपना लाभ होगा और दूसरों को भी वह अपने से लाभ पहुँचा सकेगा। "जैसा करेगा वैसा भरेगा," यह एक आम कहावत है। जिसने मानव जीवन की बहुत बड़ी सचाई

गागर में सागर की तरह भर दी है। अंग्रेजी में भी एक कहावत है जिसका अभिप्राय: यह है कि मौखिक उपदेश देने की अपेक्षा आचरण से उपदेश देना कहीं अधिक प्रभावशाली होता है। श्रुति और स्मृति के धर्म को मानने वालों ने तो यहां तक कह दिया कि आचार अर्थात आचरण ही परम धर्म है। अन्य सब धर्मों में भी इस सचाई का प्रतिपादन किया गया है।

धर्म ही समाज का आधार

हमारी सारी सामाजिक व्यवस्था का आधार धर्म है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि धर्म को व्यवहारिक रूप देने अथवा उस को जीवन का अंग बनाने के लिए ही सारी सामाजिक व्यवस्था की गई है। जैन धर्म विशुद्ध आचार प्रधान धर्म है। धर्म का दार्शनिक रूप केवल उन पंडितों और विद्वानों के लिये होता है, जो धर्म शास्त्रों की गहराई में जा कर उस की दार्शनिक बारीकियों को समझ सकते हैं। आम जनता उन को समझ नहीं सकती है। वह तो व्यवहारिक रूप को ही समझ सकती है।

जैन धर्म में अणुव्रतों और महाव्रतों का क्रम इसी दृष्टि से स्थिर किया गया है। धर्म केवल साधु, यती या मुनि के लिये ही नहीं है। वह केवल उन वीतराग व्यक्तियों के लिये ही नहीं है जो संसार से विरक्त हो जाते हैं। यह उन गृहस्थों के लिये भी है जो संसार की मोह माया और ममता में फंसे रहते हैं। उन के पालन का स्वरूप थोड़ा-थोड़ा भिन्न अवश्य है। भेद उसके स्वरूप में इतना नहीं है जितना कि उनके पालन करने की मात्रा में है। इसीलिये अणु और महान शब्दों का प्रयोग किया गया है। हिन्दू धर्म में पंच महायज्ञों का विधान केवल गृहस्थी के लिये ही किया गया है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी के लिये उस का विधान नहीं है। गीता का यह विधान कि धर्म की अल्पमात्रा भी महान से महान संकट से रक्षा कर सकती है, अणुव्रतों के पालन का ही समर्थक है।

लेखक

कठोर साधना

अन्य धर्मों में विशेष कर हिन्दू धर्म में संसार से विरक्त होने पर धर्म के बन्धन कुछ ढीले पड़ जाते हैं। किन्तु जैनधर्म में वे और भी अधिक कठोर हो जाते हैं। इस दृष्टि से जैन साधु की जीवन चर्या अथवा साधना अत्यन्त कठोर, अत्यन्त तपोमय और अत्यन्त धर्म निष्ठ है। उसको गृहस्थी की अपेक्षा हजारों गुना अधिक कठोर साधनामय जीवन बिताना पड़ता है। दोनों के जीवन में बाह्य सांसारिक दृष्टि से कोई मेल ही नहीं है। व्रतों के पालन की आन्तरिक भावना निश्चय ही एक सरीखी है जिसका तात्पर्य है मानव जीवन में पवित्रता पैदा करते हुए उसका निर्माण करना। जैसे कि बाल्यावस्था में बालक स्कूल में भरती होकर बालबोध से अपनी पढ़ाई का प्रारम्भ करता है; वैसे ही अणुव्रतों के विद्यालय में भरती होने वाला गृहस्थ धार्मिक जीवन के आचरण सम्बन्धी पहले पाठ का अभ्यास प्रारम्भ करता है। जैसे जैसे एक एक परीक्षा में पास होने से उसकी पढ़ाई का दर्जा बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे अणुव्रतों के विद्यालय में भी धर्म के पालन किंवा आचरण अथवा अनुष्ठान का दरजा भी नित्य प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है उसमें कमी नहीं आ सकती। यदि कमी आ जाती है तो परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी की तरह धर्म पालन में वह गृहस्थ भी असफल हो जाता है। जिस प्रकार उच्चतम पढ़ाई को स्नातकोत्तर पढ़ाई कहा गया है, वैसे ही अणुव्रतों के विद्यालय अथवा महाविद्यालय में स्नातक हो जाने वाला महाव्रतों का अभ्यास शुरु कर

देता है और गृहस्थ धर्म का परित्याग कर यती मुनि अथवा साधु की परमोच्च श्रेणी में पहुंच जाता है इस प्रकार अणुव्रतों तथा महाव्रतों की जैन धर्म की सामाजिक व्यवस्था मानव जीवन का पूर्ण विकास करने के लिये है। किसी ऊंचाई पर चढ़ने के लिये जैसे एक एक सीढ़ी पर पैर रखते हुए ऊंचा चढ़ा जाता है, वैसे ही जीवन की उच्चतम ऊंचाई पर पहुचने के लिए जैनधर्म और जैन जीवन में व्रतों की सीढ़ियों की अत्यन्त सरल, स्पष्ट और व्यावहारिक व्यवस्था की गई है। इस को सर्वोत्कृष्ट व्यावहारिक धार्मिक व्यवस्था कहा जा सकता है।

सर्वस्व-परित्याग

मुनि और साधु के जीवन में व्रतों का अनुष्ठान उस महान रूप में होना चाहिये जो उन की चरमसीमा तक पहुंच जाय और सर्व साधारण के लिये वह आदर्श बन जाय। साधु की इस स्थिति में उसकी निर्बलता के साथ कोई समझौता हो नहीं सकता। उस में किसी प्रकार की कमी या कमजोरी की कल्पना तक नहीं की जा सकती। उन सब से ऊपर उठने के लिये ही वह सर्वस्व का परित्याग कर देता है और दिगम्बर वृत्ति धारण कर लेता है। केवल जीवन निर्वाह के लिये कर पात्र में खड़ा खड़ा भोजन ग्रहण कर लेता है और किसी भी प्रकार का कोई संग्रह वह करता नहीं। किसी भी प्रकार की सवारी को काम में न लाकर वह सर्वथा पैदल भ्रमण करता है। समाज से कम से कम या अत्यल्प लेकर उस को अधिक से अधिक या अत्यधिक देता है। उस की अपनी आवश्यकताएं प्रायः शून्य पर पहूँच जाती हैं और अहो रात्रि चौबीसों घण्टे वह लोक सेवा, लोक कल्याण और लोकोपकार में लगा रहता है। धर्ममय जीवन का एक एक क्षण जिस धर्म साधना में लगा रहता है वह चारों ओर के वातावरण में धार्मिकता एवं पवित्रता का संचार कर मानव कल्याण के लिये अनुकूलता पैदा करता रहता है। यह है जैन साधु जीवन की महान साधना, जिसका व्यावहारिक दृष्टि से भी अपना ही महत्व है।

तपोनिष्ठ जीवन

जैन धर्म द्वारा प्रतिपादित इस पृष्ठ भूमि में जब हम चारित्र चक्रवर्ती महान् साधु वीतराग आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज के महान जीवन की महान साधना पर विचार करते हैं, तब हमें उनकी लोकोत्तर महानता का एक आभास सहज में ही मिल जाता है। सच तो यह है कि ८४ वर्ष के अपने तपोनिष्ठ जीवन में उन्होंने धर्म की जो साधना की और मानव का जो कल्याण किया, उससे कहीं अधिक वे अपनी मृत्यु से कर गये। जीवन की अन्तिम साधना सल्लेखना से उन्होंने मृत्यु को नहीं, किन्तु अमर पद को प्राप्त किया है। मृत्यु काल में किया गया साधनामय यह अनुष्ठान धर्ममय जीवन की महान ज्योति को प्रगट करने वाला है। अपने जीवन में इस अमर ज्योति को प्रगट करने वाले महान मुनि यति अथवा साधु सदियों में कभी कोई विरला ही प्रगट होता है और वह अपने पीछे सर्वथा नवीन इतिहास छोड़ जाता है। अतीत के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तब हमें पिछले हजार—आठ सौ वर्षों में भी ऐसा साधनामय अमरपद को पाकर अपने पीछे दिव्य अमर ज्योति का नया इतिहास छोड़ जाने वाले महापुरुष के दर्शन नहीं होते।

साधनामयी मृत्यु

सच तो यह है कि वर्तमान युग में जब मानव जीवन में धर्म के लिये कुछ भी स्थान नहीं रहा, धर्म का स्थान अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार ने ले लिया और उसकी आवश्यकता तक अनुभव नहीं की जाती, तब संतशिरोमणि आचार्य श्री सरीखे महासाधकों के जीवन के सहारे ही धर्म इस संसार में टिका हुआ है। साधु, सन्त और महात्मा अपने जीवन से जिस धर्ममय वातावरण का निर्माण करते हैं आचार्य श्री ने अपनी साधनामयी मृत्यु से भी उसका निर्माण कर लोक कल्याण के अलौकिक कार्य का संपादन आदर्श रूप में किया है।

आचार्य श्री की लोकोत्तर साधना

कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको इस महान साधना में भी आत्म-हत्या की जघन्य वृत्ति दीख पड़ती है। वैसे इस संसार में जो जन्मा है वह मरता भी अवश्य है। पँचभूतों से बने इस मानव देह की अन्तिम गति उसके पंचभूतों में ही लीन होने में है। लेकिन इस देह के ऊपर एक आत्मा है, जो अजर, अमर, नित्य और शाश्वत है। जीवन के अन्तिम क्षण तक जो महापुरुष उस आत्मा की साधना में लीन रहता है, इस नश्वर देह से विमुख होकर उस आत्मा में निमग्न हो जाता है और देह की मोहमाया ममता को सर्वथा तिलांजली देकर विदेह स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह आत्म-हत्या नहीं करता; परन्तु मृत्यु का पराभव करके अमरपद की प्राप्ति करता है और अमर ज्योति को प्रदीप्त करके उसमें लीन हो जाता है। सल्लेखना की महान साधना का हमारी दृष्टि में यही स्वरूप और यही महत्व है।

हिन्दु शास्त्र भी यह मानते हैं कि जीवन के अन्तिम क्षणों में जिस भावना से मानव इस देह का परित्याग करता है, उसी के अनुसार पुनर्जन्म होकर उसको नया जन्म प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण ने भी गीता में ऐसा ही कहा है। सल्लेखना की साधना जीवन में पवित्रता की जिस परम स्थिति को पैदा कर देती है, उसमें कषाय या मैल की छाया तक शेष नहीं रह जाती। स्फटिकमणि की तरह जीवन पवित्रतामय बन जाता है। आहार, विहार तो क्या जब गर्म पानी तक का परित्याग कर दिया जाता है तब कषाय के प्रतीक इस देह की प्रतीति तक साधक को नहीं रहती और केवल आत्मा की अनुभूति में ही लीन होकर वह आत्मामय बन जाता है। इसी प्रकार विशुद्धतम पवित्रता की उच्चतम भावना के साथ इस देह का उत्सर्ग करने वाला, कल्पना तो कीजिये कि दूसरे जीवन में कितनी पवित्र, कितनी शुद्ध, कितनी ऊंची आत्मा के साथ इस भूमि पर अवतीर्ण होता होगा। वह स्वेच्छा से मृत्यु का आलिंगन करता भी नहीं है। यह तो न केवल इस जन्म में किन्तु दूसरे जन्म में भी मृत्यु को पराजित करना ही है; क्योंकि वह महासाधक अपनी आत्मा पर मृत्यु की हल्की सी भी छाया पड़ने नहीं देता। यही है मृत्यु जय पद की प्राप्ति।

मृत्युंजय पद

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज ने इस मृत्युंजयपद को पाकर जीवन के महानतम उत्कर्ष का जो आदर्श हमारे सामने उपस्थित किया है वह अतुल प्रकाश का पुंज हमारे सामने सदा ही बना रहेगा। उसके प्रकाश में अपने जीवन को उत्कर्ष की ओर लेजाकर ही हम अपने धर्म और अपने समाज की सबसे बड़ी सेवा कर सकते हैं और इसी रूप में आचार्य श्री का जीवित स्मारक बना सकते हैं। यही है वह छोटा सा कार्य, जिसमें हम सब को आचार्य श्री के बाद लग जाना चाहिये।
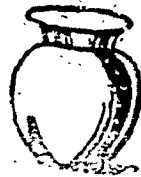
ईर्या और एषणा के लिए सल्लेखना

[ले०—विद्यावाचस्पति पं० वर्द्धमान जी शास्त्री शोलापुर]

[विद्वान् लेखक के मतानुसार, "दुनिया में सब धर्म जीवन को सुखमय बनाने का मार्ग बताते हैं। जैन धर्म जीवन को सुखमय बनाने का मार्ग तो बताता ही है, साथ में सुखपूर्वक मरने का भी मार्ग वह बताता है। जैन साधु मरते मरते भी दुनिया के सामने एक आदर्श उपस्थित कर जाते हैं यह विशेषता है।" आचार्य श्री की सल्लेखना का तात्विक विश्लेषण करते हुए विचारशील लेखक ने अपनी इस उक्ति को तर्क पूर्वक सिद्ध किया है।]

जैन साधु सिंह वृत्ति के धारक होते हैं। सिंह अपने सर्वस्व को खोकर भी स्वाभिमान वृत्ति का त्याग नहीं करता है देह और प्राण का त्याग कर सकता है, परन्तु कायर नहीं बन सकता। यह बात इतर-प्राणियों में नहीं देखी जा सकती है। श्वान जरासे रोटी के टुकड़े के लिए लांगूल चालन करता फिरता है। इसी प्रकार जैन साधु अपने महाव्रत व मूलगुणों की विशुद्धि के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते हैं। अपने सर्वस्व को खोने के लिए वे तैयार रहते हैं। देहका भी विसर्जन हो जाय, परन्तु साधक आत्मा पतित न हो, वह स्ववृत्ति से च्युत न हो इस विषय पर वे पूर्ण जागृत रहते हैं। स्वैराचार और प्रमाद उनके पास भी नहीं आ सकते। इसलिये महर्षियों ने कहा है कि—

"चित्रं जैनी तपस्या हि
स्वैराचारविरोधिनी"

[एक जैन अपरिग्रही साधु के लिए २८ मूलगुणों का पालन करना अनिवार्य होता है। अट्ठाईस मूल गुण ये हैं। पंच महाव्रत, पंच समिति, पंचेंद्रिय निरोध, षडावश्यक, केशलोंच, नग्नता, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन, एकभुक्त इस प्रकार २८ मूलगुण हैं।

लेखक

इन २८ मूलगुणों का धारक ही जैन साधु हो सकता है, जैन साधु का आहार विहार निर्दोष होना चाहिये। आहार विहार की निर्दोषता से ही इतर मूल-गुणों का निर्दोष व प्रमाद रहित वृत्ति से पालन निर्भर है। आहार विहार की विशुद्धि समिति में अन्तर्भूत हो जाती हैं।

आहार की विशुद्धि एषणा समिति में और विहार की विशुद्धि ईर्या समिति में होती है।

ईर्या समिति

अपने व्रत की निर्दोषता के लिए साधु गमन करते समय ४ हाथ जमीन को बराबर देखते हुए जाते हैं कि वहां उनके गमन से किसी जीव को कष्ट तो नहीं हो रहा है, किसी प्राणी को पीड़ा तो नहीं होती है, इसे ईर्यासमिति कहते हैं।

एषणा समिति

तप की रक्षा के लिए शरीर की आवश्यकता है। शरीर की रक्षा के लिए आहार की आवश्यकता है। केवल शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनं को लक्ष्यमें रखकर स्वधर्म के साधन के लिए आहार को अच्छी तरह देख भाल कर खड़े २ ग्रहण करना इसे एषणा समिति कहते हैं। इन दोनों समितियों से अहिंसा धर्म का निर्दोष पालन होता है। इसलिए अहिंसा व्रत की भावना में साधुवों के लिए

[शेष पृष्ठ ६६ पर]

सल्लेखना की दैनन्दिनी

आचार्य शान्तिसागर महाराज की ऐतिहासिक सल्लेखना के छत्तीस दिनों का देनन्दिन का विवरण नोचे संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है :—

१४ अगस्त १६५५—आचार्य श्री ने प्रातः ६ बजे वादाम का पानी ग्रहण किया और तदनन्तर उपस्थित जनता के सम्मुख एक सप्ताह की नियम सल्लेखना धारण करने की घोषणा की। महाराज को अन्तिम आहार देने का श्रेय वारामती के गुरु-भक्त सेठ चन्दूलाल जी सराफ को प्राप्त हुआ।

१५ अगस्त १६५५—महाराज ने जल नहीं लिया। मध्यान्होपरान्त ३ वजे ताम्र पत्रों पर उत्कीर्ण "श्रीधवल" "जयधवल" एवं "महाधवल" सिद्धान्त ग्रन्थ शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक-सँस्था, वम्बई की ओर से समर्पित किये गये। महाराज की आज्ञानुसार फल्टन में वनी नई संस्था द्वारा प्रकाशित "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" महाराज को भेंट किया गया। इस अवसर पर महाराज ने श्रुतोद्धार के ऊपर मार्मिक प्रवचन दिया।

१६ अगस्त १६५५—महाराज ने आज भी जल नहीं लिया। आज उन्होंने भक्तों को दर्शन दिया।

१७ अगस्त १६५५—महाराज ने आज दिन में ३ वजे से सिर्फ जल को छोड़कर आमरण सल्लेखना ग्रहण की। इस अवसर पर सँघपति सेठ गेंदमल जी वम्वई, सेठ राव जी देवचंद जी शोलापुर, गुरुभक्त सेठ चंदूलाल जी सराफ वारामती, सेठ मानिकचन्द जी वीरचन्द जी मंत्री कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र आदि उपस्थित थे। एवं त्यागीवर्ग में श्री १०५ क्षुल्लक विमलसागर जी, क्षुल्लक सुमतिसागर जी श्री भट्टारक जिनसेन जी म्हसाल, ब्र० भरमण्णा तथा आर्यिकायें उपस्थित थीं। आचार्य श्री इसीदिन पहाड़ के ऊपर मन्दिर जी में पहुंच गये।

१८ अगस्त १६५५—जल ग्रहण नहीं किया। प्रातः काल अभिषेक के समय तथा मध्यान्ह में आचार्य श्री वाहर पधारे और जनता को दर्शनों का लाभ कराया। सारा समय गुफा में आत्मध्यान में व्यतीत किया।

१६ अगस्त १६५५—जल नहीं लिया।

२० अगस्त १६५५—आज जल ग्रहण किया। कमजोरी के कारण सिर में भी दर्द हो गया। शारीरिक-स्थिति कमजोर होते जाने पर भी चर्या पूर्ववत जारी रही।

२१ अगस्त १६५५—आज जल भी ग्रहण नहीं किया। विशेष वात यह हुई कि आचार्य श्री के भतीजे जिन गौड़ा ने आचार्य श्री सेआजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

२२ अगस्त १६५५—आज भी जल ग्रहण नहीं किया। आचार्य श्री की उपस्थिति में श्री भट्टारक लक्ष्मीसेन जी की अध्यक्षता में आचार्य शांतिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था के मंत्री श्री वालचंद देवचंद जी शहा बी. ए. शोलापुर को मानपत्र समर्पित किया गया। भाषण समाप्त होने के अनंतर आचार्य श्री ने भी वालचद देवचंद शहा को शुभाशीर्वाद दिया। आज श्री माणिकचंद जी चवरे कारंजा, पं० तनसुखलाल जी काला आदि पधारे।

२३ अगस्त, १६५५—जल ग्रहण किया। दोनों समय जनता को दर्शन देकर कृतकृत्य किया। दर्शनार्थियों का तांता लग गया। दूर दूर से जनता उमड़ पड़ी।

२४ अगस्त, १६५५–जल ग्रहण किया। दोनों समय जनता को दर्शन दिये। देहली से लाला महावीरप्रसाद जी ठेकेदार, रतनलाल जी मादीपुरिया, ला. उल्फत राय जी, रघुवीरसिंह जी जेना वाच वाले, पं० मक्खनलाल जी, तथा प० इन्द्रलाल जी शास्त्री जयपुर, ब्र० सूरजमल जी, ब्र. पं० श्रीलाल जी दर्शनार्थ पधारे। आज क्षुल्लकों की संख्या १२ क्षुल्लिकाएं ५ और ब्रह्मचारी १५ हो गये थे।

सल्लेखना के समय शास्त्रानुसार दिगम्बर यति आचार्य पद छोड़ देते हैं। आचार्य श्री ने भी तदनुसार आचार्य पद त्याग करने की घोषणा की और अपने प्रथम शिष्य श्री १०८ वीरसागर जी महाराज को आचार्य घोषित किया। श्री १०८ वीरसागर जी महाराज इस अवसर पर जयपुर में विराजमान थे अतः घोषणापत्र लिखवाकर उनके पास भिजवाया गया। दर्शनार्थियों की संख्या ३ हजार से अधिक थी।

२५ अगस्त १९५५—जल ग्रहण किया। दोनों समय दर्शन देकर जनता को कृतार्थ किया। आज दर्शन देने के पश्चात देहली से पं० शिखरचन्द जी मैनेजर महासभा लाला ऋषवदास जी, रामसिंह जी खेकड़ा वाले आदि दर्शनार्थ पधारे। श्री पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ बी. ए. एल. एल. बी. सिवनी, पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री जयपुर, पं० मक्खनलाल जी दिल्ली, भट्टारक जिनसेन जी के भाषण हुये।

२६ अगस्त १९५५—आज जल ग्रहण किया। दोनों समय जनता को दर्शन देकर शुभाशीर्वाद दिया। आज दिन महासभा के महामन्त्री लाला परसादीलाल जी पाटनी दिल्ली और लाला राजकृष्ण जी दिल्ली दर्शनार्थ पधारे। विशेष बात यह हुई कि ३००० जनता को क्षमाभाव ग्रहण किया और कहा कि सब पुरानी बातों को भूल गये हैं यह भी चाहते हैं कि प्राणीमात्र उनको क्षमा करे। आचार्य श्री ने इस समय महासभा को भी याद किया। जब महाराज से महासभा के महामन्त्री जी ने महासभा के लिये कोई संदेश देने की प्रार्थना की तो महाराज जी ने कहा–

महासभा सदैव की तरह धर्म रक्षा में सदा कटिबद्ध रहे, धर्म को कभी न भूले और धर्म के विरुद्ध कभी कोई कार्य न करे।

२७ अगस्त १९५५—आज जल ग्रहण किला। अभिषेक के समय तथा दोपहर में भी आचार्य श्री ने उपस्थित जनता को दर्शन देकर जनता को शुभाशीर्वाद दिया इन्दौर से श्री स्या० वा० वि० वा० पं० खूबचंद जी शास्त्री इन्दौर श्रीसेठ रतनचन्द हीराचंद जी बम्बई दर्शनार्थ पधारे। दोपहर में श्री मानिकचन्द जी भिसीकर, स्या० वा० वि० वा० पं० खूबचंद जी शास्त्री, जैन जाति भूषण लाला परसादीलाल जी पाटनी, महामन्त्री महासभा, लाला राजकृष्ण जी दिल्ली आदि के भाषण हुये। विशेष बात यह रही कि गुफा में जब आचार्य श्री विराजमान थे तब उपस्थित लोगों ने निवेदन किया कि महाराज कुछ बांचकर सुनायें तब आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि मैं स्वयं जागृत हूँ। मैंने इंगिनीमरण सन्यास लिया है मुझे किसी की अपेक्षा नहीं है। अपनी आत्मा के ध्यान में ही मग्न रहता हूँ।

२८ अगस्त १९५५—जल ग्रहण किया। दोनों समय जनता को दर्शन दिए। विशेष बात यह हुई कि आचार्य श्री के संघ में ७ वर्ष से साथ रहने वाले ब्र० भरमण्णा को क्षुल्लक दीक्षा दी गई। दीक्षा नाम सिद्धसागर रखा गया। दीक्षा विधि श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागर जी ने करवाई। आचार्य श्री ने शुभाशीर्वाद दिया

२९ अगस्त १९५५—आज जल ग्रहण नहीं किया। पं० मक्खनलाल जी शास्त्री मोरेना से दर्शनार्थ पधारे। आज दिन दोपहर में आचार्य श्री गुफा से बाहर नहीं पधारे। अतः जनता पुण्य दर्शन लाभ न कर सकी। महाराज को कमजोरी कुछ बढ़ गयी।

३० अगस्त, १९५५—आज जल नहीं ग्रहण करने का दूसरा दिन है। दोपहर में जनता को दर्शन दिये। गश आजाने से महाराज लेट गये तब स्वप्न में उन्हें मालूम हुआ कि श्री देशभूषण कुलभूषण उन्हें ऊपर बुला रहे हैं। दरवाजे के ऊपर जो छोटा मन्दिर है उस में यह घटना हुई।

३१ अगस्त, १९५५—आज जल ग्रहण न करने का तीसरा दिन है। दोनों समय उपस्थित जनता को दर्शन दिये और शुभाशीर्वाद दिया।

१ सितम्बर, १९५५—जल ग्रहण नहीं करने का आज चौथा दिन है। दोपहर में ५-७ मिनट को बाहर आकर जनता को दर्शन दिये थे। आज सारा समय गुफा में अन्दर ही व्यतीत किया। रात्रि में १ बजे आचार्य श्री की तबियत काफी नरम हो गई थी अतः बाहर के कमरे में करीब २ घंटे बैठे रहे।

२ सितम्बर, १९५५—आज ४ दिन के वाद जल ग्रहण किया। ३॥ वजे दिन में आचार्य श्री १० मिनट को गुफा से वाहर आये थे और जनता को दर्शनों का पुण्य लाभ कराया था। आज दिन पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री दर्शनार्थ पधारे। आपका दोपहर में भाषण और रात्रि में शास्त्र प्रवचन हुआ।

३ सितम्बर, १९५५—आज जल लिया। दोपहर में ५मिनिट को आचार्य श्री वाहर आये और जनता को दर्शनों का पुण्य लाभ कराया। आज रा. व. राजकुमारसिंह जी दर्शनार्थ पधारे। दोपहर में पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी, पं० मक्खनलाल जी शास्त्री मोरेना, रा. व. राजकुमारसिंह जी इन्दौर, पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर सिवनी के भाषण हुये।

४ सितम्बर, १९५५—आज पूज्य श्री ने अंतिम जल ग्रहण किया लेकिन अशक्ति वढ़ जाने के कारण वहुत थोड़ा जल लिया और बैठ गये। दोपहर में २॥ वजे बहुत जोरों की वर्षा हुई फिर भी आचार्य श्री के पुण्य दर्शन के लिये जनता पानी में भी वरावर वैठी रही तव आचार्य श्री ने २ मिनिट के लिये उपस्थित जनता को दर्शन दिये।

आज दिन सेठ देवकुमारसिंह जी एम. ए. इन्दौर सपत्नीक दर्शनार्थ पधारे और रा० सा० ला० नेमीचंद जी जलेसर तथा सेठ विधीचंद जी गंगवाल जयपुर वंबई से कार द्वारा दर्शनार्थ पधारे।

५ सितम्बर, १९५५—आज सल्लेखना का २३ वां दिन है। अशक्ति वढ़ती जाती है फलतः खड़े होने और बैठने में भी सहारा लेना पड़ता था। फिर भी दोपहर में २ मिनट के लिये वाहर आये। और जनता को शुभाशीर्वाद दे तृप्त किया। सारा समय गुफा में आत्मध्यान में व्यतीत किया।

६ सितम्बर, १९५५—दोनों समय जनता को दर्शन देकर दर्शन देकर जनता को तृप्त किया।

७ सितम्बर १९५५—सल्लेखना का आज २५ वां दिन था। ४ अगस्त के वाद जल ग्रहण न करने का तीसरा दिन है। कमजोरी वहुत ज्यादा वढ़ गई थी, फलतः चक्कर भी आने लगे। विना लोगों के सहारे खड़ा होना भी मुश्किल हो गया था। फिर भी जनता को दोनों समय दर्शन दिये। आज जब लोगों ने आचार्य श्री से चर्या के समय जल ग्रहण करनेके लिये निवेदन किया तो आचार्यश्री ने यही उत्तर दिया कि जब विना सहारे शरीर भी खड़ा नहीं हो सकता तो पवित्र दिगंबर साधु चर्या को सदोष नहीं बनाया जा सकता जैसी कि शास्त्राज्ञा है।

८ सितम्बर १९५५—आचार्य श्री की सल्लेखना का २६ वां दिन था। कमजोरी वहुत ज्यादा वढ़ गई थी। आज दिन अकिवाट से श्री १०८ मुनि पिहतास्रव जी भी आ गये। आचार्य श्री को कमजोरी के कारण विना सहारा दिये चलना भी मुश्किल हो गया। वंवई से श्री निरंजनलाल जी रिकार्डिंग मशीन लेकर आचार्य श्री के दर्शनार्थ पधारे आज आचार्यश्री का २२ मिनट मराठी में अन्तिम उपदेश हुआ जो रिकार्ड किया गया। इस समय गुफा में दोनों क्षुल्लक जी भट्टारक लक्ष्मीसेन जी, भट्टारक जिनसेन जी, संघपति सेठ गेंदमल जी, वावूराव परंडेकर आदि उपस्थित थे। रिकार्ड होने के वाद जव दुवारा सुना गया तव पं० शिखरचन्द जी मैंनेजरमहासभा विशारद भी वहां पहुँच गये थे।

९ सितम्बर १९५५—सल्लेखना के २७ वें दिन आज जल ग्रहण नहीं करने का ५ वां दिन था। दोनों समय आचार्य श्री ने जनता को दर्शन देकर कृतकृत्य किया। मध्यान्ह में सिर्फ ७-८ मिनट ही ठहरे और शुभाशीर्वाद देकर गुफामें चले गये। आज दिन सूरत से जैनमित्र के सम्पादक श्री मूलचन्द किसनदास जी कापड़िया भी दर्शनार्थ-पधारे। जनता में आचार्य श्री का रिकार्डिंग भाषण सुनाया गया। विशेष वात यह हुई कि पूज्य श्री १०८ आचार्य वीरसागर जी महाराज का आया हुआ पत्र आचार्य श्री का पढ़कर सुनाया गया।

१० सितम्बर १९५५—आज सल्लेखना का २८ वां दिन था। अशक्तता वहुत ज्यादा थी फिर भी प्रातः अभिषेक के समय आचार्य श्री पधारे थे और आध घंटा ठहरे थे। प्रातः अभिषेक के समय पधारने का यह अन्तिम दिन था। इसके वाद अभिषेक के समय आचार्य श्री नहीं पधारे। दोपहर में आचार्य श्री के दर्शनों का लाभ जनता को न मिला। हालत वहुत ही चिंता जनक रही। आज शीतका भी असर मालूम हुआ।

११ अगस्त १९५५—सल्लेखना का २९ वां दिन था। आज प्रातः और दोपहर में दोनों समय आचार्य श्री

अशक्तता बहुत ज्यादा बढ़ जाने के कारण बाहर नहीं आये अतः जनता दर्शन न कर सकी।

११ सितम्बर १९५५—आज सल्लेखना के ३० वे दिन और जल न ग्रहण करने के ८ वें दिन आचार्य श्री की हालत चिंता जनक रही। फिर भी जनता के विशेष आग्रहमेआचार्य महाराज के दर्शन की छूट देदी गई। आचार्य महाराज बाहर कमरे में दिन के १ बजे से ५ बजे तक लेटे हुये आत्म चिंतन करते रहे और ५—६ हजार जनता ने आचार्य श्री पुनीत दर्शनों का लाभ लिया। आचार्य श्री की हालत अत्यन्त नाजुक तथा नाड़ी की गति अत्यंत मंद रही। आंखों की ज्योति क्षीण होने के अतिरिक्त और किसी प्रकार की शारीरिक वेदना न होने के कारण आत्मध्यान में लीन रहते थे।

१३ सितम्बर १९५५—आज बाहर के कमरे में आचार्य श्री कल ४ घंटे तक लेटे रहने के कारण काफी कष्ट रहा। नाड़ी की गति अत्यन्त मंद होने पर भी सारा समय गुफा में आत्म ध्यान में व्यतीत किया। आचार्य श्री की साधना में किसी प्रकार का विघ्न न हो इसलिये देशभूषण कुलभूषण मन्दिर भी दर्शनों के लिये बंद रहा। सागर से सेठ भगवानदास जी बीड़ी वाले और पं० मुन्नालाल जी समगौरया दर्शनार्थ पधारे थे। आचार्य श्री आज गुफा से बाहर नहीं आये अतः जनता दर्शन लाभ न कर सकी।

१४ सितम्बर, १९५५—आज सल्लेखना के ३२ वें दिन और जलग्रहण न करने को १० दिन हो जाने पर भी आचार्य श्री की आत्म साधना और ध्यान बराबर जारी रहा। आज मन्दिर के दरवाजे खोल दिये गये फलतः सुबह ७ से ९ तक महिलाओं और पश्चात पुरुषों ने सिर्फ मंदिर जी के दर्शन किये। आज दिन उस्मानाबाद के कलक्टर सा. मय पुलिस अफसरान के आचार्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे। कमजोरी बहुत अधिक बढ़ जाने के कारण जनता को आज आचार्य श्री के दर्शन नहीं कराये गये।

१५ सितम्बर, १९५५:—आज सल्लेखना का ३३वां दिन था। आचार्य श्री की अशक्तता तो थी ही। नाड़ी की गति भी धीमी रफ्तार में चल रही थी। दर्शनार्थियों का अति आग्रह होने पर भी आचार्य श्री के दर्शन नहीं कराये गये। ऐसी नाजुक हालत होने पर भी महाराज आत्मा साधना में लीन रहे। जनता को पीछी कमंडल के दर्शन कराये गये।

१६ सितम्बर १९५५:—आज सल्लेखना का ३४ वां दिन था और जल न ग्रहण करने का तो १२ वां दिन था। हालत बहुत ही नाजुक थी फिर भी आत्म ध्यान में गुफा में समय व्यतीत किया। आज दिन सर सेठ भागचंदजी सोनी अजमेर, रा. ब. सेठ हीरालाल जी पाटनी किशनगढ़, सेठ गंभीरमल जी पाँड्या कुचामन और सेठ मोहनलाल जी बड़जात्या जयपुर से दर्शनार्थ पधारे थे।

१७ अगस्त १९५५:—आज सल्लेखना का ३५ वां दिवस था। आज गुफा की दालान में आचार्य श्री को लिटा दिया गया। फलतः उपस्थित हजारों की जनता ने देशभूषण कुलभूषण मंदिर तथा आचार्य श्री के पुण्य दर्शनों का लाभ लिया। आज दिन इन्दौर से रा. ब. सेठ हीरालाल जी कासलीवाल, सेठ भंवरलाल जी सेठी, मध्यभारत के वित्तमंत्री श्री मिश्रीलाल जी गंगवाल आचार्य श्री के दर्शनार्थ पधारे। शाम को सेठ भंवरलाल जी सेठी और श्री मिश्रीलाल जी गंगवाल का भाषण हुआ। मिश्रीलाल जी सा. के गुरुभक्ति पर तो जनता को मंत्रमुग्ध करने वाले भजन हुये। आचार्य श्री ने अपना समय आत्मध्यान में व्यतीत किया।

१८ सितम्बर १९५५—आचार्यश्री की सल्लेखना का आज ३६ वां दिवस था और आचार्य श्री की इस लोककी जीवन लीला का अंतिम दिन। आचार्य श्री जागृत अवस्था में सिद्धोऽहं का ध्यान करते रहे। ६॥। बजे गंधोदक ले जाकर क्षु० सिद्धसागर जी ने कहा महाराज अभिषेक जल है महाराज ने "हूँ,, में उत्तर दिया और गंधोदक लगादिया गया। महाराज अंत तक ॐनमः सिद्धेभ्यः कहते हुये ६–५० पर स्वर्गवासी हो गये।

ऐतिहासिक
सल्लेखना के छत्तीस दिन

[१४ अगस्त, १९५५ से १८ सितम्बर, १९५५ तक]

१४ अगस्त १९५५। नियम–सल्लेखना की घोषणा करने के बाद आचार्यश्री शान्त मुद्रा में।

August 14. The Acharya in a meditative pose after announcing Niyam Sallekhana.
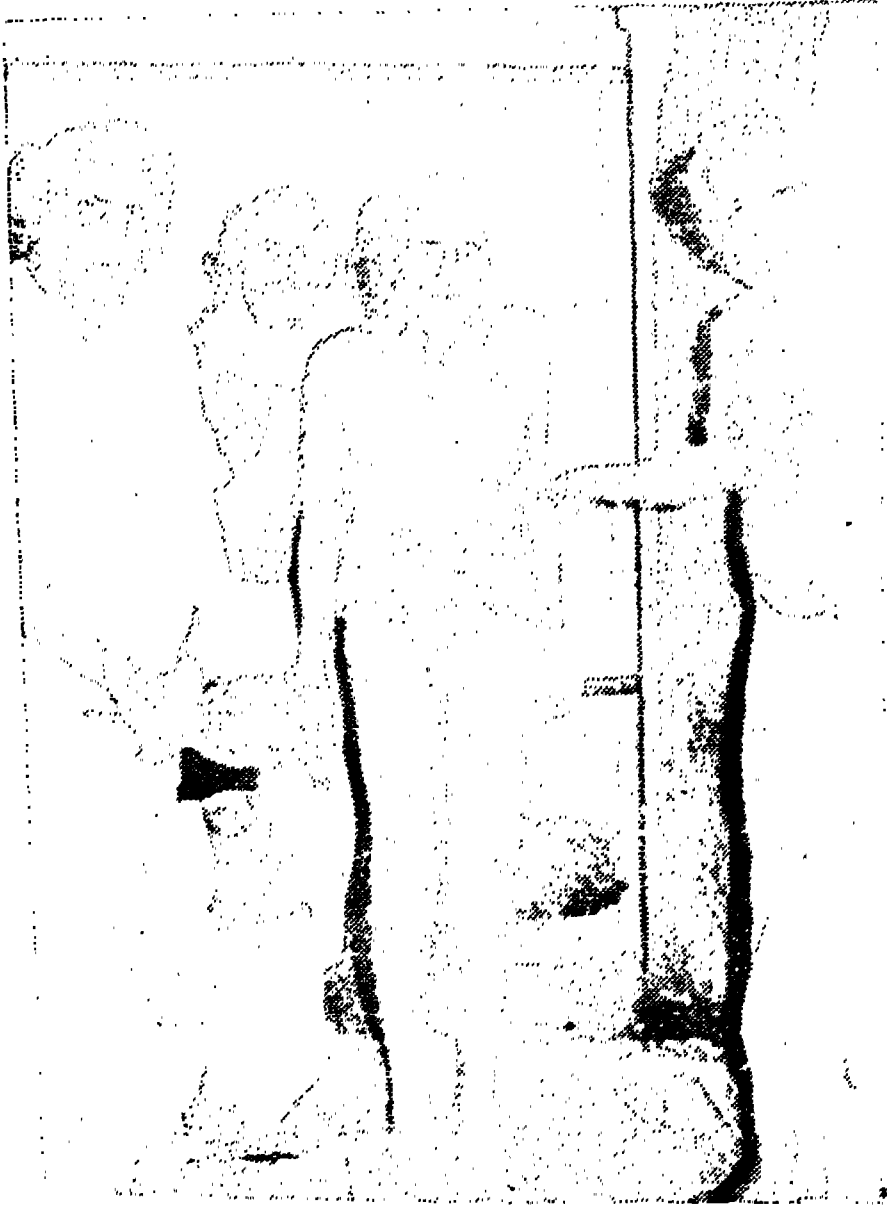
१५ अगस्त। दर्शनार्थ मन्दिर जाने को उद्यत आचार्य श्री।

August 15. The Acharya about to go on the hill for prayer at the main temple.

१६ अगस्त। आचार्य श्री भक्तों को दर्शन देते हुए।

August 16. The Acharya seated on a daris in order to enable devotees to have his darshan.

१७ अगस्त। आचार्य महाराज हजारों दर्शनार्थियों के बीच में। इससे थोड़ी ही देर पूर्व उन्होंने यम– सल्लेखना की घोषणा की थी।

August 17. The Acharya surrounded by eager devotees and disciples, a few hours after he had declared a Fast unto Death.
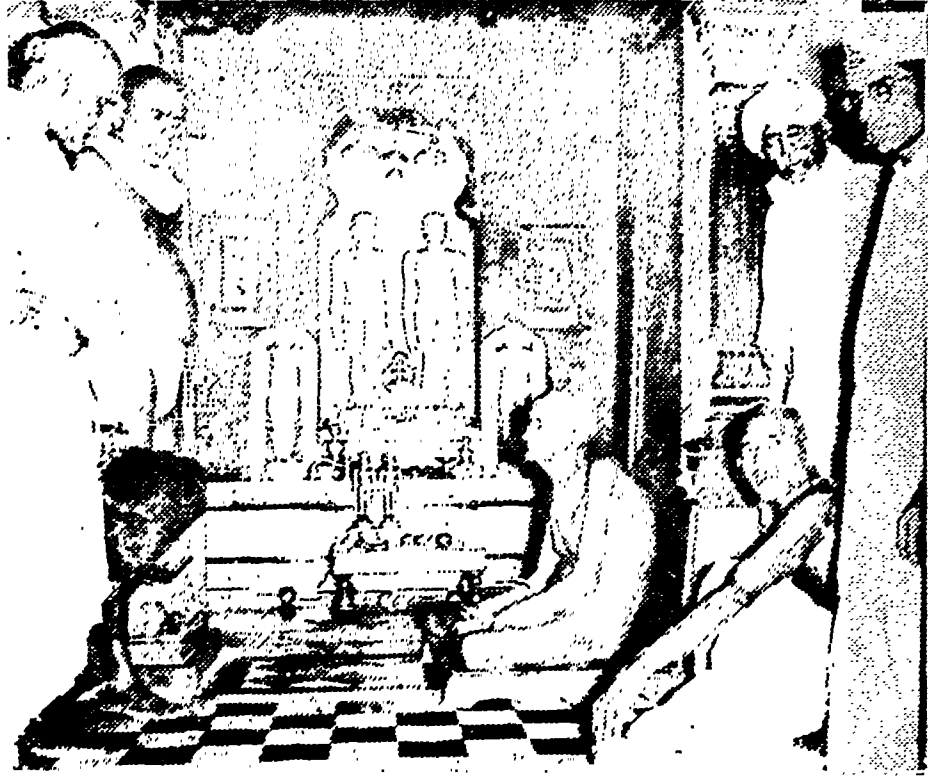
१८ अगस्त। महाराज मुख्य मन्दिर में ध्यानस्थ मुद्रा में।
August 18. The Maharaj in deep meditation at the main temple.

१९ अगस्त। आचार्य श्री मध्यान्होपरान्त दर्शनार्थियों को दर्शन देते हुए।
August 19. Giving darshan to devotees.

२० अगस्त। आचार्य श्री जलाहार लेते हुए। महाराज के पीछे सेठ चन्दूलाल जी सराफ़ खड़े हैं।
August 20. The Acharya taking water.

२१ अगस्त। पूजा के उपरान्त मन्दिर जी से लौटते हुए।

August 21. Returning from the main temple after prayers.

२२ अगस्त। श्री शान्तिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था के मन्त्री श्री वालचन्द शहा को श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक की अध्यक्षता में मानपत्र भेंट। महाराज बीच में विराज रहे हैं।

August 22. Maharaj attending a function to honour Shri Balchand Saha, secretary of the Jain Scripture Society named after the Saint.
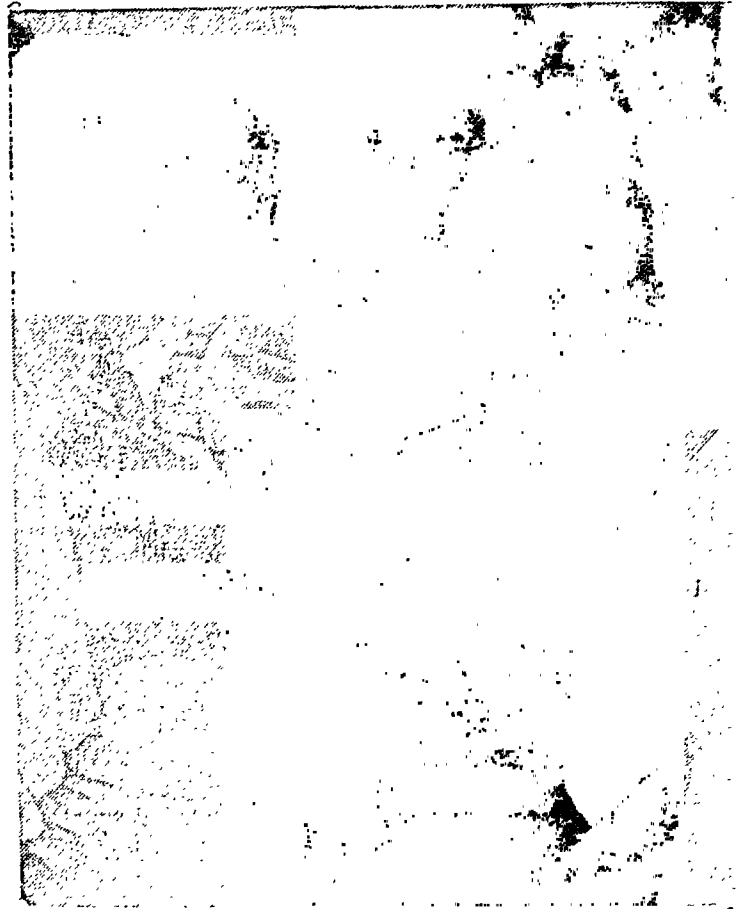
२३ अगस्त । आचार्य श्री शुद्धि करते हुए ।

August 23. Morning ablutions.

२४ अगस्त । आचार्य श्री शिष्यों के संग मन्दिर जाते हुए ।
August 24. The Acharya on his way to the temple.

२५ अगस्त । जलाहार लेने से पूर्व आचार्य श्री शुद्धि करते हुए ।

August 25. The Acharya washing his hands prior to taking water.

२६ अगस्त । भक्तवृन्दों से घिरे हुए आचार्य श्री जलाहार लेते हुए ।
August 26. Surrounded by devotees, the Acharya taking water.

२७ अगस्त । आचार्य श्री दर्शनार्थियों को आशीर्वाद देते हुए ।

August 27. The saint blessing the devotees from the rostrum.

२८ अगस्त । आचार्य श्री के शिष्य ब्रह्मचारी भरमण्णा को क्षुल्लक दीक्षा ।

August 28. Brahmachari Bharamanna, a disciple of the Acharya taking Kshullak deeksha.

२९ अगस्त । महाराज शान्त मुद्रा में आशीर्वाद देते हुए ।

Augast 29. The Compasst'onate Acharya blessing }devotees.

३० अगस्त । आचार्य श्री लोगों को दर्शन देने के लिए जाते हुए ।

August 30. The saint going to give darshan to devotees.

३१ अगस्त । आचार्य श्री अभिषेक देखने के वाद गन्धोदक लेते हुए ।

August 31. The Acharya taking Gandhodak at the main templ
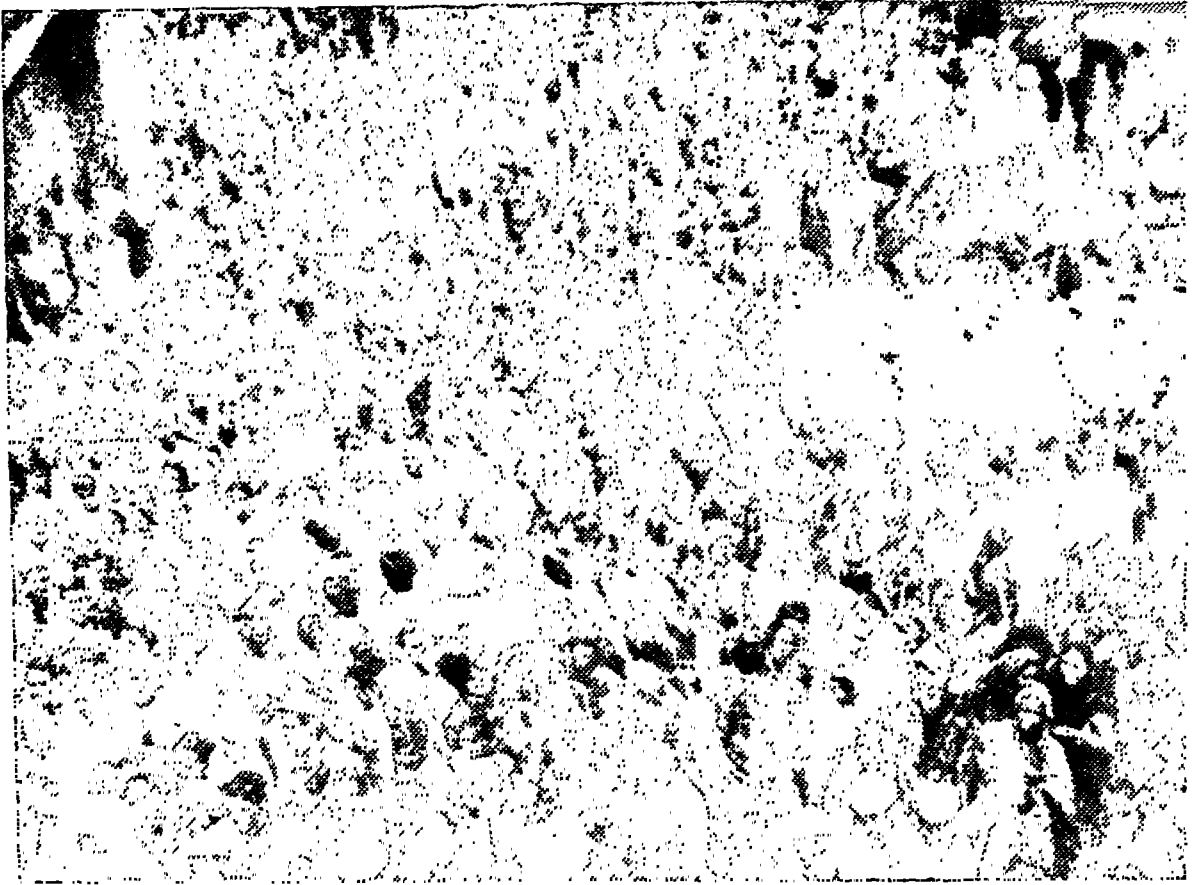
१ सितम्बर। महाराज के दर्शनार्थ एकत्र विशाल जन समूह।

September 1. The huge gathering of devotees eagerly waiting for a glimpse of the Acharya.
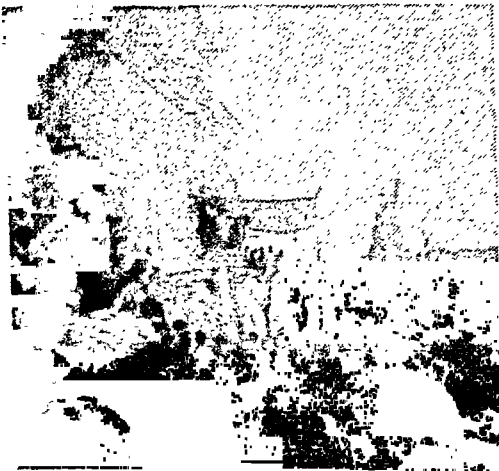
२ सितम्बर। हजारों दर्शनार्थियों के सम्मुख महाराज जल ले रहे हैं।

September 2. The Acharya taking water while ardent devotees look on.

★

३ सितम्बर। आचार्य श्री दर्शनार्थियों को दर्शन देते हुए।

September 3. The Acharya giving darshan to devotees.

४ सितम्बर । अन्तिम बार जल लेते हुए ।

September 4. Taking water for the last time.

५ सितम्वर । आचार्य श्री मन्दिर जाते समय ।

September 5. On his way to the main temple.

६ सितम्वर । मन्दिर जी में अभिषेक के समय पधारते हुए।

September 6. Entering the precincts of the temple.

७ सितम्बर। आचार्य श्री विचार मग्न मुद्रा में।
September 7. The saint in a strikingly meditative pose.

८ सितम्बर। अन्तिम सन्देश ध्वनिमुद्रित करते हुए।
September 8. The Acharya's message being recorded.
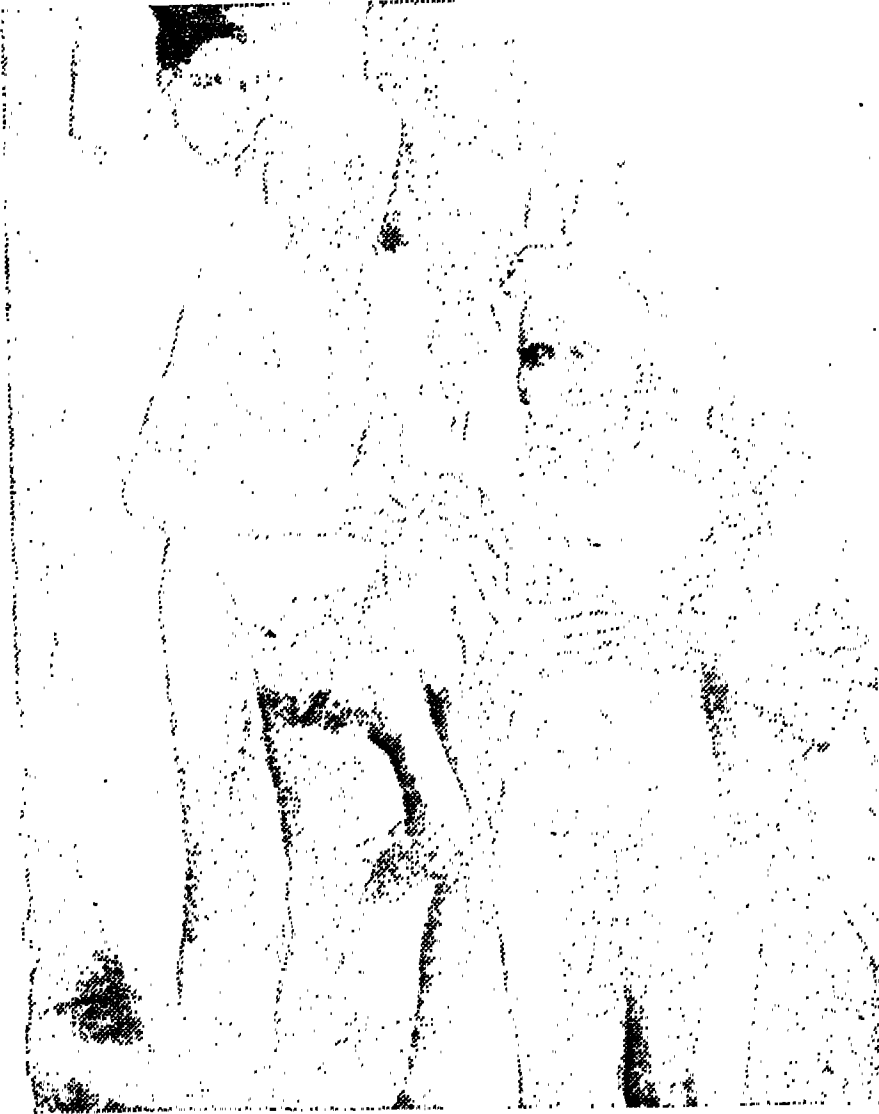
९ सितम्बर। आचार्य श्री भक्तों को दर्शन देने जा रहे हैं।
September 9. Going to the meeting place.

१० सितम्बर। आचार्य श्री अन्तिम वार मुख्य मन्दिर को दर्शनार्थ जाते हुए।
September 10. Going to the temple for thelast time.

११ सितम्बर को महाराज लघुशंका को निकलते हुए।
September 11. The Acharya outside his hut.

१२ सितम्बर। आचार्य श्री ध्यानमग्न मुद्रा में। श्री जिनसेन भट्टारक पीछे बैठे हुए हैं।
September 12. The Saint in deep meditation.

१३ सितम्बर। आचार्य श्री लेटे हुए ध्यान कर रहे हैं।
September 13. The Acharya in meditation.
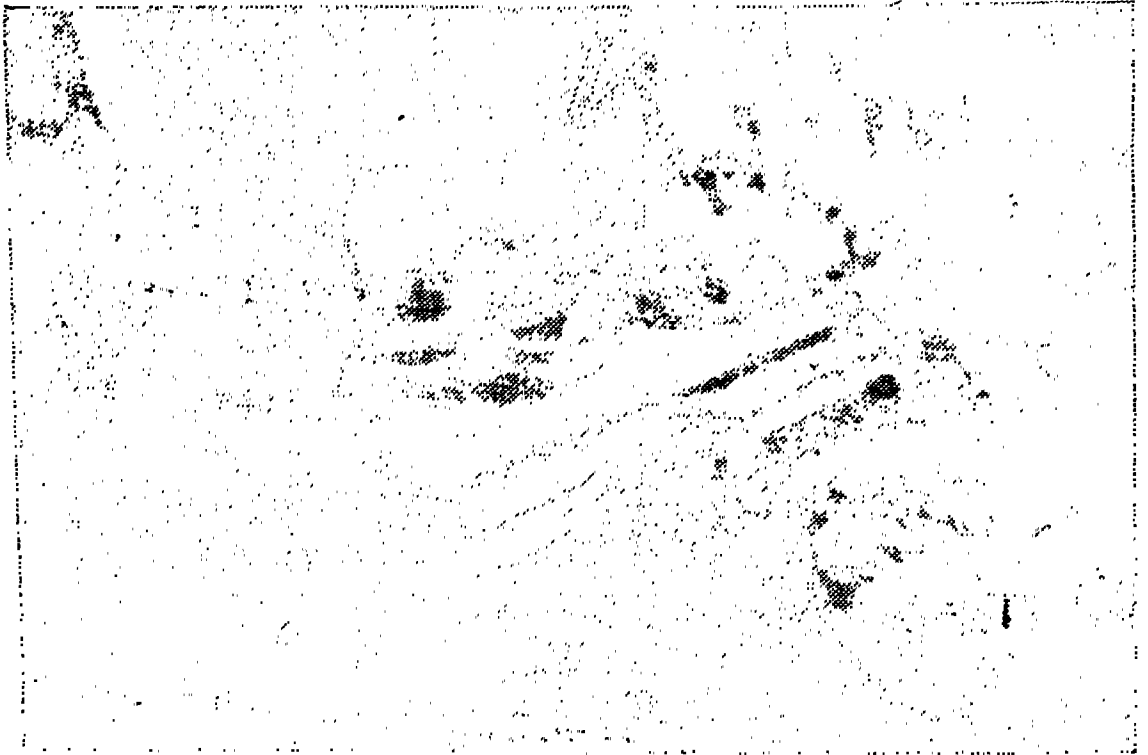
१४ सितम्बर। महाराज गुफ़ा में लेटे हुए हैं। संघपति गेन्दनमल जी, क्षुल्लक सुमतिसागर जी आदि पास में बैठे हुए हैं।
September 14. The Saint inside his hut surrounded by disciples.

१५ सितम्बर। विश्राम करते हुए आचार्य श्री के पास भक्त वृन्द ।
September 15. Disciples near the Acharya who is resting.

१७ सितम्बर। आत्म चिन्तन में लीन महाराज की भव्य मुद्रा।

September 17. *His face aglow with beatitude, the* Saint immersed in self-meditation.

१८ सितम्बर। अन्तिम दर्शन। आचार्य श्री समाधिमरण से कुछ क्षण पूर्व।

September 18. This picture, taken a few seconds before the Saint's demise shows him reclining in his hut.

सल्लेखना के छत्तीस दिन

समाधिमरण के उपरान्त

१८ सितम्बर । समाधिमरण के बाद आचार्य श्री का पद्मासनस्थ शरीर ।

September 18. The seated body of the Saint after his demise.

★

१८ सितम्बर । महाराज का शरीर विमान में लाया जा रहा है ।

September 18. Flocked by sorrow-stricken crowds, the Saint's body being taken in procession.
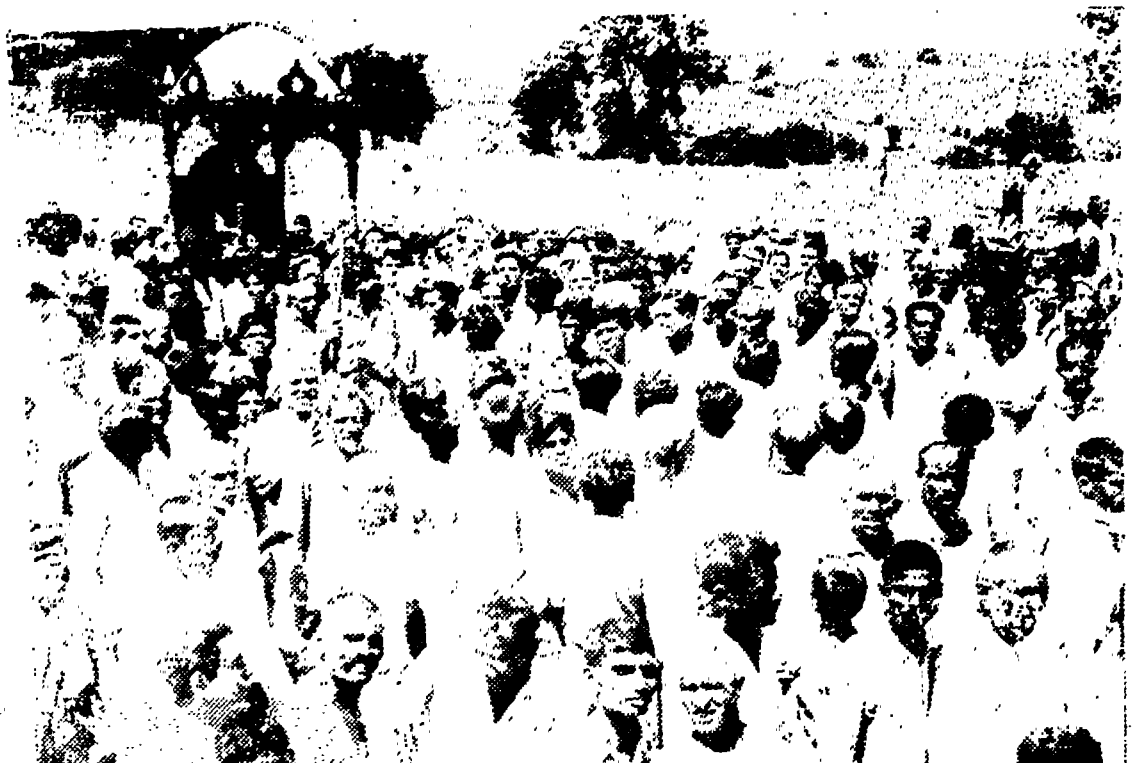
१८ सितम्बर। महाराज का विमान पाण्डुक शिला पर।
September 18. The decorated Viman carrying the Saint's body kept on the special platform called Panduk Shila.

१८ सितम्बर। चन्दन, काफूर व घी से युक्त चिता जल रही है।
September 18. The way of all flesh. The cremation of the greatest saint of the age

[पृष्ठ ४४ का शेष]

'आलोकित पानभोजन' भावना का निर्देश किया गया है। सूर्य किरण के प्रकाश में अच्छी तरह देख भाल कर पान भोजन करना उन्हें अहिंसाव्रत की विशुद्धि के लिए आवश्यक होता है।

इसलिए ईर्या और एषणा का पालन जैन साधु के लिए परमावश्यक है। क्योंकि जैन साधु एक जगह नहीं रह सकते हैं। सतत विहार करना उनका धर्म है। जब इन दोनों का पालनअशक्य हो जाता है उस समय साधु शरीर-रक्षण का विचार छोड़ देता है। उस समय उसकी धारणा रहती है कि शरीर तो अनेक बार असंख्य बार इस आत्मा को प्राप्त हुआ है, परन्तु रत्नत्रय धर्म तो एकबार भी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए प्राप्त हुए इस रत्नत्रय को यों ही गमाना उचित नहीं हैं' जिस प्रकार किसी धान्य के कोठे को या धनकनक समृद्ध खजाने को आग लगने पर एवं वह आग प्रतीकारासाध्य प्रतीत होने पर कोठे या खजाने के बचाने का प्रयत्न बुद्धिमान् नहीं करते हैं, परतु उस कोठे के अंदर जो उत्तम पदार्थ हैं उन्हें बचाने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार जैन साधु शरीर को निष्प्रतीकार दोष से ग्रसित होने पर शरीर रक्षण का उपाय नहीं सोचते हैं, अपितु अपने आत्मीय रत्नत्रय के संरक्षण का विचार करते हैं। उसके लिए जो प्रयत्न किया जाता है, इसी चीज का नाम सल्लेखना है।

आजीवन साधना

परम पूज्य आचार्य शांतिसागर महाराज ने जीवन भर उस सल्लेखना की सिद्धि के लिए साधना की है। खंडित दिगंबर साधु परम्परा के स्रोत को पुनः प्रवाहित कर लोक-कल्याण करने वाली गंगा को लोक के सामने उपस्थित किया है। हजारों क्यों, लाखों, असंख्य जीवों को चारित्र, संयम, मार्ग में लगाकर उन्हें आत्म विवेक की दृष्टि दी है, संस्कार विहीन जीवों को संस्कृत बना कर विश्व बंधुत्व का साक्षात् दर्शन कराया है। आचार्य श्री ने लाखों शिष्यों के हृदय में अपना स्थान बनाया, सैकड़ों संयमी जनों का निर्माण किया, बीसों मार्ग प्रभावक साधुओं को उत्पन्न किया, उनके कार्य का विस्तार के साथ विगत निकालने पर निस्संकोच कह सकते हैं कि सैकड़ों विद्वान् मिलकर सदियों तक भी यह कार्य नहीं कर सकते थे जितने कि आचार्य श्री ने चंद वर्षों में किये हैं।

नेत्रों में दोष

समाज के दुर्दैव से आचार्य श्री के नेत्रों में दृष्टि मंदता का दोष उत्पन्न हुआ। उपचार बहुत किये गये, विशेष उपयोग नहीं हुआ, आगम विहित आचार के मर्म को जानने वाले पूज्य श्री ने निश्चय किया कि यदि नेत्र दोष दूर नहीं हुआ तो मुझे सल्लेखना ही शरण है, नेत्रों के बिना ईर्या और एषणा का पालन नहीं हो सकता है जो आहार विहार साधु चर्या का मूल आधार है। भविष्य को पहिचान कर ही आपने गजपंथ सिद्धक्षेत्र में ३ वर्ष पूर्व ही उत्कृष्ट अवधि की सल्लेखना ली थी। अर्थात् १२ वर्ष परमावधि की सल्लेखना लेकर आपने निश्चय किया था कि मुझे अब बारह वर्ष से अधिक इस देह पंजर में नहीं रहना है।

समाधिमरण

साधुगण समाधि मरण का स्वागत करते हैं। नित्य-प्रति सोते जागते, उठते बैठते, चलते, ठहरते हुए जो भक्ति पाठ करते हैं उसके अन्त में भगवंत से याचना करते हैं कि 'समाहि मरणं होऊ मज्झं'' भगवन् ! मेरी और कोई अपेक्षा नहीं है, केवल जीवन के अन्त समय में मुझे समाधिमरण हो। बस इतनी ही याचना है। उनकी सतत प्रवृत्ति और प्रयत्न समाधि की सिद्धि के लिए है। अनेक तत्व विमुख बंधु इसके रहस्य को न जानकर इसे आत्मघात समझते हैं। उनका तो एक ही तर्क है कि इस आत्मा को मरने के पहिले ही मारने का जो प्रयत्न किया जा रहा है वह आत्मघात है। परन्तु वे तत्व के अन्तस्तल पर पहुँच कर विचार नहीं करते हैं कि आत्मा कभी मरता ही नहीं है, उसे मारने का प्रयत्न भी नहीं किया जा सकता है, मारने व मरने का प्रश्न खतम हो गया, परन्तु जहां आत्म-घात शब्द प्रचलित है, वहां परिणामों में बहुत अन्तर है। जिस समय मनुष्य क्रोधादिक कषाय के वशीभूत हो जाता है, क्षोभ संक्लेश परिणाम से विवश हो जाता है, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग से परितप्त हो जाता है ऐसे समय में विवेक का अन्त हो जाता है, विवेक भ्रष्ट हो जाता है, उसे उस समय आत्मघात के सिवाय कोई मार्ग ही नहीं सूझता है। उस समय वह विवक शून्य कृत्य कर बैठता है। उसे आत्मघात के नाम से कहा है, वस्तुतः उस समय भी आत्म-घात तो नहीं होता है, आत्म परिणामों का घात है, इस-लिए पर्याय से आत्मघात कहा है।

परन्तु मुनिराज जिस मरण के लिए जन्म भर क्या अनेक जन्मों से साधन करते हैं, आनन्द और शुभ परिणाम के साथ उसका स्वागत करते हैं, अन्तिम क्षण तक राग द्वेषादि परिणतियों से रहित होकर स्व और परका कल्याण करते हैं, वह आत्मघात भी नहीं है, आत्म परिणाम-घात भी नहीं है। इस रहस्य को यथार्थ आत्मवादी ही जान सकते हैं। ससार के विषय भोगों में मग्न, देह भोगादिक को ही अपना सर्वस्व समझने वाले इस सत्पथ के पास बहुत कठिनता से पहुँच पाते हैं उनकी बुद्धि में भी यह शीघ्र समझ में नहीं आता है।

दुनिया में सब धर्म जीते हुए जीवन को सुखमय बनाने का मार्ग बताते है, जैनधर्म जीवन को सुखमय बनाने का मार्ग तो बताता ही है, साथ में सुख पूर्वक मरने का भी मार्ग वह बताता है। जैन साधु मरते मरते भी दुनिया के सामने एक आदर्श उपस्थित कर जाते हैं, यह विशेषता है।

इस आदर्श को आचार्य श्री ने अपने जीवन से लोक के सामने उपस्थित किया है, जैन साधु जीवन के विश्व-बंधुत्व को प्रयोगात्मक रूप में प्रत्यक्षीकरण उन्होंने कराया।

सिद्धक्षेत्र का शरण:—आचार्य श्री की चिरकाल से ये भावना थी कि मैं अपना अंतसमय किसी सिद्ध क्षेत्र की पावन भूमि पर साध्य करूं. सो वह सफल हो गई, चातुर्मास के पहिले ही उनको अंतः प्रेरणा मिली कि कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर चातुर्मास किया जाय, बारामती वालों का अत्यंत आग्रह होने पर भी उन्होंने स्पष्ट कहा कि आप लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है, आप लोगों की भक्ति प्रशंसनीय है। परंतु मुझे अपना जो अंत साध्य करना है सो उस काम में विघ्न मत करो, उसे सफलता के साथ साधने दो, तभी तुम्हारी भक्ति की सार्थकता है। मैं अपने भविष्य को बराबर देखकर चल रहा हूँ। इतने से सभी श्रावक समझ गये। आचार्य श्री ने सिद्धक्षेत्र की ओर विहार किया, सिद्धक्षेत्र पर चातुर्मास हुआ। योग्य समय जानकर पूज्य श्री ने नियम सल्लेखना ली, यमसल्लेखना ली। सल्लेखना क्या थी महायात्रा थी। एक मोक्ष पथिक मोक्ष साम्राज्य की यात्रा के प्रयाण की सिद्धता कर रहा है तो लाखों जनता ने उसकी विदाई के समय उसके प्रति शुभ कामना की कि 'शुभास्ते पंथानः' गुरुदेव! इस समय हम आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं। हम भी आपके पीछे पीछे कुछ समय के बाद आजायेंगे, आप सुख से जावें।

शास्त्र शुद्ध सल्लेखना :—आचार्य श्री की ३६ दिवस की सल्लेखना, उसमें भी अपूर्व शान्ति, हजारों आत्माओं का कल्याण और अन्तिम क्षण तक आत्म जागृति यह सब उनकी सल्लेखना की शास्त्र शुद्धता को व्यक्त करती है। आराधना विषयक शास्त्रों की पंक्ति का यथार्थ अर्थ आचार्य श्री की उस सल्लेखना में लग रहा था। इसलिए उसे हमने शास्त्र शुद्ध सल्लेखनाके नाम से कहा है।

आचार्य श्री ने ता० १७ अगस्त को यह सल्लेखना धारण करली थी। और १८ सितम्बर को प्रातः काल ६–५० पर महा प्रयाण किया। ता० १७ अगस्त को जिस समय यम सल्लेखना पूज्य श्री ने ली थी उस समय आश्लेषा नक्षत्र था। भगवती आराधना में कहा है कि— "असलिसणक्खत्ये जदि संथारं गेण्हदि तो चित्तणक्खत्ते भरदि" अर्थात् आश्लेषा नक्षत्र में संस्तर ग्रहण करने वाला मुनि हस्तनक्षत्र में मरण को प्राप्त होता है। यह सिद्धांत गणित आचार्य श्री की सल्लेखना में अक्षरशः घटित हो गया है। आचार्य श्री का महाप्रयाण ता० १८ सितम्बर को प्रातःकाल हुआ उस समय हस्त नक्षत्र का अन्त और चित्र नक्षत्र का प्रारम्भ काल था। यह भी प्रकृत सल्लेखना की शास्त्र शुद्धता को सूचित करता है।

आराधना शास्त्रोंमें २७नक्षत्रोंमें कुछ अल्प घटिका वाले नक्षत्रों को जघन्य, तीस महूर्त के नक्षत्रों को मध्यम, ४५ महूर्त के नक्षत्रों को उत्तम नक्षत्र कहा है। जघन्य नक्षत्र में मुनि का मरण होने पर सर्व संघ का क्षेम होता है। मध्यम नक्षत्र में मरण होने पर और एक मुनि का मरण होता है। उत्तम नक्षत्र में मरण होने पर और दो मुनियों का मरण होता है। इस प्रकार विचार करने पर आचार्य श्री का महाप्रयाण हस्त-नक्षत्र में हुआ हैं वह मध्यम नक्षत्र है। एक मुनि का मरण पुनश्च होना अनिवार्य था, ३ दिनों के अन्तर में ही औरंगाबाद में पूज्य मुनिराज सुमतिसागर जी का मरण हो ही गया। यह घटना भी आचार्य श्री की शास्त्र शुद्ध सल्लेखना को सूचित करती है।

इस प्रकार ईर्या और एषणा के निमित्त स्वीकृत यह इंगिनी मरणात्मक सल्लेखना इस युग में ही नहीं, सैंकड़ों वर्ष की साधु परम्परा में आदर्श और अनुकरणीय सिद्ध हुई है। इस पावन आत्मा ने निश्चित ही अपने को मोक्ष पथ का पथिक बनाया, हम भी उसका अनुकरण कर अपनी आत्मा को पुनीत करें, इस सद्भावना से आचार्य श्री के परोक्ष चरणों में श्रद्धांजली अर्पण करने के सिवाय और क्या कर सकते हैं?

सल्लेखना का तात्विक विवेचन

लेखक : पं०इन्द्रलाल जी शास्त्री विद्यालंकार जयपुर

[जैन आगमों के ज्ञानुसार सल्लेखना का तात्विक विवेचन प्रस्तुत करते हुए जैन समाज के प्रसिद्ध वयोवृद्ध विद्वान पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री संपादक अहिंसा भूतपूर्व संपादक जैनगजट व सन्मार्ग ने इस लेख में यह सिद्ध किया है कि सल्लेखना धारण करने वाले त्यागी के मन में किसी प्रकार की कषाय नहीं रह जाती, इस कारण मरण का सर्वोत्तम तरीका यही है। इस दृष्टि से विद्वान लेखक महोदय ने आचार्य श्री के समाधि-मरण को उत्कृष्ट आदर्श प्रमाणित किया है।]

लेखन का अर्थ व्याकरण-शास्त्र के अनुसार कृश करना होता है। सल्लेखना का अर्थ होता है अच्छे प्रकार से कृश करना।

मरण दो प्रकार का होता है। एक तो नित्य मरण और दूसरा तद्भवरण। नित्य मरण तो सदैव होता ही रहता है क्योंकि प्रति समय आयु घटती ही रहती है। जैसे एक प्राणी की आयु ५० वर्ष की है तो एक समय वाद एक समय कम ५० वर्ष की रह जाती है। इस प्रकार वांधी हुई आयु में जो कमी होती रहती है उसी का नाम नित्य मरण है। तद्भव मरण, उस पर्याय की आयु के अन्त समय को कहते हैं।

यह प्राणी नित्य मरण तो प्रत्येक क्षण में करता ही रहता है परन्तु तद्भव मरण उस पर्याय में उस भव के अन्त में ही करता है। वह तद्भव मरण भी अवश्यंभावी है क्योंकि जिसने जन्म लिया है वह अवश्य ही मरेगा। परन्तु मरण किस प्रकार का करना चाहिये, इसी अत्यंत विषम और जटिल समस्या को आचार्यवर्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने वतला कर एक लोकोत्तर महान आदर्श उपस्थित किया है।

जन्म लेना और मर जाना इसमें कोई वीरता या विशेपता की वात नहीं है। यह अवस्था प्रत्येक प्राणी के साथ अनिवार्य रूप से लगी हुई है परन्तु इस समस्यापूर्ण अवस्था को सदा के लिये समाप्त कर देने की विधि का नाम ही सल्लेखना है।

दो प्रकार की सल्लेखना

सल्लेखना (अच्छी तरह कृष करने की क्रिया) दो वस्तुओं की इस मरण के प्रकरण में आती है। एक तो कषाय की सल्लेखना और दूसरी काय की सल्लेखना। कषाय की सल्लेखना के साथ शरीर की सल्लेखना हो तो, वह सल्लेखना है और कषाय के साथ शरीर का त्याग किया जाय तो वह आत्मघात होता है। सल्लेखना और आत्मघात में अकपायता और सकषायता ही कारण है। राग, द्वेष, क्रोध मानमाया लोभादि कषायों का अथवा इसमें से एक भी कषाय का आश्रय लेकर जो स्वतः मरण के सम्मुख होता है वह आत्मघाती होता है परन्तु जिस मरणकी सम्मुखता में ये कषाय कारण न हों तो वह मरणाँतिकी सल्लेखना है जिसे प्रसन्नतापूर्वक सेवन की जाती है।

मरना कोई नहीं चाहता परन्तु जैसे कोई धनिक वनिये के अग्नि आदि से घर के विनाश का कारण उपस्थित हो ही जाय तो पहले तो वह इस कारण को मिटाने का प्रयत्न करता है परन्तु जव उस प्रयत्न में वह सफलता प्राप्त नहीं करता है अर्थात लगी हुई आग को बुझाने में असमर्थ हो जाता है तो जैसे तैसे घर की वस्तुओं को वाहर निकाल कर रखता है और जो चीजें आग लगने से वच जाती है उन्हीं की रक्षा में प्रयत्न करता है। उसी प्रकार साधु या सद्ग्रहस्थ व्रत शीलसंयम के आधार शरीर

की भी रक्षा करता है और यही प्रयत्न करता है कि इस शरीर का नाश न हो परन्तु जब जान लेता है कि यह शरीर अब जाने वाला है तो उस शरीर में स्थित जो व्रत शीलादि हैं उन्हीं की रक्षा का प्रयत्न करता है और शरीर से ममता छोड़ देता है जैसे कि घर में आग लग जाने पर वह धनी गृहस्थ घर में रखी हुई चीजों को तो वाहर निकाल लाता है और घर को जल जाने वाला समझ उस से ममता छोड़ देता है।

कर्मबन्ध का भागी नहीं

जैसे तपस्वी साधु शीत उष्ण क्षुधा पिपासा दंशमशक नग्नता आदि से उत्पन्न सुख दुःखों का सम्वन्ध होने पर भी उन का अनुभव न करने से उस सुख दुःख जनित कर्मबंध का भागी नहीं होता। किसी भी वस्तु का संवंध होने पर भी उसके अनुभव के विना सुखदुःख नही होता। सुख दुःख का कारण अनुभव ही होता है। उसी प्रकार सल्लेखना को धारण करने वाला महापुरुष जीने मरने का कुछ भी अनुभव नहीं करता। उसे न जीवन की इच्छा होती है और न मरणकी ही, न उसका उस भव के पुत्र मित्र स्त्री आदि से अनुराग होता, न अगले भव में सुखों की इच्छा होती और न वह उस भव के सुखों को ही याद रखता। वह सल्लेखना करने वाला महापुरुष अपने शरीर में रखे हुये व्रत संयमआदि की यथावत परिपालना ही करता है और उन्हें जीवन की निधि समझता है।

लेखक

हिंसा का लक्षण, प्रमादपूर्वक स्वपर प्राणों का व्यपरोपण करना है। सल्लेखना में प्रमाद नहीं किन्तु पूरी सावधानता रहती है। जिस प्रकार अन्य लोग प्रमाद से ही प्राण छोड़ते देखे हैं उस प्रकार वह प्रमाद से प्राण छोड़ने की ओर सम्मुख नहीं होता किन्तु प्रमादसे ये प्राण यों ही न छूट जावें और कहीं व्रत संयमादि में बाधा न आ जाय इसीलिए प्रमाद से रहित हो पूरी सावधानी रखता है। अतः सल्लेखना में आत्महत्या समझना नितान्त भूल है।

व्रती गृहस्थ या संयमी मुनिराज को जब अपना शरीर जरा रोग, अंधापन, जंघावलका अभाव, वल वीर्य का अभाव आदि से अशक्त दीखता है और ये सब जरादिक जब अनिवार्य होकर व्रत संयमादि में वाधक हो जाते हैं तब उसके सामने दो विकल्प आते हैं कि व्रत संयमादि की रक्षा करना अर्थात् इनके पालन में वाधा न आने देना या शरीर की रक्षा करना ? यदि वह शरीर की रक्षा रूप विकल्प को ही अपना लक्ष्य या ध्येय समझता है तो वह भूल करता है क्योंकि शरीर तो आजतक लाखों अनंतो प्रयत्न करने पर भी किसी का नहीं रहा, उसका गमन तो निश्चित और सर्वथा असंदिग्ध है, एवं यह शरीर तो फिर भी मिल सकता है परन्तु व्रत संयमादि का मिलना तो असंभव प्राय है। तव वह अपने व्रत संयमादि के विकल्प की रक्षा पर ही सुदृढ़ होता है और आहार का त्याग कर छाछ या गरम जल ही ग्रहण करता है पीछे उस को भी छोड़ देता है और मरण पर्यन्त वारह भावनाओं का चिंतन करता हुआ आत्मलीन हो जाता है फिर उसे क्षुधा तृषादि जनित दुःख का अनुभव भी नहीं होता क्योंकि अनुभव तो उनके प्रति रागादि से ही होता है।

भयंकर शत्रु के सामने सेना में गये हुए सैनिक के सामने भी दो ही विकल्प होते हैं। एक शत्रु के सामने सीना तान कर खड़ा हो जाना और दूसरा पीठ दिखा कर प्राण वचाने को भाग जाना। परन्तु जो सच्चे वीर होते है वे पीठ दिखाकर भागने रूप विकल्प को निश्चित नहीं करते और प्रतिद्वन्दी शत्रु के सामने सीना तान रक खड़े हो जाते हैं वे उस समय यही विचार करते हैं कि "शरीरं पातयेयम् कार्यं वा साधयेयम्" जिसे स्वर्गीय गांधी जी के शब्दों में 'D. or die' कहा जाता है। जो इस प्रकार वीर गति को प्राप्त होते हैं उनके भी अपने यश की सिद्धि का उद्देश्य होने से कुछ कषायोदय रहता है परन्तु

ऐसी आदर्श सल्लेखना करने वाले महापुरुष के तो इतना सा कषाय भी नहीं रहता।

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज लोकोत्तर अद्वितीय आदर्श पुरुषोत्तम महापुरुष थे। उनके यह नियम था कि जब तक नेत्रों से दीख सकेगा भोजन पान अपने नेत्रों से देख भाल कर ही लेंगे। जब उनकी नेत्र ज्योति घटती ही चली गई उन्होंने क्रमशः भोजन पान छोड़ दिया और इस प्रकार ३५ दिन रहकर अपनी आत्मा में लीन हो अनुपम शान्ति और धैर्य के साथ आत्मचिंतन करते २ देहोत्सर्ग कर दिया।

महापुरुषों का जीवन त्याग सदाचार संयमादि जीवन के आदर्शों के पालन के लिए ही होता है। वे जीवन बने रहने के लिये ही खाते पीते हैं। खाने पीने के लिये नहीं जीते। जिस जीवन से जब त्याग संयमादि नहीं पलते दीखते तो उसे भी छोड़ देते हैं।

ऐसी ही सल्लेखना से प्रत्येक विवेकीका मरण हो और मुझे भी ऐसी ही सल्लेखना प्राप्त हो। ऐसी सल्लेखना और ऐसी सल्लेखना के विधाता को अनन्त बार प्रणाम।

लेखक—कलाविशारद डा० सौभाग्यमलजी दोशी अजमेर—

शान्ति के स्वरुप रुप, आतम अनूप भूप,
जात रूप धार कियो आतम उद्धार है॥
हित-मित-भाषी प्रिय, धर्म के प्रकाशी हिय
पाप के विनाशी लिये महाव्रत धार है॥१॥
ज्ञान ढाल धार कर, काम भट्ट मार कर,
तप-त्रिय धार कर लिया पद सार है॥
करके विहार-पार धर्म के प्रसार-कार,
सहे हैं अनेक बार साहस अपार है॥२॥
कर्म-कीट बंध तोड़, योग-पूर्ण देह छोड़,
मोक्ष से सुनेह जोड़ कियो भव-पार है॥
धन्य धन्य शान्ति सिंधु! नमः तोहि विश्व इन्दु
दीजिये "सौभाग्य" ज्योति वंदना हजार है।३।
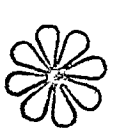
समाधि-मरण एक वीर मरण

लेखक :—श्री "स्वतन्त्र" सूरत

आचार्य श्री का समाधि मरण आत्म घात नहीं, वीरमरण था, इस बात की पुष्टि में प्रसिद्ध लेखक श्री "स्वतन्त्र" जी ने यह विवेचनात्मक लेख लिखा है। लेख पठनीय एवं मननीय है।

जब से पुज्यचा० चा० आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने यम सल्लेखना धारण (१७।८।५५) की तभी से गुजरात एवं महाराष्ट्र प्रांत में ऐसी सार्वजनिक चर्चा आयी कि सल्लेखना आत्मघात का एक रूप है। जिसने सल्लेखना का नाम नहीं सुना सल्लेखना का अर्थ और महत्व नहीं जाना उन्हीं व्यक्तियों द्वारा उक्त चर्चा फैलायी गयी। अगर सल्लेखना आत्म घात हो सकती है तो फिर अग्नि को शीतल होना चाहिये पूर्व के सूर्य को पश्चिम दिशा से उदित होना चाहिये, पर ऐसा त्रिकाल में न कभी हुआ और न होगा।

सल्लेखना में राग द्वेप एवं कपयों का त्याग किया जाता है, पर आत्मघात राग द्वेप तथा कपाय पूर्वक ही होता है। फिर सल्लेखना आत्मघात कैसे सिद्ध हो सकता है ? इन दोनों में उतना ही अन्तर है जितना कि प्रकाश अन्धकार में, कांच हीरा में अन्तर है। अत: यह मानना ही पड़ेगा कि सल्लेखना धर्म बुद्धि पूर्वक धारण किया जाता है और आत्म घात कपाय जन्य कुबुद्धि पूर्वक होती है।

उदाहरणार्थ—

न चात्म घातो ऽस्ति वृप-क्षतौ व पुरुपेक्षितु: ।
कपायावेशत: प्राणान्, विपाद्यै हिंसत: सहि ॥८॥

सागारधर्मामृत अध्याय ८

संस्कृतार्थ :—ग्रहीत व्रतस्य विनाश कारणे उपस्थिते भोजन त्यागादिभि: समाधि मरण विधानम् आत्मघातो न प्रोच्यते, यत: कपायावेशत: विपभक्षणादिभिर्य: प्राणाघातो विधियते स एवात्म घातो निगद्यते।

यह स्पष्ट वतलाया है कि कपाय के आवेश से ही शस्त्र घात कूपपात विपभक्षण अग्नि प्रवेश श्वास निरोध आदि के द्वारा जो प्राणों का घात किया जाता है वही आत्म घात कहलाता है, पर समाधि मरण में ऐसा होता नहीं अत: समाधि मरण आत्म घात नहीं अपितु वीर मरण है।

सल्लेखना क्यों व कब धारण करना चाहिये ?

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च नि: प्रतिकारे ।
धर्माय तनु विमोचन-माहु सल्लेखना मार्या: ॥

समन्तभद्राचार्येण रत्नकरंडश्रावकारे ।

यहां सल्लेखना एवं समाधि मरण सन्यांस, संथारा एक ही बात है। केवल नामान्तर है। भयानक उससर्ग आ जाने पर भी जिसके द्वारा प्राण न वचें, अकाल पड़ने पर, वुढापा आ जाने पर, ऐसा रोग जिसका इलाज़ न होसके या जो असाध्य हो जाने पर धर्म के लिये धर्म बुद्धि पूर्वक शरीर का त्याग करना सो सल्लेखना है। काय कपाय लेखना सल्लेखना, यानी शरीर और कषाय इनका यथार्थ स्वभाव समझ कर उपर्युक्त कारण उपस्थित होने पर इनका त्याग करना सो सल्लेखना है। सल्लेखना कोई ऐसा वैसा व्रत नहीं है। सल्लेखना को हर कोई व्यक्ति धारण नहीं कर सकता। जो वीरात्मा है नि:स्पृही है ममेदं बुद्धि से रहित है वही व्यक्ति सल्लेखना धारण कर मुनि प्राप्ति के लिये या मुक्ति की ओर प्रयाण करता है। सहस्राद्बि शताद्बियों वाद तथा अरवों करोड़ों व्यक्तियों में एक ही ऐसी महानात्मा वीरात्मा पैदा होती है जो यम सल्लेखना धारण कर अपने जीवन के उच्चादर्श उच्चध्येय को विश्व के समक्ष रखती है। वह महानात्मा दो हज़ार वर्ष वाद आचार्य शांतिसागर जी महाराज की थी। सल्लेखना यों ही धारण नहीं की जाती अपितु उसके धारण करने के लिये नियम हैं

मर्यादायें हैं । "मारणान्तकीं सल्लेखनांजोपिता" मोक्ष-शास्त्रअध्याय ७ सूत्र २२

साल्लेखना धारण करने की विधि

उपसर्ग दुर्भिक्ष बुढ़ापा असाध्य रोग या इनसे मिलती जुलती परिस्थिति उपस्थित होने पर सल्लेखना धारण की जाती है । इसके पूर्व वह राग द्वेष मोह परिग्रह इनको छोड़ कर अपने कुटम्बी बंधु बांधवों एवं इष्ट मित्रों से अपने अपराधों की क्षमा मांग कर सबको क्षमा प्रदान करता है । सर्व प्रथम आहार को क्रमशः कम किया जाता है तो दूसरी ओर दूध या छाछ की मात्रा बढ़ायी जाती है जब अन्नाहार बिल्कुल छूट जाता है तब क्रमशः दूध या छाछ को कम किया जाता है तब इनका प्रयोग बंद हो जाता है तब केवल पानी लिया जाता है और इस पानी को क्रमशः घटाते २ एक दिन ऐसा आता है कि पानी भी बिल्कुल छूट जाता है ।

इस तरह की क्रिया से यहां तक अन्न जल बिल्कुल ही छूट जाता है । तब सल्लेखना धारी सोऽहं सिद्धोऽहं निरंजनोऽहं का ध्यान करता हुआ आत्मस्थ और समाधिस्थ रहता है। सभीतरह के संकल्प विकल्पों का सर्वथा अभाव हो जाता है समाधिस्थ व्यक्ति अपनी ही आत्मा में रमण करता हुआ आत्मा के ज्ञान दर्शनादि जो अचिंत्य एवं अनिर्वचनीय गुण हैं उन्हीं का चिन्तन करता है, और इसी प्रकार की क्रिया उसकी तब तक चालू रहती है जब तक कि इस विनाशीक चोले से प्राणों का उत्सर्ग नहीं होता ।

इस प्रकार की सल्लेखना से विधि पूर्वक प्राण विसर्जन करने से निश्चित देवगति प्राप्त होती है, फिर इसके बाद क्रमशः उसे मुक्ति प्राप्त होती है । संक्षेप में यह क्यों न कहा जाये सल्लेखना व्रत धारी के लिये मुक्ति रूपी रमा की रजिष्ट्री शील (Seal) बंदी शीघ्र ही मिल जाती है । [प्रमाण के लिये देखिये रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक १२२ से १३० तक]

निःश्रेयस समभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निः पिवति पीत धर्मा, सब दुःखैरनालीढ़ ॥१३०॥

रत्न० श्रा०

यानी—सल्लेखना व्रत धारी धर्म रूपी अमृत का पान करके सब दुखों से रहित होकर अनन्त सुख सागर मोक्ष को भी प्राप्त करता है ।

सल्लेहणाय दुविहा, अम्यंतरिया य वाहिरा चेव
अम्यंतरा कसाएसु, वाहिरा होइहु सरीरे ॥११॥

शिवाचार्य विरचित भगवती आराधना ।
पृ० १०१ पं० सदासुखजी कृत टीका

अर्थात्—सल्लेखना दो प्रकार की होती है । आभ्यन्तर सल्लेखना बाह्य सल्लेखना । आभ्यन्तर सल्लेखना में क्रोधादि ४ कषायों को कृश किया जाता है और बाह्य सल्लेखना में शरी को कृश किया जाता है ।

कोहं खमाए माणं, च मद्दवेणज्ज वेण मायंच ।
संतोसेण य लोहं, जिणदुखुचत्तारि वि कसाए ॥६५॥

भग० आरा० पृ० १३७

यानी—क्रोध को क्षमा से मान को मार्दव से माया को आर्जवसे लोभ को संतोष से जीते ।

अव्वोच्छित्ति णिमित्तं, सव्वे गुण समोपरं तपं णच्चा
अणुजाणेदि दिसंसे, एसदिसा वोत्ति वोधिव्वा ॥८०॥

भग० आरा० पृष्ठ १४१

यानी—जब संघ का आचार्य सल्लेखना धारण करे तब वह धर्म की परम्परा के अनुसार अपने समान गुणज्ञ धर्मज्ञ शिष्य को आचार्य पद पर स्थापित करे ।

इसी धर्म-परम्परा के अनुसार पूज्य आ० शाँतिसागर जी महाराज ने मुनि श्री वीरसागर जी महाराज (आयु ८१वर्ष) को आचार्य पद प्रदान किया था ।

सल्लेखना को ३ भागोंमें विभाजित किया गया है। भक्त प्रत्याख्यान मरण, इंगिनी मरण, प्रायोपगमन मरण । कलिकाल में भक्त प्रत्याख्यान सन्यास मरण ही माना गया है । शेष दो का निषेध है । इंगिनी मरण में दूसरे के द्वारा वैयाव्रत्य का निषेध है प्रायोपगमनसन्यास धारी स्वयं, स्वयं की वैयावृत्ति नहीं कर सकता । पर आचार्य श्री का समाधि मरण प्रायः करके इंगिनी मरण माना गया है क्योंकि उनकी यह अंतरंग भावना नहीं थी कि मेरे सन्यास के समय अन्य कोई वैयावृत्ति करें, पर साधु त्यागी पंडितों ने धर्म स्वभाव वस पूज्य आचार्य श्री की वैयावृत्ति की थी ।

समाधि मरण में साधु शरीर की चिन्ता छोड़ कर धर्माराधना में बढ़ता है और शरीर जो कि पुद्गल है जड़ है अपने स्वभाव के अनुसार गलने लगता है । भक्त प्रत्याख्यान के भी २ भेद हैं । अविचार भक्तप्रत्याख्यान सविचारभक्त

प्रत्याख्यान। एकदम मरण काल उपस्थित होने पर समाधि मरण धारण करना अविचार भक्तप्रत्याख्यान है। सविचार भक्तप्रत्याख्यान समाधि मरण का उत्कृष्ट काल १२ वर्ष है, साल में प्रथम ४ वर्ष तक अन्न पर रहता है फिर अन्न का त्याग कर ४ वर्ष तक दूध पर रहता है फिर छाछ पर रहता है अन्तिम ६ माह तक केवल पानी पर रहता है, फिर पानी का भी त्याग कर केवल आत्मस्थ रहकर अंतिम समाधि में लीन हो जाता है तब परिणामों में अत्यंत विशुद्धि एवं निर्मलता आती है, इस प्रकार की क्रिया में अधिक से अधिक ६ माह तक व्यतीत हो सकते हैं।

सल्लेखना का विशद वर्णन रत्नकरंडश्रावकाचार भगवती आराधना मूलाचार सागार धर्ममृत इन ग्रन्थों में हैं। विशेष जान कारी के लिये उक्त ग्रन्थों को देखना चाहिये, इस छोटे से लेख में सभी प्रमाण देना असंभवसा प्रतीत होता है।

चारित्र चक्रवर्ती पूज्य आ० शांतिसागर जी ने विश्व के समक्ष एक नया ही इतिहास रचा है, जब कि प्राणी मात्र मृत्यु शब्द से भयभीत हो जाता है तब वह अपनी मृत्यु क्यों चाहेगा ? पर आचार्य श्री ने मृत्यु को खुली चुनोती देकर उसका स्वागत किया और प्राणों का सर्वथा मोह छोड़कर अपने जर्जर जीर्ण शरीर का त्याग कर देवगति की ओर प्रस्थान किया। आज संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो मृत्यु का आलिंगन करता हुआ यम सल्लेखना को धारण करे। सल्लेखना व्रत को मुनि ही धारण करते हैं अन्य कोई नहीं, ऐसा नहीं है, गृहस्थों के लिये भी अन्तिम समय सल्लेखना धारण करने का विधान है। व्रती गृहस्थ यदि विधि पूर्वक सल्लेखना धारण कर अपना शरीर छोड़ता है तो वह उत्कृष्ट १६ वें स्वर्ग तक जा सकता है और मुनिप्रायोपगमन सन्यास धारण कर सर्वार्थ सिद्धितक, पर कलि काल में नहीं। पूज्य आचार्य श्री ने सल्लेखना धारण कर जैनत्व दिगम्बर और जैन धर्म के प्रचार में चार चांद लगा दिये। ऐसी महानात्मा वीरात्मा के चरण में लेखक कोटिशः नमन-वंदन प्रणाम करता है।

श्रद्धांजली

वारेलाल जी जैन राजवैद्य, टीकमगढ़

चञ्चचचकोर चारु चांदनी सी छटान्यारी
पावन पुनीत पुण्य पुञ्ज की क्यारी सी,
चन्द्र चन्द्रिकासी सुधा के रसपान जैसी
भारत में भारती को छिटकाई है चाँदनी सी,

ज्यों जगती के चातकों को स्वांतिवृन्द जैसी
उपदेश रूप विन्दु का कराया है रसपान अरे,
खिलाई है दिनकर की प्रथम रश्मि जैसी
सरकमल कलिका जो हृदय कमल कलिका संत मानवों की

मानस दुकूल में उतारें हम आरती तुम्हारी
आज पूज्य तुम परम पूज्य अहो मेरे गुरु
श्रद्धा के सरस प्रसूनों की यह अंजली
अर्पित है तुम्हें प्रभो "वारे" की श्रद्धांजलि

जयतादू गुरुर्मे

रचयिता:—

(श्रीमान धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर पं० लालाराम जी शास्त्री, मैंनपुरी)

यो वेलगांव निकटस्थसुभोजपुर्यां
श्रीभीम गौडतनयः खलु सातगोडा ।
जातो विरक्तहृदयः सुदया प्रपूर्णः
श्री शांतिसागर मुनि र्जयतादू गुरुर्मे ॥ १ ॥

नानोपसर्ग जयिना सुतपस्विना वा
लब्ध्वा सुसूरिपदवीं मुनिनायकेन ।
संवोधिता वहुजनाः खलु भारतेऽस्मिन्
कृत्वा विहारमनघं मुनिसंवसार्द्धम् ॥ २ ॥

आजन्म काम जयिनः खलु यस्य सूरेः
नाभूच्च मोहमद रोप भयादि दोषाः ।
सिद्धान्तशास्त्र निपुणः विदुषां प्रशास्ता
योगीश्वरैः सकल लोक जनैश्च पूज्यः ॥ ३ ॥

तस्याधुना विघटिता नयनस्य दृष्टिः
ईर्यैषणादि समिते र्नहि पालनं स्यात् ।
दृष्ट्या विना इति विमृश्य सु सूरिणा वै
सल्लेखना सुविधिना विधृतात्म शुध्दै ॥ ४ ॥

व्यक्तं क्रमेण सकलं मुनिना न्नपानं
देहस्य मोहमदराग मपि प्रमादम् ।
हित्वान्तरंग वहिरंग परिग्रहं च
स्वर्गं जगाम मुनियः सहसात्मशुध्वा ॥ ५ ॥

हा शांतिसागर मुने भवता विनाद्य
धर्मस्य रक्षक जनो नहि विद्यतेऽन्यः ।
योगीश्वराः सुगृहिणो विपरीत भावं
यास्यन्ति वोधरहिता निजमान मोहात् ॥ ६ ।

पुण्यस्य साधकतमो गृहिणां त्वमेव
ह्यासी त्वमेव शरणं मुनिनायकानाम् ।
स्वात्म प्रबोधकथनाच्च निजात्म शुद्धेः
हेतुस्त्वमेव भगवन् विधिनिर्जरायाः ॥ ७ ॥

स्वर्गं गते त्वयि जिनाधिपतुल्यवृत्त
वृत्तस्य मोक्षसरणे ननु हानिरेव ।
तेनैव नाथ वयमेव सुभाग्य हीना
स्त्वत्पाद पद्मयजनेन विना विपुण्याः ॥ ८ ॥

सद्दृष्टयश्च व्रतिनोपि मुनीश्वरा वा
जाता सुनाथ रहिता ननु खेद खिन्नाः ।
स्वर्गंगते त्वयि विभो विलयन्ति सर्वे
हा नाथ हा विबुधपूज्य दयाद्रमूर्ते ॥ ९ ।

लाम्नैव शास्त्रि पदवीं विदधामि लोके
शास्त्री त्वमेव सकलागमपारगामी ।
सिद्धान्त शास्त्र निपुणोपि विशेष वक्ता
स्वामिन् त्वमेव मुनिनाथ दिनेश कर्त्ता ॥१०॥

अधुना स्मरामि तव देव पदारविन्दं
शिरसा नमामि तव पादयुगं पवित्रम् ।
वचसा स्तवीमि सततं तव पादयुग्मं
कुसुमै र्यजामि विपुलैश्चरण द्वयं ते ॥११॥

मरणं समाधिसहितं मम चारु भूयात्
सततं जिनेन्द्र यजनं त्वयि भक्ति भावः ।
शरणं व्रजामि परमेष्टि पदं च नित्यं
अयि शान्ति सद्म तव पादयुगप्रसादात् ॥१२॥

अन्तिम दर्शन हीनः दूरस्थाद् दैव दौर्बल्यात्
विलयति लालारामस्तव चरणेभ्यो नमस्कुर्वन् ॥

शांति सागर के अद्भुत गुण

लेखक—श्री यशपाल जी जैन देहली

हिन्दी के प्रख्यात लेखक श्री यशपाल जैन को आचार्य शान्ति सागर महाराज की तपश्चर्या एवं चारित्र्य ने जितना प्रभावित किया, उससे कहीं अधिक उनके सारल्य एवं मानवता ने। आचार्य श्री की इसी अद्भुत मानवता पर मुग्ध होकर यशपाल जी ने इस रोचक लेख में उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की है।

प्रतिदिवसं विजहद्दल मुज्झद् भुक्तिं त्यज त्प्रतीकारम्
वपुरेव नृणां निगदति चरम चरित्रोदयं समयम् ॥

"*जिसका बल प्रतिदिन क्षीण हो रहा हो, भोजन उत्तोरोत्तर घट रहा हो और रोगादिक के प्रतीकार करने की शक्ति नष्ट हो गई हो, वह शरीर विवेकवान व्यक्तियों को समाधि मरण धारण करने के लिए संकेत करता है।*"

इन शब्दों में हमारे एक विद्वान ने बताया है कि हममें से किसी भी व्यक्ति को इस धरा पर भारभूत नहीं होना चाहिए। वैसे तो यह बात सभी प्राणियों पर लागू होती है, लेकिन इसका विशेष प्रयोजन उन त्यागियों से है, जो अपने जीवन का प्रत्येक क्षण दूसरों के हित-साधन में व्यतीत करते हैं। उनके लिए यह शरीर परम पिता की देन है और वह जब तक काम देता है तभी तक वे उसका उपयोग करते हैं। लेकिन जब वह ऐसा करने के योग्य नहीं रह जाता तो वे उसका त्याग कर देते हैं इस प्रकार से स्वेच्छापूर्वक शरीर-त्याग करना आसान नहीं है, क्योंकि हम सब जानते हैं कि दुनियां की वस्तुओं तक से मानव की मोह-ममता बड़ी गहरी होती है, जीवन से उदासीन होना तो और भी कठिन बात है। कहा भी जाता है कि आदमी को प्राणों का मोह सबसे अधिक होता है और प्रत्येक व्यक्ति अन्तिम क्षण तक जीवित रहने के लिए लालायित रहता है। लेकिन साधु-सन्तों और विसम पुरुषों का मार्ग दूसरा ही होता है। वे निस्पृही होते हैं और भौतिक वस्तुओं से, जिसमें उनकी देह भी शामिल है, उनका किसी प्रकार का लगाव नहीं होता। हमारे इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जबकि अनेक मूर्द्धन्य व्यक्तियों ने हंसते-हंसते अपने शरीर का त्याग किया। एक कवि ने तो यहाँ तक कहा है—

"मरनो भलो बिदेस को जहां न अपनो कोय।
माटी खाँय जनावरां महा महोच्छव होय।"

मरने के बाद भी इस शरीर का उपयोग हो, ऐसी कामना निस्सन्देह है।

पुज्य मुनिवर शान्ति सागरजी के सम्बन्ध में जब मैंने सुना कि उनका शरीर अशक्त होने लगा है और उन्होंने सल्लेखना धारण कर ली है तो मुझे कुछ व्याकुलता अवश्य हुई, उनकी अवस्था ८४ वर्ष की हो चुकी थी और जब उन्होंने देखा कि उनका शरीर आत्म-कल्याण के मार्ग में सहायक नहीं रहता है। या उसकी उपयोगिता उत्तरोत्तर कम होती जाती है तो उन्होंने उससे मुक्त होना उचित समझा। उन्होंने स्वयं कहा, "यह शरीर ८४ वर्ष का हो चुका, वह जाने वाला है, नाशशील है, अब वह अधिक दिन नहीं टिक सकेगा। एक न एक दिन उससे मोह अवश्य तोड़ना पड़ेगा। इन्द्रियाँ जबाब दे रहीं हैं, आँखों ने जवाब दे ही दिया है। बिना आँखों की ज्योति के यह सिद्ध सम आत्मा पराश्रित हो जायगा। ईर्यासमिति और एषणासमिति

नहीं पल सकतीं। क्या इन आत्मगुणों को नाश कर अवश्य जाने वाले जीर्ण-शीर्ण शरीर की रक्षा के लिए मैं अन्न-पान ग्रहण करता रहूँ? क्या आत्मा और शरीर के भेद को समझने वाले तथा आत्मा के अमरत्व में आस्था रखने वाले साधु के लिये यह उचित है? ······नश्वर शरीर नष्ट होता है तो हो, जीवन भर पालित-पोषित आत्मगुणों का नाश नहीं होने दूंगा। अतः शरीर से मोह छोड़ कर आत्मा की रक्षा करूंगा; क्योंकि शरीर रक्षा की अपेक्षा आत्म-रक्षा अधिक लाभदायक और श्रेयस्कर है।" यह सोचकर मुनिवर ने सल्लेखना व्रत धारण किया और ३५ दिन तक व्रत पालन करके शरीर त्याग कर दिया।

मुनि शान्तिसागर जी का जैन-समाज में ऊंचा स्थान था। उनका जीवन अत्यन्त उदात्त था। उनकी साधना अद्वितीय थी। अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने अपने आत्मा के उद्धार तथा परहिताय विताया। वे मुनि थे और मुनि कभी एक स्थान पर नहीं रहते। जगह-जगह घूम कर अपनी पावन वाणी से मंदाकिनी प्रवाहित करते रहते हैं, जिसमें अवगाहन कर सांसारिक प्राणी अपने जीवन को कृतार्थ बनाते हैं।

लेखक

मुनिवर के अधिक सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। केवल एक वार उनके दर्शन और साहचार्य का संयोग मिला। तव की स्मृति आज भी मानस पटल पर अंकित है। सन् १९३३ की वात है। एक मित्र के साथ महावीर जी गया था। एक सप्ताह रहने के वाद जव हम लोग लौटने की तैयारी कर रहे थे तो अकस्मात पता लगा कि चातुर्मास करने के लिए एक मुनि-संघ वहां आ रहा है। हम लोग रुकगये। मालूम हुआ कि मुनिसंघ दस-बारह मील की दूरी पर पहाड़ी नामक स्थान पर रात्रि-वास करके अगले दिन महावीर जी पहुँचेगा। मेरी वालसुलभ उत्सुकता मुझे और मेरा आग्रह मेरे साथी को खींच कर पहाड़ी ले गया। अगले दिन ब्राह्म मुहूर्त में मुनि संघ को प्रस्थान करना था हम लोग बड़े तड़के उठे और दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर मुनियों के वाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। सवसे पहले जो मुनि आए, उनका शरीर दुवला-पतला था, वर्णश्यामल ललाट उन्नत, नासिका उठी हुई, आँखों में आध्यात्मिक तेज, कद न वहुत ऊंचा न वहुत छोटा।

यही थे मुनिवर आचार्य शान्तिसागर जी। मुझे स्मरण नहीं है कि उससे पहले मुझे कभी उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दर्शन करके हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई। मुनि महाराज मौन धारण किये हुए थे, फिर भी मुझे लगा कि यह आत्मस्थ नहीं हैं। पर उनकी जिस चीज ने मुझे उस घड़ी विशेष रूप से आकृष्ट किया, वह थी उनके चेहरे की अपूर्व शान्ति और स्निग्धता, जो उनके नाम को सार्थक कर रही थी। २२ वर्ष पूर्व की वह छवि मन पर आज भी ज्यों-की त्यों अंकित है।

किसी ने संकेत किया कि मुनि महाराज का कमण्डलु उठा लो। अज्ञानी वालक आगे वढ़ा और जूते पहने ही कमण्डलु उठा लिया। किसी ने झिड़का। मैं सहम कर रह गया। जूते उतार दिये और कमण्डलु लेकर मुनि महाराज के साथ चल दिया। शान्तिसागर जी की अवस्था उस समय भी काफी थी, पर उनके पैरों में शैथिल्य नहीं था, दृढ़ता थी जो विना साधना के प्राप्त नहीं हो सकती। मुनिवर जागरूक थे और ऐसा नहीं प्रतीत होता था कि वे आत्मविस्मृत होकर चल रहे हों। रास्ते में गोखरू वहुत थे। जैसे ही कोई गोखरू उनके चुभता, वे युक्तिपूर्वक चलते–चलते ही उसे निकालने का प्रयत्न करते। न निकलता तो उस पर को उठा कर खड़े हो जाते और मैं झट निकाल देता। सेवा के इस सहज सौभाग्य से मुझे वड़ा हर्ष हुआ और कृतार्थता अनुभव हुई।
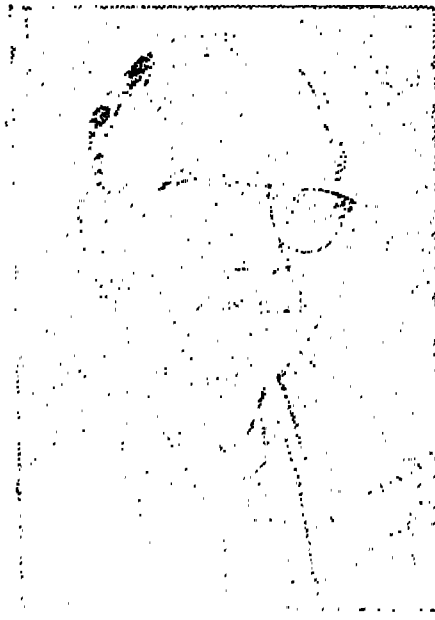
महाराज से वातचीत

साढ़े तीन घंटे में हम लोग महावीर जी पहुंचे। आचार्य

महाराज का मौन खुला तो मेरे साथी ने उनसे मेरा परिचय कराया। महाराज ने मेरी पढ़ाई-लिखाई के विषय में कई प्रश्न किये, घर के बारे में पूछा और अन्त में यह भी जानना चाहा कि पढ़-लिख कर मैं क्या करूंगा। यह सब उन्होंने इतने सहज भाव और आत्मीयता के साथ पूछा कि मैं चकित रह गया। उनकी यह जिज्ञासा औपचारिक नहीं थी, हार्दिक थी। मुझ जैसे अनगिनत बालक उन्हें अपने प्रवास में मिलते होंगे। क्या पड़ी थी उन्हें जो उन सबके सम्बन्ध में पूछ-ताछ करें और उनके सुख-दुख को जानें—खास कर ऐसे विरक्त पुरुष के लिये, जिसने एक प्रकार से इस दुनियां के बन्धनों से मुंह मोड़ लिया है। लेकिन नहीं शान्तिसागर जी की यही विशेषता थी, जो आज के युग में दुर्लभ है।

त्यागी अपने त्याग में घिरा रहता है, ज्ञानी अपने ज्ञान में और विद्वान अपनी विद्वत्ता में, परन्तु वे भूल जाते हैं कि इस अनन्त विश्व में त्याग, ज्ञान अथवा विद्वत्ता की कोई सीमा नहीं है। एक से एक बढ़ कर त्यागी, ज्ञानी और विद्वान पड़े हुए हैं। दुनियाँ उनका मान करती है, पर प्यार उसी व्यक्ति को करती है, जो ज्ञानी या विद्वान से अधिक इन्सान स्पंदनशील मानव है। मुनिवर शान्तिसागर जी में वह गुण मुझे विशेषरूप से दिखाई दिये और उनका मुझ बालक पर गहरा असर पड़ा।

मुनिवर के आदेश पर हम लोग वहां लगभग एक सप्ताह और रुके। इस अरसे में अनेक बार उनके दर्शन किये उनसे चर्चाएं हुईं और उनके प्रवचन सुने। इस सान्निध्य से मेरी श्रद्धा और बढ़ी।

यों दोष सबमें होते हैं। छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा कोई भी व्यक्ति दोषों से मुक्त नहीं है, लेकिन मेरा मन जिस कसौटी पर कस कर किसी को देखता है, वह यह है कि उसमें मानवता कितनी है, वह अभिमानी या अहंकारी तो नहीं है, जो बाना उसने धारण किया है, वह सहजप्राप्य है अथवा लोकाचार या स्वार्थवश धारण किया है। जो इस कसौटी पर खरा उतरता है, मेरी श्रद्धा उसके चरणों पर झुक जाती है। शान्तिसागर जी के प्रति अपनी श्रद्धा के मूल में मैं इसी चीज को पाता हूँ। वह मुझे निरभिमानी लगे और यह भी मालूम हुआ कि उन की साधना उन्हें भार नहीं है वह उन्हें सहज प्राप्त है। अन्दर और बाहर का उनका सामंजस्य उस समय भी मेरे लिए बहुत बड़ी बात थी और आज तो मैं उसको सबसे अधिक महत्व देता हूँ अन्तर और बाह्य में जहां जितना अन्तर होता है, वहां उतना ही दम्भ होता है। निश्चय ही यह एक विडंबना है और त्याज्य है। शान्तिसागर जी को मैंने कई बार लोगों की व्यथा से विचलित होते हुए देखा है। कुछ व्यक्तियों की निगाह में यह एक विचित्र बात हो सकती है कि एक मुनि दुनिया के लोगों के सुख दुख से यों प्रभावित हो, लेकिन मेरी दृष्टि में यह एक बहुत बड़ा गुण है। धरती से नाता तोड़ कर आखिर व्यक्ति टिकेगा किस आधार पर ? किसी तड़पते मानव को देखकर जिसकी आँखे गीली नहीं हो आती। वह आदमी नहीं है।

मुझे याद नहीं आता कि उसके बाद मुनिवर के दर्शन का फिर कभी अवसर मिला। उस दिन बम्बई में सुना कि मुनि महाराज ने सल्लेखना व्रत धारण कर लिया है और वह धीरे-धीरे देह-मुक्ति की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। एक बार जी हुआ कि जाऊं और उनके दर्शन कर आऊं, लेकिन तभी सोचा कि भीड़ बढ़ाने से लाभ क्या, दिल्ली लौटा तो जैन समाज में भारी उद्वेलन था। घड़ी-घड़ी मुनिवर के निर्वाण के समाचार की प्रतीक्षा की जा रही थी। आखिर वह विधिनिर्मित घड़ी आ पहुँची और परम शान्ति से मुनि महाराज का कायिक सम्बन्ध संसार से टूट गया। जैसा उनका महान जीवन रहा था वैसा ही महान उनका मरण हुआ।

उनके निधन से निस्संदेह मानवता का विशेषकर जैन-समुदाय का एक उज्ज्वल रत्न चला गया। आत्मा तो अजर-अमर है। इसलिए मुनिवर सदा अमर रहेंगे, लेकिन उनके नाम को चिर-स्मरणीय बनाने के लिए उनके मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक होगा। जैन-समाज की उन पर अगाध श्रद्धा थी और उनकी स्मृति में अनेक धार्मिक एवं पारमार्थिक संस्थाएं चल रही हैं; परन्तु मात्र ऐसे कार्यों से किसी का नाम अमर नहीं होता। उस के लिए जरूरी है वह वैयक्तिक साधना व तपस्या, व त्याग और सबसे बढ़कर वह स्पन्दन शीलता, जिसने शांतिसागर जी को इतना वन्दनीय, श्रद्धास्पद और महान बनाया।

श्री पं० भगवतस्वरूप जी जैन फरिहा (मैंनपुरी)

जय विश्व वंद्य आचार्य देव ।

तुम यथानाम गुण तथा धीर, भवि जीवों की भव हरन पीर।
कलिकाल केवली ज्ञान भानु, चारित्र चक्रवर्ती महान।
नर धन्य करी जिन चरन सेव । जय विश्व वंद्य आचार्य देव ॥

धन बालब्रह्मचारी अनूप, योगीन्दु चूणामणि शिव स्वरूप।
तुम उपदेशामृत किया पान, ते हुये धन्य नर पूज्यमान।
वो लगे जाय शिव मग स्वमेव, जय विश्व वंद्य आचार्य देव ।

जय धीर वीर गम्भीर चित्त, जिन धर्म प्रभावन करी नित्त ।
धर्मोद्धारक योगी विशाल, लखि तप प्रभाव जग नमत भाल।
तुम आगम पोषक अटल देव। जय विश्व वन्द्य अचार्य देव।

लखि आयु अन्त सन्यास लीन, करि वीर मरण जग चकित कीन।
"भगवत" सेवक नित शीश नाय, श्रद्धांजलि श्रद्धायुत चढ़ाय।
गुरुदेव भवोदधि नाव खेव। जय विश्व वंद्य आचार्य देव।

धार्मिक शिक्षा
त्यागियों की दीक्षा
विहार
संस्कृति की रक्षा
उपसर्गों का निवारण
स्त्री-शिक्षा
मन्दिर-निर्माण
विद्या-प्रसार
सल्लेखना
धार्मिक प्रभावना
धवल ग्रंथों का ताम्रांकन
तीर्थों की रक्षा
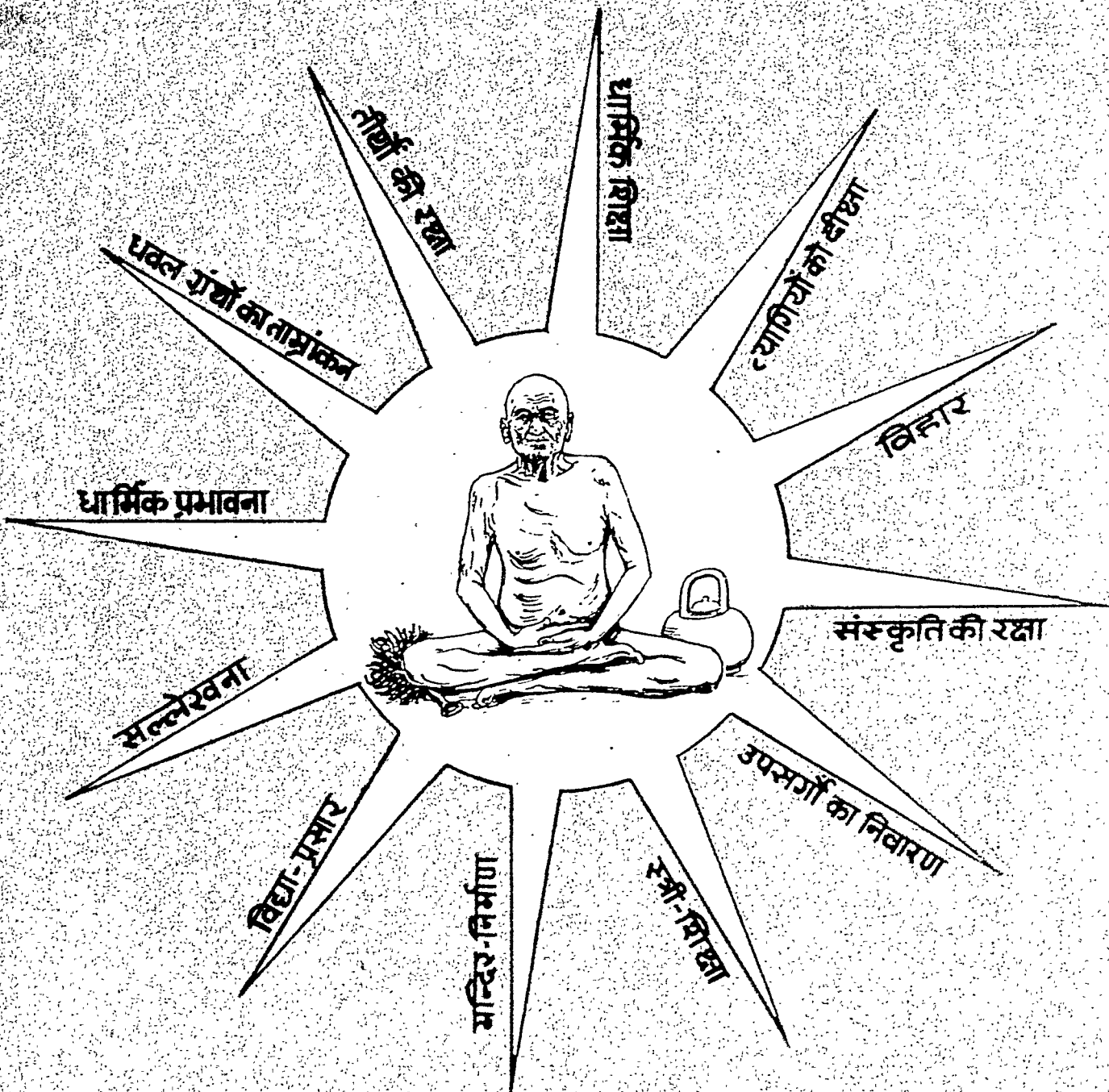
तपोभूमि की यात्रा

लेखक :—पं० शिखरचन्द जी जैन विशारद, सखावतपुरीय
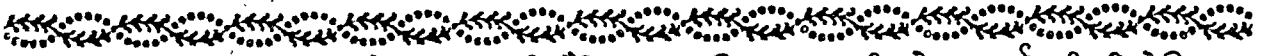
[भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के मैनेजर पं० शिखरचन्द जी को आचार्य श्री की ऐतिहासिक सल्लेखना के समय कुन्थलगिरि के पुण्यक्षेत्र में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाद में जैनगज़ट विशेषांक के लिए सामग्री संकलित करने के उद्देश्य से उन्होंने कुन्थलगीरि एवं अन्य स्थानों की लम्बी यात्रा की और बहुत प्रमुखों से मिले। इन दोनों यात्राओं के मधुर संस्मरण अत्यन्त रोचक ढंग से इस लेख में प्रस्तुत किये हैं।]
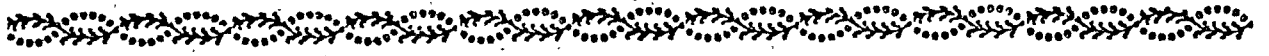
रात का समय था। हमारी रेलगाड़ी बम्बई की ओर बड़े बेग से चली जा रही थी। परन्तु मेरा मन उससे भी तीव्र वेग से सारा फ़ासला तै कर कुन्थलगीरि के पुण्य तीर्थ पर जा पहुंचा जहां कुछ ही दिन पूर्व परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज नें यम सल्लेखना द्वारा शरीर त्यागकर स्वर्गारोहण किया था।

भारतवर्षीय दिगम्बर जन महासभा के मैनेजर की हैसियत से मुझे आचार्य श्री की सल्लेखना के ऐतिहासिक अवसर पर कुन्थलगिरि जाने और अन्त तक वहां रहने का का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतएव अत्र दुवारा सल्लेखना सम्बन्धी सामग्री एकत्र करने के लिए श्री सोमसुन्दरम जी के साथ जाने का पुनः योग मिला तो मैंने अपने को धन्य माना। १५ अक्टूबर की रात को हम दोनों दिल्ली से बम्बई रवाना हुए।

आधी रात हो चुकी थी, फिर भी मुझे नींद नहीं आई। महाराज की सल्लेखना के कभी न भूलने वाले दृश्य बार बार सामने आते।

... ...

पिछली बार २५ अगस्त को मैं कुन्थलगीरि पहुंचा था। वैसे आचार्य श्री की सल्लेखना की सूचना पं० वर्द्धमान जी शास्त्री ने १८ अगस्त को ही तार द्वारा दे दी थी, परन्तु कार्यालय की व्यवस्था ठीक-ठाक कर रवाना होने में चार दिन लग गये थे। २२ अगस्त को दिल्ली से रवाना होकर मैं २५ अगस्त को कुन्थलगिरि पहुँचा था। कुछ अन्य सज्जन भी मेरे साथ थे। पहुंचते ही मालूम हुआकि मुख्य मन्दिर के बाहर बने मंच पर बैठकर आचार्य श्री लगभग दो हज़ार दर्शनार्थियों को दर्शन दे रहे हैं। अतः हम भी फौरन सामान एसे ही छोड़ कर ऊपर चले गये।

मुझे मालूम था कि १५ अगस्त से ही महाराज उपवास कर रहे हैं। उनके दर्शन किये मुझे चार साल से ऊपर हो चुके थे फलटन में हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर उनके दर्शन करने के बाद अभी मैं उन्हें देख रहा था। मुझे लगा कि महाराज का शरीर पहले की अपेक्षा कृश और क्षीण हो गया है। परन्तु मुखमण्डल पर वही शान्ति एवं सम्यक्त्व का तेज छिटक रहा था। ऐसा प्रतीत हुआ कि महाराज भीड़-भाड़ से घिरे रहने पर भी आत्मध्यान में लीन हैं।

महाराज कुछ समय बाद उठकर अपनी गुफा में गये तो मैं भी प्रयत्न करने पर उनके सान्निध्या में पहुंचा।

मैं एकटक आचार्य श्री की शान्त मुखाकृति को देख रहा था। उनकी संकल्प-दृढ़ता और शारीरिक दुर्बलता पर विजय पाने वाली उनकी अजेय आत्मिक शक्ति ने मुझे मुग्ध एवं श्रद्धावनत कर दिया।

आचार्य श्री को सल्लेखना धारण किये अभी दस ही दिन हुए थे, परन्तु लोग बड़ी संख्या में दूर दूर से उनके दर्शनार्थ आने लग गये थे। जिस समय मैं पहुंचा तब पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री, पं० खूबचन्द जी शास्त्री, पं० वर्द्धमान जी शास्त्री, पं० ब्रह्मचारी श्रीलाल जी काव्यतीर्थ, ब्र. सूरजमलजी, सेठ जम्बू अव्णा आरवाड़े, सेठ चन्दूलाल जी सर्राफ, संघपति गेन्दनमल जी, वकील तलकचन्द जी शाह, सेठ मानकचन्द, वीरचन्द, ब्र० जीवराज जी शोलापुर, सेठ बालचन्द देवचन्द आदि गण्य मान्य विद्वान एवं श्रीमन्त वहाँ पहुंच चुके थे। भट्टारक लक्ष्मीसेन जी और जिनसेन जी भी वहां थे और क्षुल्लक पार्श्व कीर्त्ति जी एवं कुछ अन्य क्षुल्लक गण वहां विद्यमान थे मेरे जाने के कुछ दिन बाद मुनि पिहिताश्रव जी भी वहां पहुंचे। हजारों की संख्या में आने-जाने वाले भक्तगण अलग।ठंड, वर्षा का जोर था।

२६ अगस्त को महासभा के महामन्त्री ला० परसादी लालजी पाटनी भी आ पहुंचे। आते ही वह सीधे महाराज के पास गये और दर्शन एवं उपदश श्रवण का लाभ प्राप्त कर लौटे। उस समय मैं उनके साथ नहीं था, परन्तु लौटने पर मैंने देखा कि लाला जी का मुख भक्ति परवशता के कारण स्निग्ध था और उनकी आँखें सजल थीं।

भीड़भाड़ प्रतिदिन बढ़ती ही गई और व्यवस्थापकों के लिए लोगों के निवास एवं भोजनादि का प्रवन्ध करना असम्भव सा प्रतीत हो रहा था। निवास के लिये टीन के अस्थायी झोंपड़े खड़े किये गये। परन्तु भोजन का प्रबंध अब भी दुष्कर था।

श्री भूमकर जी की महान सेवा

इस समस्या को हल करने के लिए एक दानवीर पुरुष सामने आये। ये थे श्रीमान बालचन्द लालचन्द भूमकर बारसी वाले। २६ अगस्त को उन्होंने भोजनशाला खोल दी और यह घोषणा की कि दिनभर जितने स्त्री-पुरुष आयें, जिनको भोजनादि की व्यवस्था न होवे उन्हें भोजन मुफ्त कराया जायेगा। १७ सितम्बर तक उनकी यह भोजनशाला निरन्तर चली और अनुमानतः १४ हजार स्त्री-पुरुषों ने उसमें भोजन किया व कुल व्यय दस हजार रुपये से अधिक होने का अनुमान है :

श्रीमान बालचन्द लालचन्द तथा उनके भ्राताओं की असाधारण कार्य तत्परता, परिश्रमशीलता एवं सेवाभाव ही था। अपने इस उपयुक्त सेवा-कार्य से भूमकर बन्धुओं ने जहां अपार पुण्य अर्जित किया वहां देश व्यापी यश भी प्राप्त किया। इस त्याग के लिये जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है।

धीरे २ वर्षा और ठंड कुछ कम हो गई थी, परन्तु भीड़ बहुत अधिक हो गयी थी। महाराज क्रमशः क्षीण होते प्रतीत हुए जो कि स्वाभाविक था। प्रतिदिन मन्दिर में अभिषेक आराधन के समय जाने और तीसरे पहर लोगों को दर्शन देने का उनका क्रम पूर्ववत चल रहा था। इस अवसर पर विद्वानों के प्रभावशाली, सारगर्भित भाषण भी होते थे। कभी कभी बीच में वर्षा हो जाती थी, फिर भी श्रद्धालु जनसमूह अपने स्थान पर डटा रहता था। भक्ति की यह महिमा थी।

प्रवचन करने वाले सभी विद्वान जैन ही थे, सो बात नहीं थी। ७सितम्बर को शोलापुर के डी.ए. वी. कालिज के प्रो० श्री दा० रा० वेन्द्रे (हिन्दू) ने अत्यन्त स्फूर्ति शब्दों में आचार्य श्री को श्रद्धांजली अर्पित की।

मोमीनवाद के विख्यात कीर्तनकार श्री गणपतराव जी संघई प्रति रात्रि को कीर्तन करते थे।

एक चमत्कार

चमत्कारिक घटनाओं के सम्बन्ध में हम बहुत पढ़ा एवं सुना करते थे। परन्तु प्रत्यक्ष देखने का अवसर हमें कम मिलता है।

१४ सितम्बर को महाराज की गुफा के पास एक सफेद सर्प आया जो करीब चार फूट लम्बा था। माननीय पं० मक्खनलाल जी मुरैनावाले तथा कुछ और अन्य सज्जन भी थे। सबके देखते देखते वह सांप ऊपर मन्दिर की ओर गया। हम लोग आश्चर्य चकित हो देख ही रहे थे कि वह सर्प मन्दिर से लौटा और पास की झाड़ियों में जाकर आँखों से ओझल हो गया।

मार्मिक अनुभव

१७ सितम्बर को जब मैंने महाराज के दर्शन किये, तब मुझे यह कल्पना नहीं थी कि महाराज के सजीव रूप में यही अन्तिम दर्शन होंगे।

१८ सितम्बर का प्रातःकाल माननीय पं० मक्खनलाल जी और मैं वावड़ी में स्नान कर ही चुके थे कि इतने में मालूम हुआ कि महाराज का स्वर्गवास हो गया। सुनकर हम लोगों का हृदय धक् धक् करके रह गया। हम तत्काल भाग चले कि जल्दी कपड़े बदलकर ऊपर महाराज के दर्शन को जायें। मैं अपने कमरे में जाकर कपड़े बदल ही रहा था कि इतने में वीडकर जी ने आकर कहा कि कमेटी के मंत्री जी ने आपको आवश्यक काम के लिए बुलाया है। मैंने हज़ार बार मना किया कि अभी नहीं परन्तु उन्होंने नहीं माना। मैं उनके साथ गया और क्षेत्र कमेटी के मंत्री श्रीमान माणिकचन्द वीरचन्द जी के सहयोग से महाराज के स्वर्गारोहण की सूचना तार टेलीफोन द्वारा सैकड़ों प्रमुख व्यक्तियों, शहरों, महासभा जैसी संस्थाओं एवं पत्र-पत्रिकाओं को देने में योग दिया। इस काम में काफ़ी समय लग गया।

इस कार्य को निपटाकर मैं जब तक ऊपर गया। तब तक महाराज का निर्जीव शरीर बाहर लाया जा चुका था। काठ के पीठ पर पद्मासन में विराजमान महाराज की भव्य मूर्त्ति के आगे मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महाराज का शरीर उसी रूप में नीचे लाया गया और अलंकृत विमान में रक्खा गया। फिर विमान को उठाकर क्षेत्र-परिक्रमा करायी गई। मैं उस समय ऊपर था। परन्तु ज्यों ही विमान उठा, मेरी आंखों में अचानक आंसू छल छला आये।

विमान परिक्रमा के बाद नीचे पाण्डुक शिला पर रक्खा गया और वहां हजारों शोकाकुल जनता ने दर्शन किये। तदुपरान्त पर्वत पर निर्धारित स्थान पर महाराज का शरीर लाया गया। फिर भट्टारक लक्ष्मीसेन जी व क्षु०पार्श्वकीर्ति जी ने शास्त्रोक्त विधि विधान कराया फिर शरीर चन्दन की चिता पर रक्खा गया। क़मर तक कापूर जैसे गन्ध-द्रव्यों से भर दिया गया और अभिषेक हुआ। बादमें चिता में आग दी गयी और वह देखते देखते धू-धू करके जल उठी। महाराज का तपःपूत शरीर देखते देखते भस्म हो गया। दर्शकों की आंखें डबडबा आयीं।

अचानक मुझे भ्रम हुआ कि आचार्य श्री की चिता धू-धू करके जल रही है। मैं चौंका। देखता क्या हूँ कि प्रभात सूर्य की अरुण किरणें बिखरी मेघ मालाओं को अग्निशिखाओं की भांति प्रज्वलित कर रही हैं। मेरा स्वप्न भंग हुआ। अतीत की स्मृति में सारी रात बिन सोये बिता दी थी मैंने।

१७ अक्तूबर बुधवार को सुबह हम बम्बई पहुँचे। उस समय हलकी बूंदाबांदी हो रही थी सड़कों पर पानी भरा हुआ था जिससे यह विदित हुआ कि रात भर खूब पानी बरसा होगा।

मुनि श्रीनेमिसागरजी से भेंट

स्नान-पूजन के बाद हमने श्री १०८ नेमिसागर जी महाराज के दर्शन किये। वह हीराबाग में ही ठहरे हुए थे। हमें देखते ही उन्होंने आशीर्वाद दिया और बड़े ही स्निग्ध ढंग से बातचीत की। आचार्य महाराज की स्मृति में जैन गज़ट का श्रद्धांजलि विशेषांक निकल रहा है, यह जान कर वह प्रसन्न तो हुए, परन्तु साथ ही यह कहा कि "आचार्य महाराज को श्रद्धांजलि अवश्य अर्पित करो, परन्तु भगवान जो जा रहे हैं, उसे रोकने का भी उपाय कर रहे हो कि नहीं?" उनका संकेत अजैनों के जैन मन्दिरों में बलपूर्वक प्रवेश करने के आन्दोलन की ओर था।

"उस सम्बन्ध में भी हम सतर्क हैं, महाराज। महासभा अपनी सारी शक्ति उस कार्य में लगा ही रही है" मैंने आश्वासन दिया।

सोमसुन्दरम जी के एक प्रश्न के उत्तर में नेमिसागर जी ने कहा कि महाराज की सल्लेखना अपूर्व शान्ति एवं सम्यक्त्व पूर्वक-सम्पन्न हुई है। यह उल्लेखनीय है, क्योंकि सल्लेखना में शरीर बहुत शिथिल हो जाता है। फलतः मन पर उसका प्रभाव पड़ जाता है और व्रती का संकल्प यदि दृढ न हुआ तो मन और वचन पर उसका नियन्त्रण ढीला हो जाता है। वह तरह तरह की बातें करने लगता है। आचार्य श्री की संकल्प शक्ति की महिमा ऐसी थी कि छत्तीस दिन के दीर्घ उपवास के बावजूद अन्तिम घड़ी तक मन, वचन एवं काय पर उनका नियन्त्रण रहा। यहां तक कि आखिरी सांस तक उनकी सुधबुध ज्योंकीत्यों कायम रही यह असाधारण साधना का फल था। इंगिनी-मरण इसी को कहते हैं।

नेमिसागर महाराज से मिलने के बाद हम लोग संघपति गेन्दनमल जी से मिलने उनकी कोठी पर गये। चौपाटी पर समुद्र को निहारती हुई खड़ी उस कोठी में ऊपर

पहुँचे तो संघपति जी की ब्रह्मचारिणी सुपुत्री गुनमाला देवी ने हमारा स्वागत किया और कहा कि सेठजी भोजन कररहे हैं। अतः कोठी के ऊपरी मंजिल पर बने मन्दिर जी में जाकर हमने देव दर्शन किये और दस मिनट में नीचे आये। इतने में सेठ जी भी भोजन करके आ गये थे। उन्होंने सोमसुन्दरम जी के प्रश्नों का विस्तृत उत्तर रात को देने का अश्वासन दिया। मुझसे उन्होंने कहा कि आचार्य श्री की स्मृति को अमर बनाये रखने के लिये उनकी याद में दुष्प्राप्य जैन धर्म ग्रन्थों का प्रकाशन करना उपयुक्त होगा!

संघपति जी से बातचीत

सायंकाल नियत समय पर हम संघपति जी की कोठी पर दुबारा गये। उनकी सुपुत्री भी साथ थीं। संघपति जी ने बड़े ही स्नेह के साथ हमको अपने पास बिठाया और सोमसुन्दरम जी से कहा, "पूछिए, क्या पूछना चाहते हैं?"

"सेठ जी, सल्लेखना के समय आप अन्त तक महाराज के साथ थे। इस सम्बन्ध में आपके प्रत्यक्ष अनुभव का विवरण जानना ही मेरा उद्देश्य है, सोम जी ने कहा!

बस, संघपति जी ने अपने अनुभव धड़ाधड़ सुनाने शुरू कर दिये। एक एक वाक्य में उनकी गुरु भक्ति स्पष्ट झलक रही थी। उनकी सुपुत्री ने भी इसमें उनका साथ दिया। मैं आँखें बन्द किये सुन रहा था। मुझे लगा कि मैं अचानक कुन्थलगिरि पहुँच गया हूँ और आचार्य महाराज के साथ हूँ। संघपति जी की वर्णन शैली का यह जादू था।

"महाराज ने स्वेच्छा से सल्लेखना धारण की थी, या किसी के सुझाने पर?" सोम जी ने पत्रकार-सुलभ निर्दयता के साथ पूछा।

"स्वेच्छा से, इसमें शक भी हो सकता है?" संघपति जी ने उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि मैंने और अन्य कुछ भक्तों ने महाराज से आग्रह किया था कि वह अभी सल्लेखना धारण न करें। परन्तु आचार्य श्री टस से मस नहीं हुए।

गुफा के अन्दर महाराज पीछी पर सिर रखकर लेटे हुए हैं। बारामती के श्री शान्तप्पा वैद्य नाड़ी देखकर कह रहे हैं कि अभी दो-एक घंटों में प्राण चले जायेंगे। भट्टारक लक्ष्मीसेन जी, भट्टारक जिनसेनजी, क्षुल्लक पार्श्वकीर्त्ति जी सिद्धिसागर जी, सुमतिसागर जी आदि महाराज के सिरहाने बैठकर णमोकार मन्त्र जप रहे हैं। गेंदनमल जी प्रार्थनामय हृदय के साथ बैठे कभी घड़ी की ओर कभी आचार्य श्री की ओर देख रहे हैं। इस तरह सुबह हो जाती है। आचार्य श्री जीवित हैं। वैद्य जी हार गये!

सुबह करीब छः बजे हैं। गन्धोदक लेकर पुजारी आते हैं। क्षुल्लक सिद्धिसागर जी आचार्य श्री से कहते हैं "महाराज, गन्धेदाक लाये हैं।" सुनकर आचार्य श्री का म्लान मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठता है। वह इशारे से बताते हैं कि गन्धोदक उनके शरीर पर लगाया जाय। क्षुल्लक सिद्धिसागर जी ऐसा ही करते हैं। अन्त में सिद्धिसागर जी आचार्य श्री का हाथ अपने हाथ में लेकर गन्धोदक आचार्य श्री के हाथ मे ही उनके मस्तक पर लगाते हैं। शिष्य के इस कार्य से आचार्य श्री का मुख अपूर्व शान्ति एवं सन्तुष्टि से छविमान हो उठता है। बस, इसी भक्तिमय हर्षातिरेक में उनके प्राण शरीर का चोला छोड़कर स्वर्ग की ओर चले जाते हैं। घड़ी उस समय ६—५० बजा रही थी।...

इसके बाद भी काफी देरतक संघपति जी सोम जी के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। परन्तु उनमें मेरा मन नहीं लगा। आचार्य श्री की अन्तिम घड़ियों का वह वर्णन लगातार मेरे कानों में गूंज रहा था।

शेडवाल में

बम्बई से अगले दिन सायंकाल रवाना होकर शुक्रवार को प्रातः ४॥ बजे कोल्हापुर पहुँचे जहां भट्टारक लक्ष्मीसेन जी की गद्दी है। वहां जाने पर मालूम हुआ कि भट्टारक जी रायबाग में हैं। फलतः हम उसी समय स्टेशन लौटे और मिरज रवाना हुए। हमारा उद्देश्य वहां से शेडवाल जाने का था जहां आचार्य महाराज के पूज्य बड़े भाई श्री १०८ मुनिवर्द्धमानसागर जी विराजमान थे।

मिरज से करीब १२ बजे हम शेडवाल स्टेशन पर पहुँचे। गांव वहां से दो मील दूर पर था। तांगा करके वहां गये। रास्ते में खेत लहलहा रहे थे। हाल में वर्षा होने के कारण धरती में नमी थी। पत्थर के बने

छोटे छोटे मकानों वाले गांव में पहुँचकर तांगे वाले ने कहा "महाराज इसी मन्दिर में रहते हैं।" हम लोग उतरे और धड़कते हृदयों से श्रद्धापूर्वक मन्दिर में प्रवेश किया।
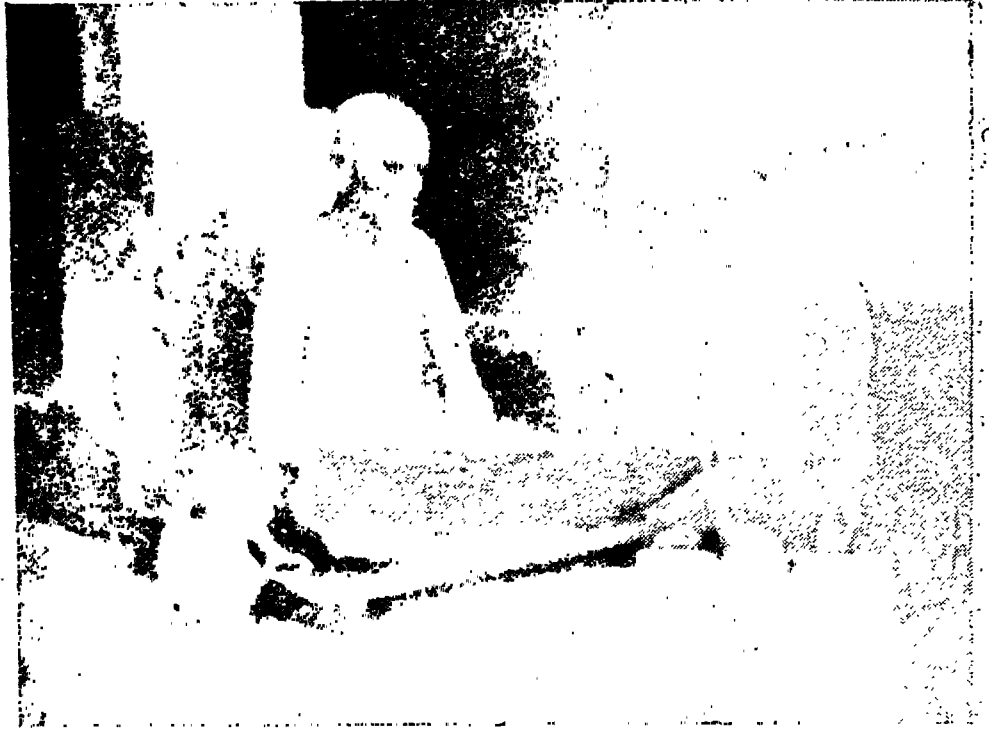
प्रवेश करते ही हमने देखा मन्दिर से सटे हुए एक कमरे से एक वृद्ध मुनि बाहर निकल रहे हैं। तेज धूप उन पर पड़ी तो ऐसा लगा मानों कांस्य मूर्ति की भाँति उनके शरीर से रश्मियां छिटक रही हों। वह साधारण कद के थे। शरीर कृश था, परन्तु दुर्बल नहीं। विश्वास नहीं होता था कि वही आचार्य श्री के बड़े भाई मुनि वर्द्धमानसागर-जी हैं और उनकी आयु चौरानवे से ऊपर हो चुकी है। सोम जी तो बार बार कह रहे थे, आश्चर्य है, आश्चर्य है।

लेखक १६ अक्टूबर को १०८ श्री मुनि वर्धमानसागर जी से वार्तालाप करते हुये

सचमुच आश्चर्य की बात थी। वर्द्धमानसागर जी ६४ वर्ष की आयु में इतने फुर्तीले थे कि युवक भी लज्जित हो जायें। बिना किसी का सहारा लिये चलते-फिरते, उठते, बैठते हैं। ऐनक लगाते अवश्य हैं, पर दृष्टि कमज़ोर नहीं हुई है। आवाज़ में अब भी कमज़ोरी या कम्पन नहीं है।

सोम जी के पूछने पर उन्होंने कन्नड़ भाषा में बताया कि उन्होंने क्षुल्लक-दीक्षा श्री नेमिसागर पुत्तरकर जी से तथा ऐलक व मुनि-दीक्षा स्वयं आचार्य श्री शांतिसागर महाराज से ली थी।

"महाराज की प्रेरणा से ही आप क्षुल्लक बने क्या ?" सोम जी ने पूछा।

"नहीं, बल्कि महाराज मुझसे बार बार कहते थे कि तुम घर-बार का काम सम्भाले रहो। अभी तुम्हें त्यागी नहीं बनना चाहिये। अन्त में मेरे बहुत अनुनय करने पर उन्होंने नेमिसागर जी पुत्तरकर को लिखा कि वह मुझे क्षुल्लक दीक्षा दे दें।"

मुनि वर्द्धमानसागरजी इतने बड़े विद्वान नहीं हैं, परन्तु मुनि व्रत के प्रति उनकी सच्ची आस्था है। वह सदैव आत्मध्यान में प्रसन्न रहते हैं, यही उनकी असाधारण स्वस्थता का रहस्य प्रतीत होता है। आचार्य श्री के प्रति उनकी हार्दिक श्रद्धा है। यद्यपि वह इनके लघुभ्राता ही थे। बार बार उन्होंने कहा, "वैसी तपश्चर्या और किसमें हो सकती है !" उनके इस शिशु-सम सरलता ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

विद्या-निकेतन में

इन अद्भुत यतिवर से आज्ञा लेकर हम लोग शान्तिसागर छात्राश्रम रत्नत्रयपुरी में गये। आचार्य श्री के शिष्य एवं भक्त क्षुल्लक श्री पार्श्वकीर्ति जी इस विद्या-निकेतन का संचालन कर रहे हैं।

पार्श्वकीर्ति जी ने हमसे वार्तालाप किया और हमें वह पर्णकुटी दिखायी जहां आचार्य श्री कभी ठहरे हुए थे। उन्होंने वह चबूतरा भी दिखाया जहां आचार्य महाराज अक्सर बैठा करते थे।

पार्श्वकीर्ति जी बड़े विद्वान हैं और संगठन-कुशल भी।

उनकी कार्यदक्षता की छाप सारे आश्रम पर तथा वहां शिक्षा पाने वाले बच्चों पर स्पष्ट रूप से अंकित है।

सोम जी के प्रश्न करने पर उन्होंने आचार्य श्री के अनेक मधुर संस्मरण सुनाये। उन्होंने और एक बात भी बतायी जो उल्लेखनीय है।

एक संस्मरण

श्री पार्श्वकीर्ति जी ने बताया कि इस वर्ष शेड़वाल में आचार्य श्री का जन्म दिन समारोह पूर्वक मनाया गया। उस समय महाराज के वृहदाकार चित्र की रथ यात्रा करायी गयी। चित्र को गत्ते के बेल बूटेदार तोरण से सजाया गया था और उसमें सैकड़ों अगर बत्तियां लगायी गयी थीं। रथयात्रा थोड़ी ही दूर गयी थी कि अगर बत्तियों के कारण गत्ते में आग लग गयी और तोरण का आधा हिस्सा जल गया। उस दुर्निमित को देखकर पार्श्वकीर्ति जी ने उसी समय कहा था कि "महाराज की अगली जयन्ती उनके जीवित रहते हम शायद मना नहीं पायेंगे।" हुआ भी यही।

इसके बाद पार्श्वकीर्ति जी के सुझाव पर हमने आचार्य महाराज के छोड़े हुए पीछी-कमन्डल, ऐनक, पाठ-ग्रन्थ आदि को जाकर देखा जो मुनि वर्द्धमानसागर जी की कुटिया के पास वाले मन्दिर में रक्खे थे। सोम जी ने उनका फोटो भी उतार लिया।

रायबाग में

शेड़वाल से रेल द्वारा हम रायबाग पहुँचे। भट्टारक लक्ष्मीसेन जी का मठ कस्बे के बाहर था। लोगों से रास्ता पूछते हुए वहां पहुँचे।

हम अन्दर गये तो भट्टारक लक्ष्मीसेन जी ने हमारा स्वागत किया। वह कुन्थलगीरि में ही मुझे जान गये थे, इस कारण पहिचानने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। मैंने सोम जी का परिचय दिया तो लक्ष्मीसेन जी ने पूछा, "आप तमिल भाषी हैं, क्या ?"

सोम जी ने हां कहा तो लक्ष्मीसेन जी ने कहा कि उनकी भी मातृभाषा तामिल ही है। इसके बाद कुछ देर दोनों में तामिल भाषा में बातचीत हुई।

इतने में नवरात्रि-उत्सव में भाग लेने के लिए बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष आकर एकत्र हुए। भट्टारक जी ने आदिनाथपुराण में कुछ अध्याय पढ़कर कनड़ भाषा में उनकी व्याख्या की। करीब ९॥ बजे जब सबलोग चले गये तब भट्टारक जी से बात करने का हमें अवसर मिला।

सोम जी ने महाराज की सल्लेखना के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये जिनका विशुद्ध एवं विद्वत्ता पूर्ण उत्तर लक्ष्मीसेन जी ने दिया। मुख्यतया उन्होंने यह बताया कि महाराज की सल्लेखना पूर्णतया आगमानुकूल हुई है जो उनकी असाधारण तपश्चर्या की ही महिमा थी।

रात वहीं मठ में बिताने के बाद अगले दिन सुबह भोजनादि के बाद हम लक्ष्मीसेन जी से विदा हुए। भट्टारक जी ने जिस स्नेह के साथ हमारी सुविधाओं की व्यवस्था की तथा स्टेशन तक अपनी मठ की मोटर में भिजवाया उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

भट्टारक श्री जिनसेनजी से भेंट

रायबाग से हम रेल द्वारा म्हशाल पहुँचे जहाँ आचार्य श्री के प्रिय शिष्य एवं भक्त भट्टारक जिनसेन जी रहते थे। जिनसेन जी एक सादी कुटिया में रहते हैं जो मन्दिर के पास ही है। महाराज की सल्लेखना के सम्बन्ध में विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देने के बाद उन्होंने बताया कि "कई देव आचार्य महाराज को समय समय पर संकेत दिया करते थे। उन्होंने यह भी कहा कि आचार्य श्री इक्ष्वाकु वंश के थे और तीसरे भव में उनकी मोक्ष-प्राप्ति निश्चित है"। आचार्य श्री के प्रति जिनसेन जी की भक्ति अगाध है।

जिनसेन जी से विदा होकर हम मिरज लौटे और वहां भट्टारक देवसागर जी से मिले तथा वार्तालाप करने के बाद बारसी रवाना हुए।

बारसी में भूमकर जी के यहां सामान छोड़कर हम बस द्वारा कुन्थलगिरि रवाना हुए।

फिर तपोभूमि में

तपो भूमि कुन्थलगीरि के जब दूर से दर्शन हुये तभी मेरा कंठ रुध आया। कैसा अलौकिक क्षेत्र है यह जहां से दशभूषण कुलभूषण महानतपस्वी मुनि मुक्त हुए और आंखों के सामने तपोनिधि आचार्य शान्तिसागर महाराज ने इंगिनी मरण द्वारा स्वर्गारोहण किया। यह मेरा पुण्योदय है कि इस पवित्र क्षेत्र के पुनः दर्शन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने कर जोड़कर एवं नतमस्तक होकर उस क्षेत्र को नमस्कार किया।

क्षेत्र कमेटी के व्यवस्थापक श्री वीडकर जी ने हमारा स्वागत किया। सोमजी ने उनसे सल्लेखना के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये और उन्होंने उनका विस्तृत उत्तर दिया। सल्लेखना से पहले के भी अनेकों संस्मरण उन्होंने हमें सुनाये।

तदनन्तर वीडकरजी ने सोम जी को क्षेत्र के विभिन्न स्थानों के दर्शन कराये जिनका आचार्य महाराज की सल्लेखना के साथ सम्बन्ध था। नीचे वाला कमरा दिखाया जहां महाराज ने १४ अगस्त को नियम सल्लेखना की तथा १७ को यम सल्लेखना की घोषणा की थी; उस मन्दिर को दिखाया जहां सल्लेखना से पूर्व महाराज अक्सर जाकर बैठते थे; ऊपर की वह गुफ़ा दिखाई जहाँ यम-सल्लेखना के बाद आचार्य श्री जाकर रहने लगे थे और जहां उन्होंने शरीर त्यागा था; वह स्थान दिखाया जहां निमित्त मंच पर बैठकर आचार्य श्री हजारों भक्तों को दर्शन दिया करते थे। ऊपर देशभूषण-कुलभूषण भगवान का मन्दिर जाकर देखा और वहां प्राचीन काल से पूजे जाने वाले चरण-चिन्ह, तथा आधुनिक काल की सुन्दर मूर्त्तियां देखीं। तथा वह चबूतरा दिखाया जहां आचार्य श्री अक्सर बैठकर आत्मध्यान किया करते थे। अन्त में वह स्थान भी दिखाया जहां आचार्य महाराज के पावन शरीर की दाह-क्रिया की गयी थी। उस भस्म-राशि को देखकर मेरा जी भर आया। तथा भक्तिपूर्ण हृदय से नमस्कार कर श्रीफल चढ़ाया। सोमजी ने इन सब स्थानों के चित्र भी खींच लिये। साथ ही मन्दिर कमेटी द्वारा संचालित गुरुकुल तथा मन्दिर के पास वाली वह बावड़ी जिसमें पाइप लगा कर सल्लेखना के समय दर्शनार्थी भीड़ को जल सप्लाई किया गया था, हमने जाकर देखी। वीडकर जी ने जिस उत्साह एवं श्रद्धा के साथ हमें सब दर्शनीय स्थान दिखाये, सब जानने योग्य बातें बतायीं और हमारा सत्कार किया। उसे हम भूल नहीं सकते।

इस अवसर पर सोम जी ने एक बात कही जिसका उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। उन्होंने कहा इस प्रसिद्ध क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए निवास स्थान की व्यवस्था इससे और अच्छी होनी चाहिए।

वीडकर जी ने कहा कि पक्के मकान बनाने की योजना है और वह शीघ्र कार्यान्वित होगी।

शोलापुर में

कुन्थलगिरि से सायंकाल बार्सी लौटे और अगले दिन शोलापुर होते हुए दिल्ली। शोलापुर में महाराज के जीवन सम्बन्धी अनेक चित्र तथा सल्लेखना सम्बन्धी तथ्य संकलित करने में मेरे माननीय मित्र एवं विद्वान पं० वर्द्धमान जी शास्त्री ने हमारी बड़ी सहायता की। सेठ रावजी बापूचन्द पंढारकर व सेठ रावजी देवचन्द जी निंबरगीकर आदि ने भी हमें अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये और प्रोत्साहन भी।

इस प्रकार यह तथ्यान्वेषण यात्रा जिसमें हमने करीब तीन हज़ार मील का सफ़र किया था, पूरी हुई।

इस यात्रा में हमें अनेक तथ्य ज्ञात हुए अनेक नये अनुभव प्राप्त हुये उनमें सबसे बड़ा और स्थायी सत्य यह था कि आचार्य श्री दिवंगत होकर भी हमारे बीच में स्थायी रूप से विराजमान हैं। जहाँ कहीं हम गये, हमने हिन्दुओं जैनों सबके मुंह से उनकी प्रशंसा सुनी। उनकी अमिट स्मृति सर्वत्र अंकित पायी। उनकी प्रेरणा दायिनी वाणी को सर्वत्र गुंजरित सुना। वह अमर हैं। वह सदा हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करते रहेंगे। कल भी सैकड़ों वर्ष बाद भी। यह मेरा हार्दिक अनुभव है। ध्रुव सत्य है।

अन्त में आचार्यश्री के चरणों में विनम्र श्रद्धांजली अर्पित करता हूं।

आचार्य शांतिसागर महाराज से मेरी भेंट

(लेखक:—प्रोफेसर लोथर वेण्डल (विड़ला कालेज, पिलानी)

गोमटेश्वर भगवान की मूर्ति के महामस्तकाभिषेक समारोह में भाग लेने के लिये सन ५३ में जब मैं जा रहा था, तभी मैंने महान सन्त शांतिसागर जी के सम्बन्ध में पहली वार सुना। लोगों ने बताया कि वह इस काल में जैन-धर्म के एक महान स्तम्भ हैं।

एक दृष्टि से मेरी श्रवणबेलगोल-यात्रा आचार्य शांतिसागर जी से मेरी भेंट की पूर्वायोजना थी। ऐसा प्रतीत होता है कि महती कला, महापुरुषों से भेंट करने की मनुष्य को प्रेरणा देती है। वाहुवलि जी की मूर्ति के दर्शन तथा महापुरुष शांतिसागर जी के दर्शन जो कि मैंने शोलापुर के निकट स्थित वार्सी में किये थे, परस्पर आवद्ध थे।

श्रवणबेलगोल में भगवान वाहुवली की मूर्ति के मैंने दो वार दर्शन किये थे—एक वार मध्याह्न को और फिर रात में। मध्याह्न के समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह मूर्ति, चारों ओर दिगन्ततक व्याप्त, लहलहाती जीवन एवं सृजन की आभा छिटकाती हुई सौंदर्यमयी हरियाली से ओतप्रोत हो। ऊंची चट्टान के सिंहासन पर आरूढ़ उस मूर्ति का गाम्भीर्य अतुलनीय था।

रात्रि के समय, जो इस गांभीर्य के गहनतम स्रोत को प्रगट करती थी, वह मूर्ति तारिकाच्छादित गगन-मण्डल से ओतप्रोत प्रतीत हुई। यही नहीं, ऐसा लगता था कि वह समस्त विश्व से ओतप्रोत हो और विश्व-मानव की महान कल्पना का स्थूल प्रतीक सी खड़ी हो—उसी विश्व-मानव की कल्पना का, जिसे प्रो० हैनरिक जिम्मर ने भारतीय दर्शन पर लिखित अपने ग्रन्थ में सौंदर्य एवं सौष्ठवमय शैली में व्यक्त किया है।

> जर्मनी के निवासी प्रो०लोथर-वेण्डल जैन दर्शन एवं धर्म के भक्त अनुयायी हैं। इन वहुभाषा-विज्ञ विद्वान का अध्ययन गहन है और मनन विशाल। आचार्य श्री के प्रति प्रो० वेण्डल की श्रद्धा हार्दिक है। इस संक्षिप्त, किन्तु सारगर्भित लेख में प्रो० वेण्डल ने आचार्यश्री के वर्णन के साथ आत्मा के सीमित एवं असीम अनन्त स्वरूप का प्रतीकात्मक वर्णन किया है।

ये दोनों ही विशेषतायें हम शांतिसागर जी में पाते हैं और मैं स्वयं यह देखकर आश्चर्य में आ गया था। उनकी मुखाकृति, हावभाव तथा आसपास के वातावरण पर उनके प्रभाव में किसी वृद्ध राजा की सी शान और गाम्भीर्य है। साथ ही दर्शक को यह भी अनुभव होता था कि यह राजसी शान, जो राजवंश में जन्म लेने या राज्याधिपति होने के कारण उत्पन्न नहीं थी, केवल समस्त पार्थिव द्रव्यों के प्रति अनासक्ति तथा लौकिक जीवन की संकीर्णता से ऊपर उठी हुई उच्चाशयपूर्ण जीवन-चर्या के परिणाम स्वरूप उत्पन्न थी। वह तो वास्तव में विश्व-मानव थे, जिनका इस मर्त्यलोक में जीवन एक संक्षिप्त विष्कम्भक-मात्र था।

मुझे अब भी वे शब्द याद है जिनमें उन्होंने अहिंसा के तात्पर्य की व्याख्या की थी। उन्होंने कहाथा, "अहिंसा आत्मा की विशुद्धि ही है।" अहिंसा सम्बन्धी उनकी धारणा के प्रतीक स्वरूप ये शब्द स्थायी रहेंगे। महाव्रतों का कठोर पालन करने वाले ये महाव्रती इस सत्य को सदैव ध्यान में रखते हैं कि ये सव व्रत-नियम अपने आप में साध्य नहीं हैं, वल्कि केवलआत्मदर्शन के साधन-मात्र हैं।

शान्तिसागर जी और श्रवण-वेलगोल की मूर्ति में एक और वात में भी साम्य है। मध्यान्ह के समयजव मैंने वाहुवली की विशालकाय मूर्ति के दर्शन किये थे, तव मैंने देखा कि उसकी कोई छाया धरती पर नहीं पड़ती। पहले मैंने सोचा था कि यह तो आश्चर्यजनक शिल्प-कुशलता का प्रदर्शन मात्र है। वाद में मुझे यह भान हुआ कि यह केवल कला-कुशलता ही नहीं अपितु कुछ और भी है यह छायाहीन स्थिति इस वात का प्रतीक है कि वाहुवली विशुद्ध सूक्ष्म, ज्योति के धनी हैं, इसी कारण उनकी छाया नहीं पड़ती।

शांतिसागरजी भी दर्शकों के मत में ऐसी ही धारणा उत्पन्न करते हैं। वह एक आत्मिक ज्योति छिटका रहे थे, जो कोई छाया नहीं डालती। हमारे इस काल के जैन-साधुओं में वह अग्रगण्य थे।

शांतिसागरजी की सल्लेखना हमें एक महत्वपूर्ण शिक्षा देती है। दो विश्व-युद्धों के अनुभव के कारण मानव समाज मृत्यु के नैकट्य का आदी हो चुका है। परन्तु हमें यह सत्य अभी सीखना है कि जीवन सदैव मरण एवं हताश पर विजयी होता है। विख्यात सन्त शांतिसागर जी का स्वर्गारोहण यह आशापूर्ण शिक्षा हमें देता है।

विरोधी भी जिनके भक्त बन जाते थे

ले० पं० राजकुमार जी शास्त्री नवाई स० संपादक अहिंसा व अहिंसा वाणी—

प्रातः स्मरणीय—विश्ववन्द्य महान साधक व आदर्श तपस्वी श्री आचार्य शान्तिसागर महाराज का जिन्होंने कुछ समय के लिये भी सानिध्य किया है उन पर उनके शान्ति व सौम्य मुद्रा का अमिट प्रभाव पड़ा है। उनके चहरे से एक अपूर्व शान्ति टपकती थी कि उनका कोई कितना भी विरोधी क्यों न हो व रहा हो तो भी उनके चरण मूलों के समीप पहुँच कर उनका विरोध करना सम्भव नहीं रहता था। यों तो आधुनिक युग के सभी दिगम्बर जैन आचार्यों में कुछ न कुछ विशेषता है ही किन्तु जैसे आचार्य शान्तिसागर महाराज में शान्ति सौंदर्य व कल्याण का अपूर्व समन्वय पाया गया था। वैसा सर्वत्र सुलभ नहीं है।

मुझे मेरे एक अभिन्न मित्र श्री पं० ताराचन्द जी चौवे हैडमास्टर एक दिन सुना रहे थे कि जब आपके आचार्य श्री हमारे गांव वसवा (जैपुर) में पधारे थे। तब हम सभी मित्रों ने (जिसमें वहां के तहसीलदार थानेदार आदि भी शामिल थे) यह निश्चय किया कि आज जैनों के सर्वोच्च गुरु के पास चला जावे और उनसे कुछ ऐसे प्रश्न किये जावे जिनका वे उत्तर न दे सकें। या उत्तर दें भी तो भी उन्हें परेशान किया जावे हम लोग नग्नता के विषय को प्रमुखता लेकर उनके पास पहुँचे थे। हमारा एक मात्र उद्देश्य उनकी मखौल उड़ाना था। हम पूरी तैयारी करने के बाद जब उनके पास पहुँचे तो हम उनकी शान्त मुद्रा देख बड़े असमंजस में पड़ गये कुछ भी न बोल सके उनकी शान्तमुद्रा के प्रभाव में कुछ ऐसे प्रवाभित हुये, कि प्रश्नोत्तर करना तो दूर रहा किन्तु हम अपने आपको ही भूल गये। और सोचने लगे कि साधु हो तो ऐसे हों। कुछ इस प्रकार का असर हम सभी लोगों पर पड़ा कि हम कह नहीं सकते बहुत देर तक ऐसे ही बैठे रहे इक टक उनकी सौम्य मुद्रा का अमृत रस आस्वादन कर नमस्कार कर घर लौट आये। यह था उनकी तपस्या का अपरिमित व अमिट प्रभाव। शास्त्रों में हमने पढ़ा हैं कि वज्रजंघ राजा जब आखेट (शिकार) को गये तव उसी जंगल में एक महान जन साधु तप तप रहे थे। उनके पुण्यातिशय के कारण उस रोज उसे कोई शिकार नहीं मिली इस कारण वह बड़ा क्रोधित व खेद-खिन्न था सामने मुनिराज को देखकर सारा प्रभाव उन्हीं का समझा उन्हें मारने का विचार कर मुनि महाराज के समीप आया। श्री गुरु की वीतराग छवि को देख मारना तो दूर उनके चरणों में गिर पड़ा, और अपने अपराधों की कटु आलोचना की और वह दृढ़ श्रद्धानी श्रावक बनकर आदर्श जैन बन गया। जिसने अपने सम्यक्त्व की रक्षा के लिये जीवन को भी उपेक्षित कर दिया यह है उन महान साधकों के सानिध्य का सुफल।

भविष्य द्रष्टा

एक बार आचार्य श्री की प्रशिष्या ब्र० कस्तूरी बाई जो इस समय मेरे पास अध्ययन करने ठहरी हुई हैं कह रही थीं कि आचार्य श्री संसघ दक्षिण की ओर जब विहार कर रहे थे; तो एक गांव लाहौरी आमेरी में ठहरे हम लोग वहाँ एक दिन पहिले पहुंच गये थे। आहार चर्या कर सामायिक की, और बिना किसी से कुछ कहे कमंडल पीछी उठाकर चल दिये। हम सभी संघस्थ व्रती अव्रती श्रावकों ने बहुत कुछ कहा कि आप काफी थके हुये है। आज आप यही ठहरें दूर दूर से दर्शनार्थी भक्त आये हुये हैं उनकी भी ऐसी ही इच्छा है। मगर आचार्य महाराज ने किसी की नहीं सुनी, उठे और चल दिये। विवश था सारा संघ; अनिच्छा से थोड़ी देर पीछे ही सारा संघ खाना हो गया दैव दुर्विपाक से उसी सायंकाल को वहां इस तरह की घोर वर्षा हुई कि सारा गांव जल मग्न हो गया। पास की नदी भी उबल पड़ी और सारे गांव को बहा ले गई। यह थी उस लोकोत्तर महात्मा की अन्तर्दृष्टि जिसे सर्व साधारण नहीं समझ सके। महात्माओं की कृतियां बड़ी अपूर्व होती हैं। आचार्य श्री अगणित अपूर्वताओं के आगार थे।

डाक्टर निरुत्तर

आप सांगानेर में पधारे हुये थे। एक डाक्टरी विद्यार्थी आपके पास बिना नमस्कार किये बैठ गया। महाराज ने

धन्य तुम चारित्र-चूड़ामणि !

लेखक—श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि'—रामपुर

मृत्यु तुमको छल न पाई विषधरों द्वारा डरा कर !
धन्य तुम, चारित्र-चूड़ा मणि तपोनिधि शांतिसागर !

देह को परमार्थ के पथ में सहायक जब न पाया !
मृत्यु को जीवन महोत्सव का सफल साधन बनाया !

सृष्टि में उत्सर्ग के दृष्टान्त मिलते हर कहीं हैं !
किन्तु 'यम सल्लेखना' प्रत्येक के वश की नहीं है !

मुक्ति पथ प्रतिक्षण निमंत्रित कर रहा पलकें बिछाये !
क्यों न तन के पींजरे में बंद शुद्धात्मा अघाये !

प्राण ममता की विषमता आज आसन से हिली है !
आज फिर नूतन दिशा युग की अमरता को मिली है !

दीप जो तुमने जलाया वह सदा जलता रहेगा !
मोक्ष-यात्री अब सहज इस पंथ पर चलता रहेगा !

ज्ञान की लहरें जहाँ अन्तः करण में मौज मारें !
ओस कण की ओर फिर गम्भीर सागर क्यों निहारें !

यम-परीक्षा झेल सांगो पांग मृत्युञ्जय कहाये !
यश तुम्हें नतशीश होकर क्यों न श्रद्धाञ्जली चढ़ाये !

मृत्यु के परिहास का अभिशाप अपने आप भोगा !
विश्व का इतिहास युग-युग नाम लेकर धन्य होगा !

❀ ❀

कहा तो कुछ नहीं केवल मुस्करा दिये। छात्र ने कटाक्ष करते हुये कहा कि महाराज मैंने सुना है कि आप लोग (जैन साधु) दंतौन नहीं करते। फिर भला आप के दांत कैसे साफ होते होंगे। आचार्य श्री प्रसन्न मुद्रा में बोले तुम डाक्टरी पढ़ते हो और इतना भी नहीं समझ सके कि आंतों की खराबी से दांत खराब होते हैं। जो अनेक प्रकार के मंजन दंतौन रोजाना करते हैं फिर भला उनके दांतों को बीमारी कैसे हो जाती है। जैन साधु गर्म पानी पीते हैं। परिमित भोजन करते हैं। सो भी २४ घंटे में एकबार कभी कभी तो कई दिन बाद करते हैं इसलिये उनकी आंतें सदा साफ रहती हैं। यही कारण है कि जैन साधुओं को दांतों की बीमारी प्रायः कम होती है। वैसे असाताकर्म तो सभी के उदय में आता है। मुझ से बोले पंडित जी आपका वैद्यक क्या कहता है। मैंने कहा पूज्यपाद आयुर्वेद का भी अक्षरशः यही मत है। वह विद्यार्थी शर्मिंदा होकर चलता बना मैंने कहा प्रियबन्धु आप आचार्य श्री के उत्तर से संतुष्ट हुये या नहीं तब कहता गया कि महाराज बहुत कुछ ठीक कहते हैं। मैंने देखा कि महाराज की सभी विषयों में अप्रतिहत गति है। सर्व तो मुखी प्रतिभा इसी को कहते हैं। जिसकी आचार्य श्री में परिपूर्णता थी।

★ अनथक चरण ★

आचार्य महाराज के वे अनथक चरण जिन्होंने भारतभूमि के रज-रज को अपने स्पर्श से पवित्र किया था। और धर्म प्रभावना जिनकी चिर संगिनी बनी हुई थी।

पाद पद्म युगल

दिव्य चिन्हों से अंकित योगीन्द्र के पाद - कमल ।

पावन सामग्री
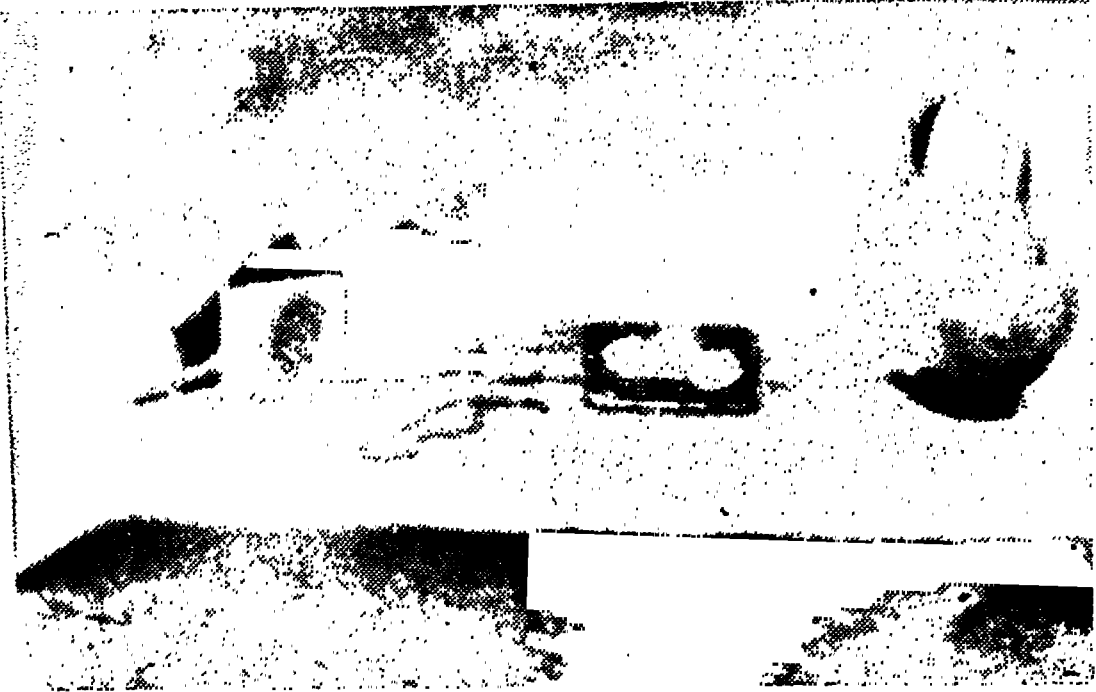
आचार्य श्री के उपयोग करने से पावन हुए पीछी, कमण्डलु, शास्त्र, जपमाला और ऐनक जो अब शेडवाल के मन्दिर जी में हैं।
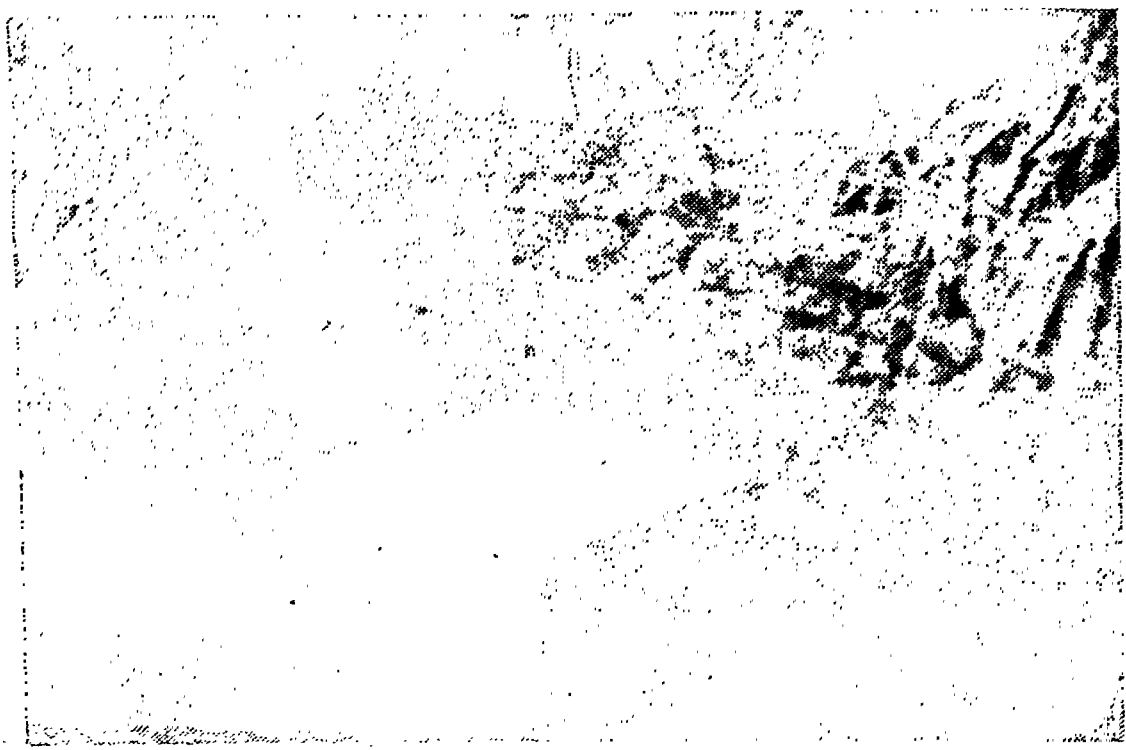
कुन्थलगिरि के बगीचे में निर्मित वह आसन, जिस पर आचार्य श्री अक्सर बैठकर ध्यान किया करते थे।

सन्त के आराध्य

कुन्थलगिरि के मुख्य मंदिर में देशभूषण - कुलभूषण भगवान की शुभ पाषाण-प्रतिमायें जिनकी आचार्य श्री अन्त तक आराधना किया करते थे।

भव्य मन्दिर

कुन्थलगिरि के निचले भाग में निर्मित महावीर भगवान का भव्य मन्दिर सल्लेखना से पूर्व आचार्य श्री अकसर यहाँ बैठकर ध्यान किया करते थे।

ऐतिहासिक तपोभूमि

इतिहास— विख्यात तपो भूमि कुन्थलगिरि का एक मनोरम दृश्य सम्पूर्ण सिद्धक्षेत्र इस चित्र में दृष्टिगत हो रहा है।

पुण्य दर्शन

कुन्थलगिरि के मुख्य मंदिर का वह अगला भाग जहाँ निर्मित मंचपर से आचार्य श्री दर्शन दिया करते थे।
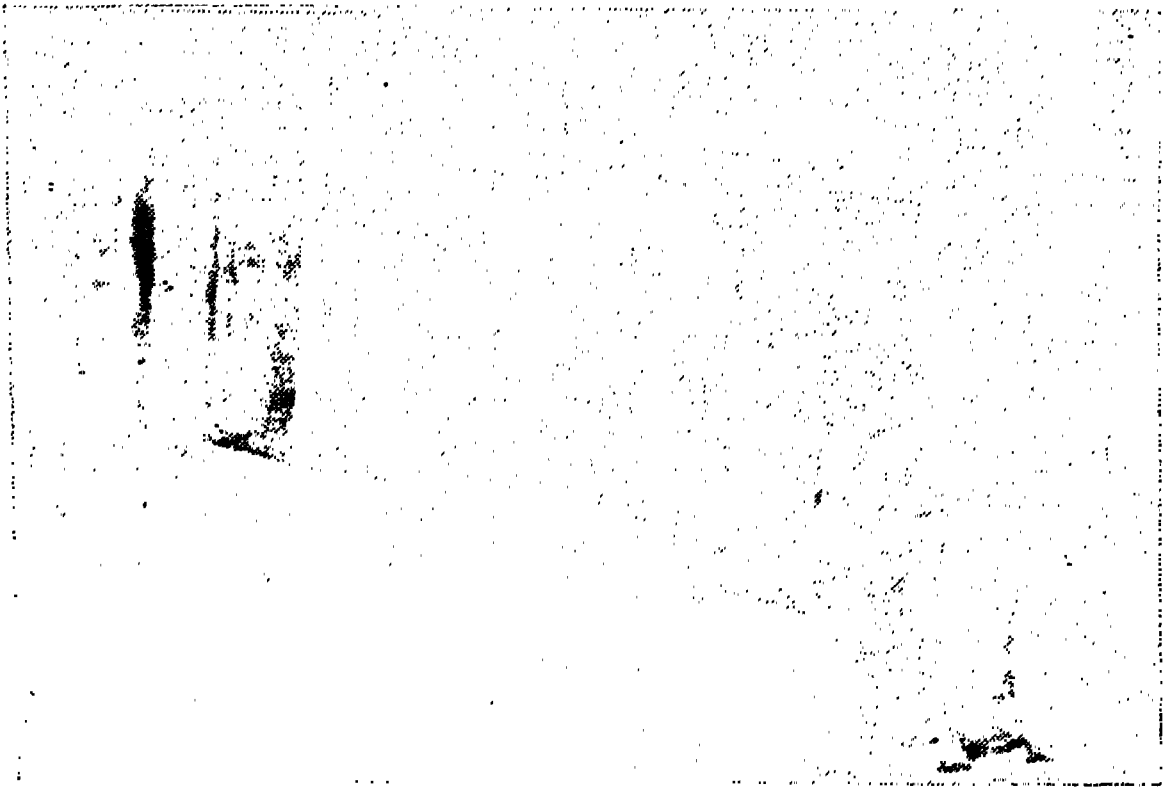
कुन्थलगिरि पहाड़ पर निर्मित एक गुफा जहाँ महाराज ने अन्तिम दिन बिताये थे।

महान सन्त की चिता भूमि पर भा० दि० जैन महासभा के मैनेजर
श्री पं० शिखरचन्द जी जब दुबारा कुन्थलगिरि २३-१०-५५ को गये तब श्रीफल चढाते हुऐ।

कुन्थलगिरि की वाटिका में बनी " गुफा " जहाँ पहले आचार्यश्री रहा करते थे।

सल्लेखना के समय कुन्थलगिरि में उपस्थित त्यागी गण।

सल्लेखना के अवसर पर जो आर्यिकायें, क्षुल्लिकायें कुन्थलगिरि में उपस्थित थीं उनका चित्र।

"त्यागी" त्रय

सल्लेखना के समय उपस्थित तीन विख्यात त्यागी गण। (बायें से दायें)
मुनि पिहितास्रवजी, भट्टारक जिनसेनजी और भट्टारक लक्ष्मीसेन जी।

भक्तजन परिचर्यामें

संघपति श्री सेठ गेंदनमलजी
बम्बई।

श्री सेठ रावजी
देवचन्द जी शोलापुर।

गुरुभक्त सेठ चन्दूलाल जी सराफ
बारामती।

★ परिचर्या में भक्तजन ★

श्री ब्र० जीवराज गौतमचन्द जी
सोलापुर।
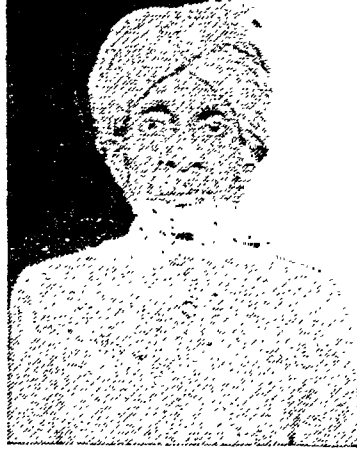
श्री सेठ रावजी बापूचन्द जी
सोलापुर।

सेठ मानिकचन्द वीरचन्द
मंत्री क्षेत्र कमेटी सोलापुर।
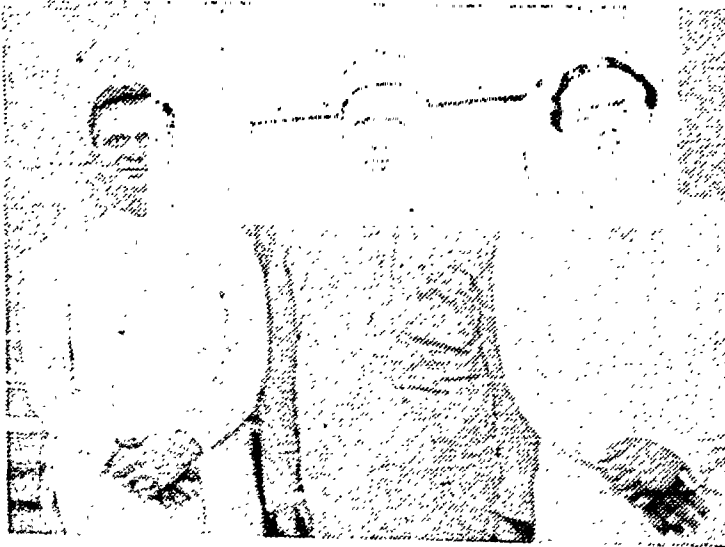
भौमकर बंधु ब्रय बार्सी
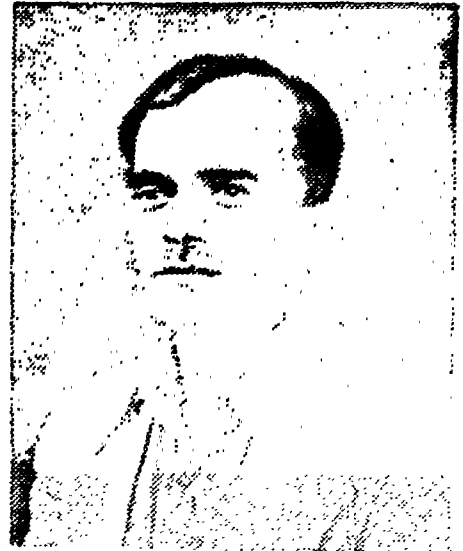
गो० वा० चौडकर व्य० कुन्थलगिरि
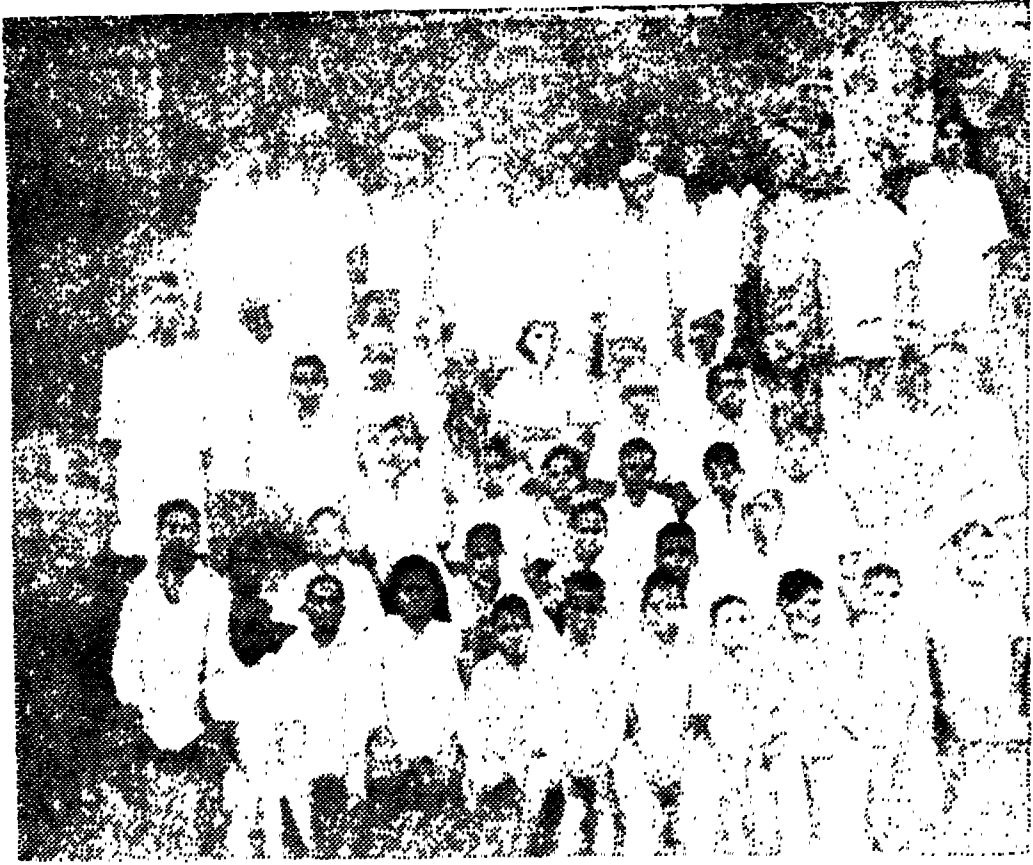
कुन्थलगिरि छात्राश्रम के छात्र एवं शिक्षक

★ पवित्र जलाशय ★
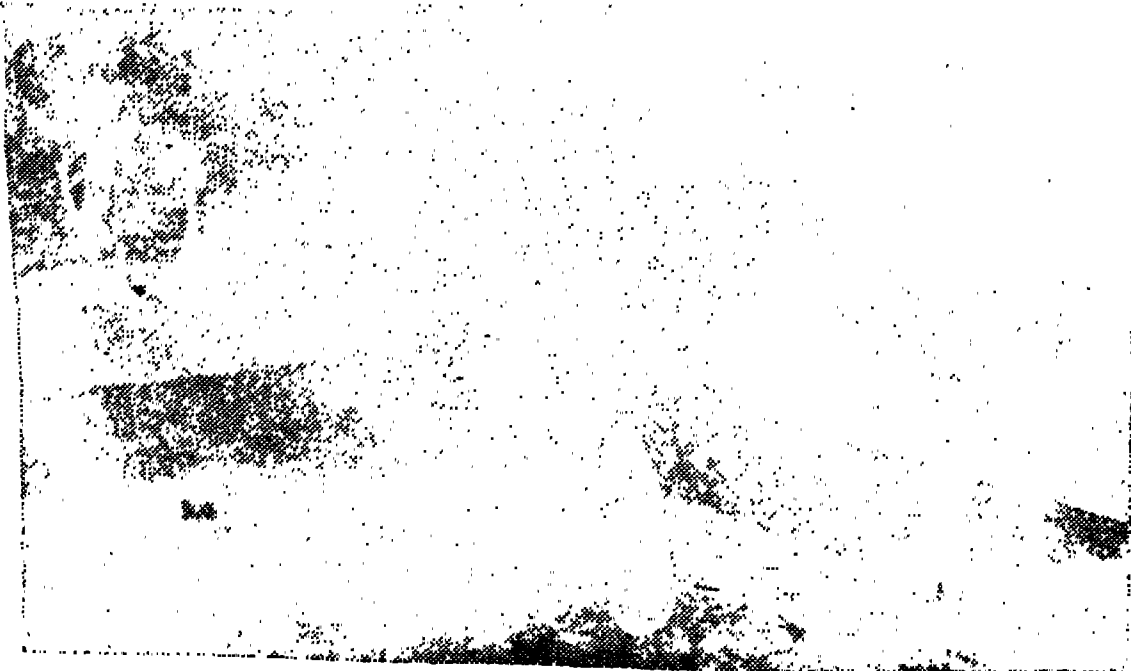
कुन्थलगिरि क्षेत्र का वह जलाशय जहाँ से पीने और नहाने-धोने के लिये जल सप्लाई किया जाता है।

साधना स्थल

कोन्नूर की वह गुफा
जहाँ आचार्य श्री आत्म-ध्यान किया करते थे।
सन् १९२३ में सर्प का उपसर्ग यहीं हुआ था।

★ प्रिय शिष्य ★

कई वर्षों से आचार्य श्री को
सेवा सुश्रूषा करने वाले क्षुल्लक
श्री सिद्धिसागर जी। सल्लेखना के
समय आचार्य श्री के समक्ष दीक्षा
लेने का परम सौभाग्य इनको
प्राप्त हुआ था।

पांच महाव्रत
अहिंसा
सत्य
अचौर्य
ब्रह्मचर्य
अपरिग्रह
पांच समिति
ईर्या
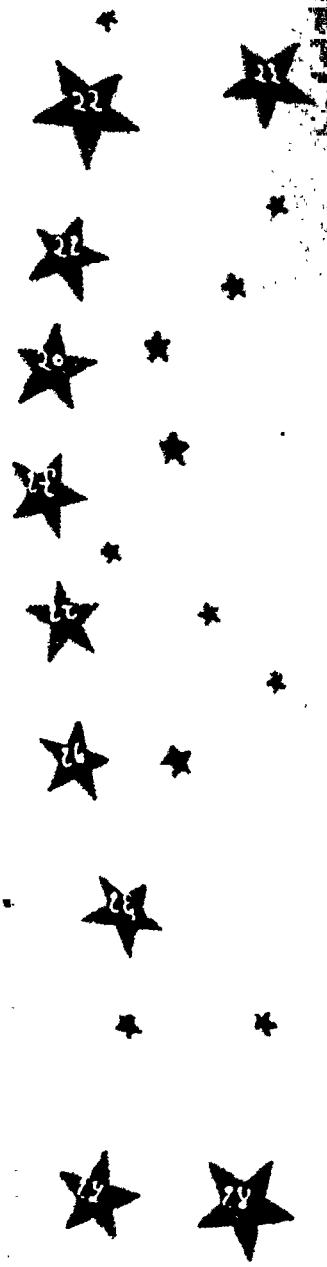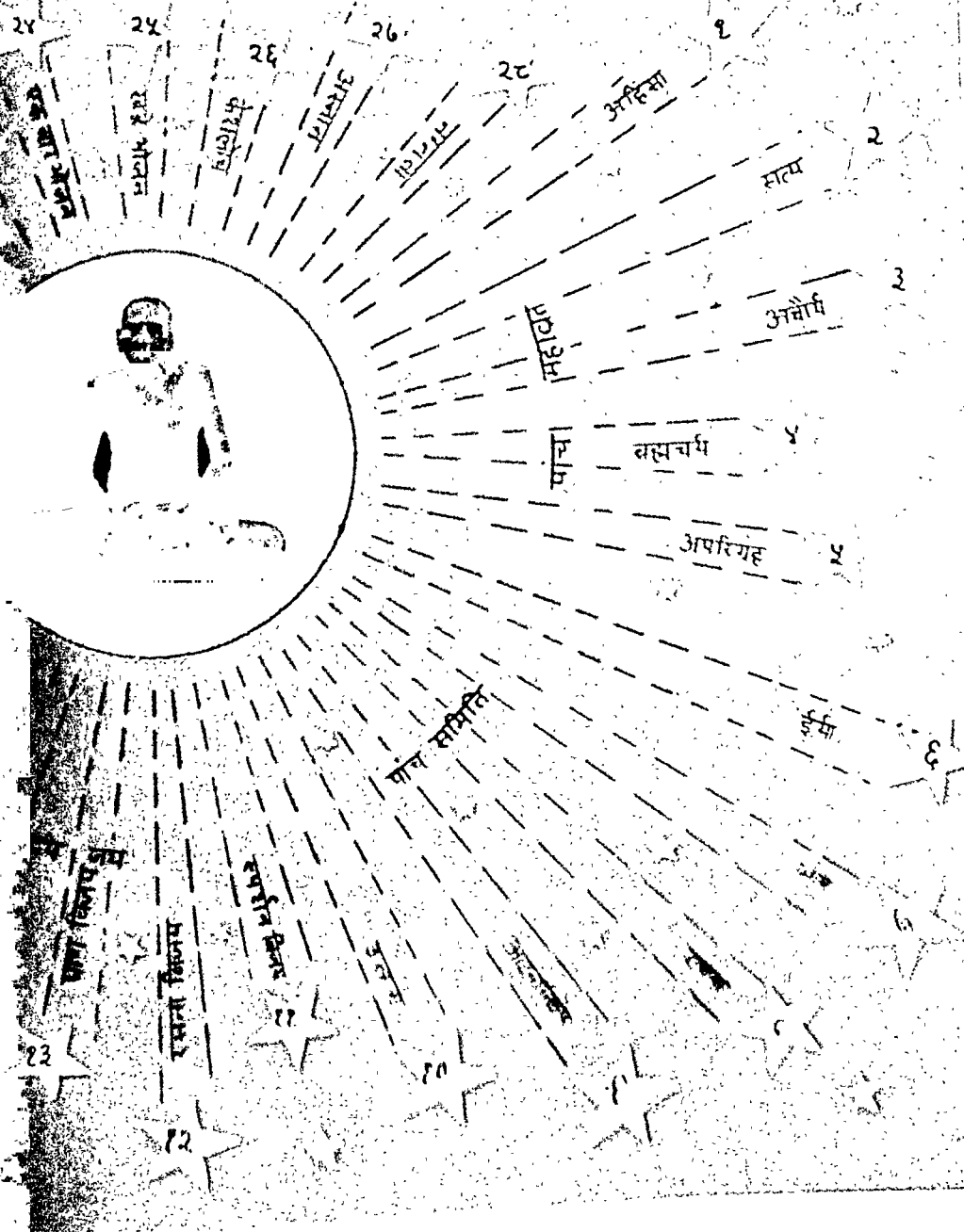
आदर्श आचार्य प्रवर

लेखक—श्री पं० बलभद्र जी जैन मथुरा

दिगम्बर जैन समाज में आचार्य पद का विशेष महत्व होता है। साधारण यतियों और आचार्य में अन्तर बहुत होता है, क्योंकि आचार्य के दायित्व विशेष होते हैं। विद्वान लेखक ने इस लेख में इन दायित्वों की इतिहास की पार्श्व भूमि में विशद चर्चा की है और यह दिखाया है कि शांतिसागर जी महाराज इस प्राचीन परम्परा को निभाने वाले आदर्श आचार्य थे।

आचार्य शान्तिसागर जी जैनाचार्य-परम्परा की एक सुदृढ़ कड़ी थे। उन्होंने अपने जीवन में उन सभी दायित्वों का सफलता पूर्वक निर्वाह किया, जो एक सफल आचार्य के योग्य कहे जा सकते हैं। उन दायित्वों के सम्बन्ध में हमारे सामने एक स्पष्ट चित्र तब तक नहीं आसकता, जब तक हम उस संघ-व्यवस्था के बारे में पूरी तरह न जान लें, जो अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने आयोजित की थी।

भ० महावीर की वाणी लोक कल्याण के लिये अवतरित हुई थी। उनकी यह वाणी ही जैन शासन की पुनः स्थापना कहलाई। इसी जैन शासन को सदा काल तक बनाये रखने की एक समस्या थी। जिससे लोक कल्याण सदा ही प्रशस्त होता रहे। उनकी दिव्य दृष्टि आगामी सुदूर अनन्त भविष्य को देखने में समर्थ थी। उन्होंने देखा—धर्म स्वयं में लंगड़ा है। उसे चलाने वाले धार्मिक हैं। इन धार्मिक जनों का—चाहे वे श्रावक हों, श्राविका हों, साधु हों या आर्यिक हों—एक सुदृढ़ संगठन होना चाहिये, ऐसा संगठन, जो अभेद्य हो, किन्तु जिस संगठन में सभी परम्पराश्रयी हों, सभी परस्परावलम्बी हों। किन्तु फिर भी जिस में पूर्ण अनुशासन, नियमबद्धता और प्रतिष्ठा हो।

फलतः एक सुदृढ़ और विशाल जैन संघ का उदय हुआ। उस जैन संघ का सम्पूर्ण आधार जनतन्त्रीय था। संघ अपने नायक का चुनाव विदा होने वाले नायक की सहमति से करता था। यह नायक सम्पूर्ण संघ का आचार्य कहलाता था। सम्पूर्ण संघ और जैन शासन के हितों के संरक्षण का सारा दायित्व आचार्य पर होता था। जैनाचार और विचार की अविच्छिन्न परम्परा चलती रहे, इसके लिये वह सदा सतर्क रहता था। जैन शासन पर होने वाले सभी अत्याचारों से वह बचाव का उपाय सोचता था। जो है, उसकी रक्षा तथा आगे उसे सतत बढ़ाने की उसे चिन्ता रहती थी। सब अपने मतभेदों और गुप्त' ज्ञात, अज्ञात पापों का निवेदन उसके समक्ष निःसंकोच कर सकते थे और वह वात्सल्य से भीगे मन से व्यक्ति के कल्याण और परम्परा की पवित्रता को सामने रखकर समुचित प्रायश्चित देकर उन्हें कल्याण मार्ग में उत्साहित करता था।

भ० महावीर के समकालीन म० बुद्ध ने जैन-संघ-व्यवस्था से प्रभावित होकर भिक्षु-संघ की स्थापना की। किन्तु जबकि जैन-संघ गृहस्थ और मुनि दोनों का एक सुदृढ़ संगठन था, तब म० बुद्ध का यह भिक्षु-संघ केवल बौद्ध भिक्षुओं का ही संगठन था। दूसरे विशाल जैन संघ अत्यन्त अनुशासन बद्ध था। आचार और विचार शुद्धि ही उसका सबसे बड़ा सम्बल था, एक आचार्य का वात्सल्यमय किन्तु कठोर शासन सम्पूर्ण जैन संघ पर धार्मिक और सामाजिक मामलों में लागू होता था। जबकि दूसरी ओर बौद्ध संघ में इस प्रकार का शासन और अनुशासन दोनों ही नहीं थे। स्वयं बुद्ध के समय में भिक्षु-संघ में आचारहीनता बढ़ने लगी थी, भिक्षु-संघ का संगठन भी ढीला पड़

गया था। इससे वृद्ध अपने जीवन के अन्तिम दिनों में काफी चिन्तित रहने लगे थे।

बौद्धों की तरह हिन्दुओं में भी संघ-व्यवस्था सुदृढ़ नहीं रही। यद्यपि हिन्दुओं की वर्णाश्रम व्यवस्था ने वैदिक धर्म को व्यावहारिक बनाने में अधिक सहायता दी है। किन्तु यह व्यक्तिगत जीवन के दृष्टिकोण से ही सत्य है। सामूहिक और सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से इस व्यवस्था ने संघबद्ध और संगठित होने में कोई विशेष सहयोग नहीं दिया। संभवतः इसका मौलिक कारण यह रहा है कि जैन धर्म की तरह हिन्दू-धर्म को जनतन्त्र पद्धति में कम विश्वास रहा है, उसका झुकाव एकतन्त्र और राजतन्त्र की ओर अधिक रहा है। ईश्वरवाद, राजा को ईश्वर का अंश स्वीकार करने की मान्यता आदि उसी एकतन्त्र की स्वीकृति है। हिन्दू समाज में संघ-व्यवस्था न होने के कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दू-धर्म का कोई एक निश्चित रूप नहीं है। वह तो अनेक विश्वासों, मान्यताओं और सिद्धान्तों का एक सामान्य नाम मात्र है। उसमें वेद-समर्थक, वेद निन्दक, ईश्वर समर्थक, ईश्वर विरोधी, द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, अवतारक के समर्थक और विरोधी सभी प्रकार के सम्प्रदाय हैं। इसलिये इन सबको धर्म की एक सामान्य भूमिका के सहारे सगठित करना और सब पर एक धर्म नायक का शासन प्रचलित करना एक असभव समस्या थी। फलतः हिन्दू-समाज में भी जैनो की तरह सुदृढ़ व्यवस्था कभी नहीं हो सकी।

जैन शासन की इसी सुदृढ़ संघ-व्यवस्था के प्रकाशमान उन्नायकों की माला मे आचार्य शान्तिसागर जी एक देदीप्यमान रत्न थे। जैन शासन ने एक आचार्य पर सब और शासन के सरक्षण और उन्नयन के जो दायित्व सौंपे हैं, उनका उन्होंने पूरी तौर पर निर्वाह किया। उनके कन्धे सबल थे कि वे सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के उत्तरदायित्वों के भारी भार को उठा सके। उनकी दृष्टि इतनी तेज थी कि उससे धर्म समाज और सस्कृति पर आने वाले सकट आने से पूर्व ही दीख जाते थे जिस से वे उनके प्रतिकार का समुचित उपाय कर लेते थे। जैन मन्दिरों में जैनेतर हरिजनों के प्रवेश की समस्या को उन्होंने हिन्दू धर्म मे जैन सस्कृति और जैन धर्म के विलीनी करण का एक प्रयत्न अनुभव किया। इससे वे चिन्तित हो उठे और उन्होंने उसके प्रतिकार के लिये अन्नाहार का त्याग कर दिया। धवलादि शास्त्रों को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराकर जिनवाणी के स्थायित्व और सुरक्षा की दिशा में उन्होंने अनुकरणीय कदम उठाया मुनि-विहार पर आये स्थान २ पर कानून और साम्प्रदायिक विद्वेष की जो सुदृढ़ दीवारें बाधा बनकर खड़ी हो रही थी, वे धर्म के प्रति आपकी एकान्त निष्ठा और अहिंसक साधना के जादू से न जाने कहाँ गायब हो गई। आपने अपने निष्कलंक आचार के द्वारा मुनि-मार्ग को प्रशस्त कर दिया। धर्म के साकार रूप में एक मुनि की जो कल्पना की जाती है, उस कल्पना का सफल प्रतिनिधित्व आप अपनी जीवन व्यापी साधना के द्वारा कर सके थे और इसीलिये जब आपका धर्म-विहार दक्षिण से उत्तर तक हुआ तो आपके तपस्वी व्यक्तित्व ने उत्तर भारत में त्याग मार्ग की पुनः प्राण प्रतिष्ठा की। कुल मिलाकर आपका जीवन धार्मिक-प्रवृत्तियों का एक केन्द्र था, जिसने समाज के इतिहास को एक नई मोड़, एक नया प्रकाश और एक नई प्रेरणा दी। वास्तव में ही आप एक ऐसे मध्य केन्द्र बिन्दु थे, जिसके चारों ओर धार्मिक और सामाजिक गति विधियों के ग्रह उपग्रह बराबर चक्कर लगाया करते थे। इसलिये बीसवीं शताब्दी के धार्मिक इतिहास के आप 'हीरो' थे।

× × × ×

आपका जीवन एक गतिमान यान था, जो इस विश्व के सागर में अपनी ही गति से बढ़ता रहा। लंगर खोले नहीं कि चल पड़ा और चला तो तूफान आये। उन्हें अपनी छाती पर झेला। ज्वार और भाटे उसके मार्ग को एक दिन और एक क्षण को भी न रोक पाये। ओले और वर्षा उसकी एक कील तक को विचलित न कर पाये। अनेकों ने किनारे पर खड़े होकर इस यान को देखा। कुछ ने प्रशंसा की और कुछ उसके दुस्साहस पर मुंह बिचका कर रह गये। किन्तु उसने न कभी प्रशंसा की अपेक्षा की और न अपवाद की चिन्ता। वह तो इनसे इतना आगे, इतना दूर निकल गया था, जहां से वे सुनाई न दे सकें। अनेकों यान सावन भादों की काली रातों में भटक गये और मार्ग भूल गये; अनेकों की गति बाधाओं से भरे मार्ग में मन्द पड़ गई। किन्तु वह यान देखते २ इन सबके आगे निकल गया, सब

[शेष पृष्ठ ११७ पर]

कार्य-कारण-भाव-मीमांसा

[लेखक—पं० श्री जीवन्धर जी शास्त्री न्यायतीर्थ, इन्दौर]

[प्रस्तुत लेख के लेखक एक गणनीय तार्किक विद्वान् हैं, प्रमेय कमलमार्तण्ड तथा अष्ट सहस्री के अच्छे मर्मज्ञ हैं। आपने कार्य-कारण-भाव पर अपने इस लेख में संक्षिप्त रूप से अच्छा प्रकाश डाला है। शास्त्रीय दार्शनिक विषय को सरल भाषा में रखने का प्रयत्न किया है। संक्षिप्त होने पर भी लेख अपने विषय पर अच्छा प्रकाश डालता है। —

जैन-दर्शन में कार्य-कारण भाव की मीमांसा युक्तिपूर्ण पाई जाती है। जिसका मुख्य हेतु यह है कि प्रत्येक पदार्थ स्वरूप में नित्यानित्यात्मक है, या द्रव्य पर्याय रूप है, अथवा अन्वय व्यातिरेक धर्मात्मक है, जिसको तर्क भाषा में "सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः" इस सूत्र द्वारा श्री माणिकनंदी आचार्य ने स्फुट किया है। द्रव्य पदार्थ, वस्तु तत्व, यह पद अनेक धर्म वाले धर्मों के वाचक माने गये हैं, इसही सामान्य विशेषात्मक पदार्थ को सत् शब्द या सत्ताशब्द द्वारा वर्णनीय विषय माना है। स्पष्टीकरण द्वारा वर्णित है कि सामान्यांश में ध्रुवता होने से उत्पाद व व्यय नहीं है परन्तु विशेषांश उत्पाद व्यय स्वरूप ही हैं जो कादाचित्क (अनित्य) होने से नवीन २ स्वरूप का लाभ किया करते हैं। इसीलिये यह प्रश्न होता है कि वे कहां व किस प्रकार आ जाते हैं। अतः कार्यकरण भाव की आवश्यकता हो जाती है। कोई नवीन स्वरूप पाने वाला कार्य विना कारण के नहीं हो सकता जैसे आकाश कुसुम, गधे के सींग किसी ने नहीं माने हैं परन्तु जीव व पुद्गल आदि छह द्रव्यों की सत्ता स्वीकार करने वाले जैन शास्त्रकारों ने उनके प्रति समय तक होने वाले नवीन २ विशेषों (पर्यायों) का उत्पाद (उत्पत्ति) व हो चुकने वालों का विगम (नाश) अंगीकार किया है, इस का आशय यह है कि कथंचित् असत् (अपूर्व) की उत्पत्ति व कथंचित् सत् का ध्वंस अवश्य होता है, और यह दोनों विशेष सहेतुक ही माने गये हैं, सांख्य दर्शन नवीन उत्पाद व व्यय नहीं मानता वह अभिव्यक्ति (प्रगट हो जाना) व तिरोभाव (छिप जाना) मानता है। जैन सिद्धांत वास्तविक विवेचनामें उत्पाद व व्यय इन दो शब्दों के स्फुट प्रयोग से कार्य कारण भाव को जीवन देता है।

उपयोगी कारण

प्रत्येक कार्य के प्रति उपयोगी कारण दो भागों में विभक्त हैं जिन में एक उपादान कारण व दूसरा निमित्त कारण कहा गया है। न्याय वैशेषिक दर्शन में कारणों के (१) समवायिकारण व (२) असमवायी कारण (३) निमित्त कारण ऐसे ३ भेद माने हैं जिनमें से दो का प्रथम में समावेश हो जाने से वस्तु-स्थिति दो की रह जाती है।

उपादान कारण

उपादान कारण उसे कहते हैं जो कारण सामग्री पाकर स्वयं विवक्षित कार्य रूप हो जाता है या परिणम जाता है नवीन आकार व अवतक न होने वाली अर्थ क्रियायों का सम्पादन करने वाला वन जाता है, जैसे

(१) घड़े प्रति मिट्टी (२) कोट कमीज आदि के प्रति कपड़ा (३) अंगूठी कटक कुण्डल आदि के प्रति सुवर्ण, भात के प्रति तन्दुल उपरोक्त उदाहरण से आप जान सकेंगे कि वे पदार्थ खुद ही कार्य बन गये हैं उनके आकार भी उनमें आ गये, उनके कार्य भी नवीन हो गये उन परिणामों को या इसी प्रकार के अगणित परिणामों को पाने वाले पदार्थ सब उपादान कारण माने गये है। वे नवीन परिणाम कथंचित सत्कार्यवाद का प्रदर्शन है। (१) उपादान कारण व उनमें होने वाले उपादेय परिणामों की सत्ता व प्रदेशास्तित्व दो नहीं हो सकते किन्तु एक ही हुआ करते हैं जैसे वही मिट्टी का पिंड घड़ा बन जाता है, वही कपड़ा पहिनने का वस्त्र कोट वगैरह बन जाता है वही चांवल भात हो जाता है, जिनमें उपादानोदेय नामक कार्यकारण भाव रहता है उनकी सत्ता एक ही द्रव्य रूप मानी जाती है इस लिये उपादान कारण एक ही माना गया है, उसके अभाव में दूसरे समान व असमान कारण से वह कार्य नहीं हो सकता

उपादान व उपादेय में तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है जिसे एक अस्तित्व में ही अन्तर्भूत माना गया है। इसी सिद्धान्त के अधीन पृथ्वी अप् तेज वायु चारों प्रकार के स्कंध एक पुद्गल द्रव्य में अन्तर्भूत माने हैं पार्थिव चन्द्र कान्त मणि से जल भरता है, जल विन्दु स्वाति नक्षत्र में पार्थिव सीप में मोती बन जाता है। काष्ठ अग्नि बन जाता है, वायु जल बन जाती है, इस परिणमन से स्पष्ट हैं कि जिनमें उपादानोदेय भाव होता है वे एक तत्व हैं. न्याय व वैशेषिक दर्शन चार द्रव्य पृथक् २ मानते हैं जो बाधित हो जाता है पूज्यपादाचार्य ने सर्वार्थ सिद्धि मे लिखा है। "जातिसङ्करेणारंभ-दर्शनात्" (अध्याय ५, सूत्र ३) इस ही विषय की विवेचना करते हुए पंडित-प्रवर प्रभाचन्द्र जी ने प्र० क० मार्तण्ड में लिखा है "ययोः परस्परं उपादानोपादेय भावस्तौ न तत्वतस्तत्वान्तरम्" । इस तरह प्रत्येक द्रव्य में जो परिणमन होते हैं उन को विशेष या व्यतिरेकी अंश माना गया है वही कार्य संज्ञा वाला होता है, उसके प्रति अन्वयी अंश व अव्य वहित पूर्व परिणाम दोनों अंश उपादान कारण कहलाते हैं एसी ही स्वरूप योग्यता प्रत्येक वस्तु में मानी जाती है।

जीव द्रव्य

इसी प्रकार जीव द्रव्य भी अपने में होने वाले विभाव व स्वभावभूत विकारों (परिणामों) का उपादान कारण होता है, अतएव उस एक तत्व में परस्पर तादात्म्योपेत उपादानोपादेय भाव निज भावों के साथ होता है। प्रत्येक जीव अपने में सम्भव होने वाले शुभ व अशुभ राग द्वेषादि परिणामों का व मतिज्ञानादि रूप अपूर्ण व विपर्यय मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानादिकों का, जिनका जीव के ५३ भावों में समावेश है सबका स्वयं जीवात्मा उपादान कारण स्वयं बनता है जो कि वैभाविक शक्ति के विभाव परिणमन के अधीन होता है कालक्रम से पुरुषार्थ विशेष से जब विभाव परिणाम मन्द हो जाता है तब स्वभाव परिणति रूप शुद्ध परिणमन प्रारम्भ हो जाता है, पूर्ण भी हो जाता है उन स्वभाव विकारों का (पर्यायों) उपादान वही जीवात्मा हो जाता है चूंकि जीव तत्व भी सामान्य विशेपात्मक या द्रव्य पर्यात्मक अन्वय व्यतिरेक रूप है।

परिणमदि जेण दव्वंतक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं

प्रवचनसार आगम वाक्य मे परिणाम से अभिन्न परिणामी तत्व माना है।

निमित्त कारण

उपादान कारण से भिन्न व उपादन उपादेय से भिन्न सत्ता रखता हुआ भी अपने व्यापार द्वारा उपादान को उपादेय रूप परिणमा दे परन्तु अपना कोई भी अंश उपादेय में गर्भित न होने दे, उसे निमित्त कारण कहते हैं। इसमें प्रेरक निमित्तों व सहायक निमित्तों का समावेश माना है। उदाहरण—जैसे घड़े के प्रति कुम्हार दंड चक्र आदि निमित्त हैं, जब उपादान मृत्पिंड निमित्तों का अनुकूल व्यापार पाता हैं प्रति बंध का अभाव रहता है तब घड़ा बन जाता है, यदि निमित्त में न्यूनाधिकता हो या विकार हो तो कार्य में दोष पाये जाते हैं। इतना होने पर भी निमित्त का कोई भी अंश उपादेय में समाविष्ट नहीं होता, कुम्हार दंड चक्र आदि का अवयव या रूप रस गंध कार्य भूत घड़े में नहीं आता।

किसी कार्य के प्रति कारणता, सिद्ध करने के लिये दर्शनकारों ने, अन्वय व व्यतिरेक नियम को प्रधानता दी है, अन्वय की परिभाषा—जिसके व्यापार होने (कारणके) पर जो कार्य हो, उससे विपरीत—जिस कारण के व्यापार न होने से जो कार्य न हो उसे व्यतिरेक नियम कहते हैं, यह नियम भी उपादान उपस्थित रहते हुए भी निमित्त कारणों का कार्य के प्रति घटता है कि सूत्रकार माणिक्य नंदि आचार्य ने परीक्षा मुख सूत्र में दिया है कि "तद् व्यापाराश्रितंहि तद्भाव भावित्वम्" इस अन्वय व्यतिरेक में व्यतिरेक नियम प्रधान माना जाता है।

उपरोक्त विचार से यह स्पष्ट है कि कारण व्यापर पर कार्य की उत्पत्ति निर्भर है। बहुत से विद्वान् निमित्त कारण को हाजिर मात्र बतलाते हैं उन्हें ऊपर कहे हुए सूत्र से अपने विचार बदल लेने चाहिये।

यदि कार्य कारण भाव को मौलिक पद्धति से विचारा जावे तो सामग्री रूप कारण से कार्य की उत्पत्ति होगी, सामग्री के दो भाग होंगे जिन्हें उपादान निमित्त कारण कहना उचित होगा। इस तरह प्रत्येक के ५०-५० नम्बर कारण भाव के प्राप्त होते हैं।

उपादन कारण एक ही होता है परन्तु निमित्त कारण एक कार्य में वह भी हो सकता ही वह न हो तो वैसा अन्य भी उसी कार्य को पैदा कर सकता है, जैसे कि घड़ा जिस कुम्हार ने शुरू किया वह न हो तो दूसरा भी जानकार बना देगा।

कार्य कारण भाव की व्याख्या स्वामी समन्तभद्र, अकलंकदेव व स्वामी-विद्यानंद जैसे प्रकाण्ड विद्वानों ने स्वरचित ग्रन्थों में स्फुट लिखी है

एवं विधि-निषेधाभ्यामनवस्थित मर्थकृत। नेति चेन्न यथाकार्यं वहिर न्तरूपाधिभि :—

—देवागम २१

स्वामी समन्तभद्र के वचनों का अकलंक देव व विद्यानंद आचार्य ने कार्यों के प्रति दो उपाधि (कारण) वहि: उपाधि व अन्त: उपाधि अंगीकार की हैं, जो मूल सिद्धान्त है, कोई भी जैन विद्वान् इस से भिन्न मत नहीं हो सकता।

शेड़वाल श्री शांतिसागर दिगम्बर जैन अनाथ छात्राश्रम के संचालक
श्री १०५ क्षु० पार्श्वकीर्ति जी तथा आश्रम के छात्र।

चलो चलें ! उस पार सखे

—स्व० "भगवत" जैन एत्मादपुर

दुख से भरा अगाध, विपद है; दुस्तर पारावार सखे।
छोड़ो, देह नेह का बन्धन, चलो! चलें उस पार सखे॥

आज्ञा नहीं किसी के ऊपर—करना जहां प्रणाम नहीं।
हानि-लाभ यश-या अकीर्ति के, किसी काम से काम नहीं॥
अशरण-शरण-मरण जीवन का, कोई जहां मुकाम नहीं।
सदा निराकुल, सदा प्रफुल्लित, आकुलता का नाम नहीं॥

राग-द्वेष की नहीं कालिमा, रंच न मायाचार सखे।
छोड़ो, देह नेह का बन्धन, चलो! चलें उस पार सखे॥

जहां न क्रोध मान कायरता, जहां नहीं पीड़ा-बन्धन।
जहां न हर्ष-नाद होता है, जहां न दुखियों का क्रन्दन॥
जहां न शीत-उष्ण की बाधा, जहां न ऋतु का परिवर्तन।
जहां कलह द्वेषाग्नि नहीं है, होता सुख का दिग्दर्शन॥

अनाचार-अविचार नहीं है—कहीं न हाहाकार सखे।
छोड़ो, देह नेह का बन्धन, चलो! चलें उस पार सखे॥

जहां रम्य, सौन्दर्य अनूपम, किन्तु नहीं है हरियाली।
सुख के पादप, गुण प्रसून हैं-सुरभित है डाली-डाली॥
वह अविनाशी, विपद् वाटिका, है अनन्त शोभा वाली।
वही भाग्य-शाली है बनता, जो नर उसका बनमाली॥

नहीं उठाना पड़े जहां पर—कोई भी दुख-भार सखे।
छोड़ो, देह नेह का बन्धन, चलो! चलें उस पार सखे॥

विधि वैरी के भय से वर्जित, होती नहीं जहां हलचल।
दुर्लभ अवर्णीय सुख पाता, यह चर जीवन के प्रतिपल॥
अजर और अविनाशी मनहर, रूप सम्पदा सौम्य-सरल।
"भगवत" जहां जीव रहता है—निरालम्ब, निष्कल, निश्चल॥

पा स्वतन्त्रता अविनाशी को—पावें सौख्य अपार सखे।
छोड़ो, देह नेह का बन्धन, चलो! चलें उस पार सखे॥

पुण्यश्लोक की पुनीत स्मृति में

(लेखिका---श्री महिलारत्न ब्र० पं० चन्दाबाई जी आरा)

[श्रीमती ब्र. पं. चन्दाबाई, पाण्डित्य एवं निर्मल व्रती जीवन के लिये देश-भर में सुख्यात हैं। आचार्य श्री के प्रति उनकी यह श्रद्धांजलि तथा उनके संस्मरण प्रेरणाप्रद हैं और शिक्षाप्रद भी।]

सारंगी सिंह शावं स्पर्शति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं
मार्जारी हंसबालं प्रणय परवशा केकि कान्ता भुजंगम्।
वैराग्या जन्मजाता न्यपि गलितमदा जन्तभोऽन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैक रूढं प्रशमित कलुषं योगिनं क्षीण मोहम् ॥

* * * *

एक: पूजां रचयति नरः पारिजात प्रसूनैः
क्रुद्धः कण्ठे क्षिपति भुजगं हन्तु कामस्ततोऽन्यः।
तुल्यावृत्तिभवति च तयोर्यस्य नित्यं स योगी
साम्यारामं विशति परमज्ञान दत्तावकाशम् ॥

पूज्य आचार्य श्री ऐसे ही संयमी संत और अहिंसा के प्रतीक थे जिनके चरणों के समक्ष भुजंगम जैसे भयंकर और हिंसक क्रूर जीव जन्तु भी अपने विष का वमन कर चरणों में नत हो अपनी भक्ति प्रकट करते थे। मानव इतिहास में एक ऐसा युग आता है जब संस्कृति की सामाजिक विशिष्टताओं के प्रतीक व्यक्तियों का आविर्भाव होता है। उनके जीवन में हमारी सामाजिक धार्मिक मर्यादाएं और आदर्श अभिव्यक्त होते हैं। उनके जीवन की उदात्त भावनाएं तपः पूतज्ञान और दीर्घ अनुभव समाज का संस्कार करने में सहायक होता है। यद्यपि आत्मानुभव आत्मसाक्षात्कार एवं आत्म-दर्शन ही उनके जीवन का परम पुरुषार्थ होता है, फिर भी वे इस दृश्य जगत के घात-प्रतिघातों के बीच अपने नेत्रों को बंद करके नहीं रखते। उनके प्रकाशमान तेज पुंज के समक्ष संसार की सारी दुर्बलताएं अहंभाव जन्य अज्ञानताएं विलीन हो जाती हैं। छिद्रानुवेषी अहमन्यतावादी व्यक्तियों द्वारा प्रचारित मिथ्या विचारधाराओं का खंडन कर विश्व को स्वास्थ्यकर वातावरण में उपस्थित कर मंगलमय पथ की उपलब्धि होती है।

पूज्य आचार्य श्री भगवान महावीर की परंपरा के उन श्रेष्ठ संतों में थे जिनको पाकर दिगम्बर परम्परा जीवन्त रही है। इधर लगभग ३-४ सौ वर्षों के बीच पूज्य आचार्य शांतिसागर जैसे महान व्यक्ति का साक्षात्कार दिगम्बर परम्परा को नहीं हुआ था। वे स्वयं व्यक्ति ही नहीं अपितु जीवन्त संस्था के रूप में थे। इन्होंने अविरुद्ध मुनि मार्ग को सुदृढ़ ही नहीं बनाया किन्तु उसे अपने आदर्श चारित्र और ज्ञान के द्वारा आलोकित कर आगम सम्मत मुनि धर्म की प्रतिष्ठा की। जो दिगम्बरत्व अब तक भय और आतंक से आतंकित था उसे सर्व सामान्य के समक्ष स्वाभाविक और प्राकृतिक धर्म के रूप में प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि आचार्य शांतिसागर महाराज के पूर्व बाहर निकलते समय दि० मुनि लोग आवरणकर चलते थे और अपने निवास स्थान पर आकर इस आवरण का परित्याग कर देते थे। पूज्य आचार्यश्री ने इन समस्त कमियों की ओर दृष्टिपात किया और अदम्य उत्साह एवं पुरुषार्थ द्वारा भगवान महावीर की उसी दिगम्बर परम्परा के आदर्श को स्थापित किया जो भगवान कुन्दकुन्द एवं तार्किक समन्तभद्र जैसे आचार्यों द्वारा अनुगमित था।

पूज्य आचार्य महाराज तपस्वी होने के साथ २ सिद्धांत शास्त्र के पारगामी थे। आपकी प्रतिभा विलक्षण थी। आपने श्रुतज्ञान का बहु भाग तपश्चरण जन्य विशुद्धि द्वारा प्राप्त किया था। धवल महाधवल जैसे सिद्धांत ग्रंथों का ताम्रपत्रीय अंकन कराना आपकी ही दूरदर्शिता का परिणाम है।

जैन धर्म के प्रचार की कामना पूज्य श्री में अति प्रबल थी। इसी कारण उन्होंने उत्तर भारत के ग्रामों का

परिभ्रमण कर घर घर धर्म की अलख जगाई थी। आपके उपदेश से सहस्रों नहीं, अगणित जैनेतर व्यक्तियों ने मद्य, मांस, धूम्रपान, रात्रि भोजन आदि का त्याग कर आत्म-कल्याण का मार्ग ग्रहण किया था। हमें आपके निकट सम्पर्क में रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। आपके दिव्य गुणों के चमत्कार अनेक बार दृष्टिगोचर हुए थे। जैन धर्म के उत्थान की कितनी लगन थी यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

जिन दिनों आपने दिल्ली में चतुर्मास किया था, उन दिनों दिल्ली में दि० जैन साधुओं का अव्याहृत रूप से विहार करना वर्जित था, अतः सरकारी आदेश के अनुसार लोग चर्या के लिए जाते समय महाराज को घेरकर चलते थे। महाराज की आंखों से श्रावकों का यह भय छुपा न रह सका। फलतः वह अगले दिन से श्रावकों के आने के पहले ही अकेले शुद्धि का कमण्डलु लेकर चल दिये साथ में किसी को भी नहीं लिया। सर्वत्र हल-चल मच गई कि अब सरकारी वारंट निकलेंगे और सभी को सरकारी आदेश की अवहेलना के कारण कारागृह की हवा खानी पड़ेगी। निर्भय सुमेरु के समान दृढ़ महाराज चर्या करके वापस लौट आये और श्रावकों से कहा— "भय की आवश्यकता नहीं। मुनिविहार सिंह के समान होता है। अब दिगम्बर धर्म पर कहीं रोक नहीं रह सकती है"।

लेखिका

पूज्य महाराज के उत्साहवर्द्धक शब्द को सुनकर सभी को शांति मिली। अगले दिन से महाराज ने दिल्ली के प्रसिद्ध स्थानों के सामने जा जा कर अपने चित्र खिचने दिये। लोगों में चर्चा थी कि क्या बात है कि आचार्य महाराज आजकल अपनी फोटू खिचवा लेते हैं। क्या महाराज को भी फोटो खिचवाने का शौक है? एक दिन उनसे पूछा—महाराज आप दिल्ली के प्रसिद्ध स्थानों पर जाकर फोटो क्यों खिचवातेहैं वे बोले—आप लोग क्या समझें यह कार्य भी धर्म प्रचार के लिये है। ये चित्र ही इन बातों के प्रमाण स्वरूप रहेंगे, कि दिगम्बर मुनि अव्यवस्थित रूप से इन स्थानों में भ्रमण करते थे। आज भी निषेधात्मक आज्ञाओं का निराकरण इन चित्रों की सहायता से किया जा सकेगा। महाराज के दूरदर्शितापूर्ण वचनों को सुनकर उपस्थित सभी श्रावकों को परमानन्द हुआ और पूज्य श्री की धार्मिक लगन की सब ने प्रशंसा की।

महान व्यक्तियों के कार्य भी महान होते हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया समाज, देश, राष्ट्र और धर्म के उद्धार के लिये ही होती हैं। पूज्य श्री का जीवन भी धर्म की रक्षा के लिये था। जितने बड़े वे आत्म चिन्तन और स्वानुभूति के रसज्ञथे उतने ही बड़े वे समाज हितैषी भी। हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन को लेकर उन्होंने वर्षों तक अन्नाहार का त्याग कर अपनी विकसित आत्मशक्ति द्वारा जैन मन्दिरों की पवित्रता को अक्षुण्ण रक्खा।

आचार्य श्री लोकोत्तर महापुरुष थे। वह सुमेरु वत् दृढ़ एवं संयम की पराकाष्ठा को पहुंचे हुए थे। हमने अनेक अवसरों पर इस बात का अनुभव किया था कि उनके नाम के स्मरण मात्र से ही परम शान्ति प्राप्त होती थी विधर्मी भी उनके दर्शन से शन्ति का अनुभव करते थे तथा परम श्रद्धालु बनकर ही वापिस लौटते थें। घोर परीषह सहिष्णु, उपसर्ग-विजयी, धर्म की अक्षुण्ण मर्यादा स्थिर रखने वाले, मोक्ष मार्ग की वपुपा निरूपण करने वाले पूज्य श्री को जैन समाज कभी नहीं भूल सकता है। उनकी अलौकिक कीर्त्ति सदा ही स्मरणीय रहेगी।

इस कलिकाल में सल्लेखना का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर पूज्य श्री ने दिगम्बर धर्म के अध्याय की पुनरावृत्ति ही की है। आगम में निरूपित है कि जब शरीर धर्म साधन में असमर्थ हो जाय, उस समय विवेक पूर्वक समाधिमरण धारण कर लेना चाहिये।

आपने भी शरीर को धर्म साधन में असमर्थ समझकर समाधिमरण लिया। यह समाधिमरण भी असाधारण ही था। क्योंकि आपने अपनी परिचर्या के लिये किसी का भी

आलम्बन ग्रहण नहीं किया। आपकी वीरता और दृढ़ता अत्यन्त प्रशंस्य है। मृत्यु को ताल ठोक कर आह्वान करना आप जैसे आत्मपारखी सन्त का ही कार्य था। स्वेच्छया कषाय और आवेगों का त्याग कर आत्मा के शोधन में लगना सर्वसाधारण की शक्ति के वाहर की वात है। आवेश या आवेग में आकर आत्म हनन करना तो किसी भी पामर पापी का कार्य हो सकता है। अतः आवेशों के कारण मोह की मात्रा इतनी प्रवल होती है जिससे वे अपने को भूलकर राग वहुलता के कारण तीव्रतम आश्रव को करते हैं। परन्तु विवेक पूर्वक आत्मसाधना करना साधारण व्यक्ति की आत्म शक्ति के वाहर की वस्तु है। निश्चय ही आचार्य श्री की यह आत्म साधना इस युग में भारतीय साहित्य के लिये गौरव की निधि होगी। इस आदर्श मार्ग पर कवियों और लेखकों की लेखनी को सरपट गति से दौड़ने के लिये पूरा क्षेत्र उपलब्ध हुआ है। हम इस प्रकार के आत्म साधक, युग संस्थापक और युगान्तकारी परम पूज्य आचार्य श्री के प्रति श्रद्धावनत हो श्रद्धांजलि समर्पित करती हुई अपने को गौरान्वित समझती हूँ। ऐसे तपःपूत दिगम्बराचार्य का नाम स्मरण ही आत्म शक्ति के लिये हेतुभूत है।

वीतराग आचार्य श्री की जय।

आदर्श आचार्य प्रवर

[पृष्ठ ११० का शेष]

विस्मय विस्फारित नेत्रों से, श्रद्धा विजड़ित हृदय से देखते रह गये। किन्हीं को स्पर्द्धा हुई, ईर्ष्या हुई और अपनी गति पर झुंझला उठे। कोई मात्सर्य से भर उठा और उसकी गति आंखों में गड़ गई। किन्तु उस यान ने मुड़कर न देखा। मुड़कर देखने का उसे अवकाश कहाँ था।

उस यान ने जब लंगर खोले थे, तब उसे वह तट और वह भूमि छोड़नी पड़ी, जहाँ वह खड़ा था। स्वजनों का दुलार और परिजनों का प्यार छोड़ना पड़ा। चैन और आराम की जिन्दगी से ऊबकर ही मानों विपदाओं को चूमने निकल पड़ा। किन्तु कितना प्रसन्न था वह। विस्तृत आकाश उसके ऊपर वितान ताने खड़ा था; दिशाओं ने उसे परिधान दिये थे; नीचे निस्सीम फैली चादर उसके पर्यंक को सजा रही थीं; वसन्त आकर उसके ऊपर फूलों की वर्षा कर जाती; वर्षा उसका अभिषेक कर देती। तट को छोड़ देने पर अब वह सारे विश्व का स्वामी बन गया था क्योंकि वह सबको छोड़ता ही गया, छोड़कर वढ़ता ही गया।

अब उस यान को वह तट दिखाई पड़ रहा था, जहाँ उसके पहुँचने का लक्ष्य था। लक्ष्य कितना प्रकाशमान, कितना दैवी! किन्तु बीच में मौत की भयानक पर्वत-श्रेणी, लौटने की कामना नहीं और वढ़ने को मार्ग नहीं। मौत ने अपने विकराल जवड़ों को फैला दिया। मौत की यह कर्कश ललकार सुनी उसने, सुनकर डरा नहीं, मुड़ा भी नहीं। कुछ रुका, इसलिये कि वह मौत के आगे खम ठोक सके। उसने कहा—मुझे चुनौती स्वीकार है, विना किसी की सहायता के अकेले ही उसने अपना मस्तूल उखाड़ फेंका; कोयला भी वन्द कर दिया और अन्त में पानी भी। देखने वालों के मुह से एक चीख निकल गई चिन्ता के मारे। कुछ न कहा कितने दिन लड़ेगा बिना कोयले पानी के। चट्टान से टकराया नहीं कि चूर २ हो जायगा। किन्तु उसे इन बातों को सुनने की फुर्सत नहीं थी। वह अपनी अदम्य इच्छा शक्ति के सम्वन्ध के साथ वढा चट्टानों की छाती फाड़कर। मौत हुंकार उठीं क्रोध के मारे, किन्तु वह उसे न डरा पाई। चट्टानें उसे मार्ग देती गईं, दुर्दम्य लहरें उसे अपनी छाती पार उठा ले गईं। जीवन की हर दिशा में सफल अभियान करने वाला मौत पर पैर रखकर आगे वढ़ गया। मौत हार मान गई और उसके पैर चूम लिये। अब वह तट पर जा लगा। देवताओं ने पुष्प वृष्टि की, देवियों ने आरती उतारी और मानव समुदाय जय घोस कर उठा।

मृत्युजंयी आचार्य श्री के जीवन का यह वास्तविक चित्र है। १८ अक्टूबर सन् १९५५ वह मनहूस दिन था, जिसने आचार्य श्री के महान् साधनामय जीवन की समाप्ति कर दी। किन्तु वास्तव में आचार्य श्री अपने तपःपूत व्यक्तित्व और अविचल निष्ठा से लक्ष जनों के हृदय में मुनि मार्ग और धर्म के प्रति गहरी आस्था जगा गये। वास्तव में आचार्य शान्तिसागर जी विस्तृत विश्व में मुक्ति का बोध कराने वाले एक प्रकाश-स्तम्भ थे। ×

卐 वीर-मरणं सल्लेखना वा 卐

[पट्टाचार्येण श्रीमल्लक्ष्मीसेन भट्टारकेण विरचितम्]

उद्भट विद्वान, आगम-मर्मज्ञ श्री भट्टारक लक्ष्मीसेन जी ने संस्कृत के इस गवेषणापूर्ण लेख में सल्लेखना को शास्त्र-सम्मत सिद्ध करते हुए उसके आध्यात्मिक एवं नैतिक महत्व पर विशद प्रकाश डाला है। संस्कृतज्ञों के लिए यह लेख रोचक एवं शिक्षा-प्रद होगा। हमारी प्रार्थना मानकर भट्टारक महोदय ने यह सारगर्भित लेख लिख भेजा इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥

अनादिकालतश्चतुर्गत्यात्मकसंसारे परिभ्रमन् जीवोऽयं तापत्रयेण सन्त्रस्त असह्यानन्तदुःखान्यनुभूय मृगजलवत् भासमान विषयेष्वनुरक्तः सन् तृष्णातुरो मृग इव भ्रमेण इतस्ततो धावन् (भ्रमन्) आपत्तिस्थानं प्राप्नोति। इह हि पर्यटतो जीवस्य मानवं जन्म दुर्लभम्, तत्रापि सुसंस्कृतानुकरणीया मानवजीवनसंप्राप्तिरतिदुर्लभा। अस्मिन् अज्ञानमय-मोहान्धकूपे पतितमानवेषु कदाचित् कतिपयमानवेषु हिताहित-विवेकः प्रादुर्भवति, तेन दुःखमयसंसारे शाश्वत - शांति-सुख-मार्गं शोधयतिस्म। सत्समागमः संजायते सद्गुरूपदेशात् जिनप्रणीतसद्धर्मे श्रद्धावान् भवति भव्यात्मा।

प्राप्यते हि निरुपाधिक-निरवधिसुखं विषयभोगत्यागादेव न प्रभवत्यात्म-गुण-विकासो भोगासक्तेः क्षयादिना। तत आवश्यकमेव संयमधर्म - परिपालनं, तस्मादेव चित्तशुद्धि-रेकाग्रता च प्रभवति।

अतः सर्वजीवदयाभावरूपा अहिंसा, प्रामाण्यरूपं सत्यं, परवस्तुलोभ-त्याग अचौर्यं, स्वात्म-रममाणरूपं ब्रह्मचर्यं, सर्वसंगनिरस्तरूपः परिग्रहत्यागः। एवं पंच महाव्रतानि समिति-पंचकं गुप्तित्रयं स्वीकार्य निरतिचारतया परिपालनीयम्। चित्तशुद्ध्यर्थं नाना विधानि तपश्चर्याणि विधेयानि।

दीर्घकालानुचरितव्रतानामभ्यासस्य पूर्णता समाधिमरणेनैव सफलता च भविष्यति-तपः-फलं समाधिमरणमिति।

आचार्यप्रवर श्रीसमंतभद्राचार्येणोक्तम्—
अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते ॥
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥

अन्तःक्रियाधिकरणं समाधिमरणं तदेव तपसः फलमिति सर्वज्ञदेवेन प्रशंसितम्। यद्यपि तपसः फलं स्वर्गादिकं वर्तते तथापि विना समाधिमरणेन तपसः वैयर्थ्यमिति समाधिमरणं साधयितुमवश्यं प्रयतितव्यम्।

सल्लेखना कदा स्वीकार्या

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥

घोरविपिने गच्छतो मुनेः सिंहशार्दूल-विषधर-सर्पादि—हिंस्र—पशुभ्यः पूर्वजन्मकृत—पापोदय—संजात—वैरभावात् शत्रुभूत—देव—दैत्य—मानवेभ्यश्च संजातोपसर्गे दुर्भिक्षित—प्रदेशे विधिपूर्वकाहार—प्राप्त्यभावे वृद्धावस्थया जीर्णे शरीरे असाध्यरोगोत्पत्तौ अनिवार्य—प्रसंगे स्वात्मधर्म—रक्षणार्थं आहारादिकं विसृज्य देहत्यागः सल्लेखनेति गणधरदेवाः कथयन्ति।

प्रज्वलित—दावानलेन दंदह्यमानारण्ये अग्निज्वालया व्याप्त—सद्मनि मध्ये संप्राप्तो मुनिरुपरिनिर्दिष्ट प्रसंगे वा दीर्घकालात् आचरितरत्नत्रयात्मकधर्मे विराधना स्यात् तदा संसार-शरीर-भोगविषयक-मोहभावं त्यक्त्वा आहारं हापयित्वा देहं विसृजेत्।

अग्निज्वालया दह्यमाने सद्मनि बहुमूल्यमवश्यं—रक्षणीय—वस्तुजातं बहिर्निष्कासयितुं गृहपतिः यथा प्रयतते

तथा उपसर्गादिना व्याप्ते शरीरे सति स्वहितेच्छुभि मुनिभि गृहस्थैश्च क्षणभंगुर-देहस्य मोहं त्यक्त्वा स्वकीय-धर्मः अवश्यमेव रक्षणीयः, तदेव स्वहितं ।

सल्लेखना-विधिः

द्वादशवर्षमधिकृत्य सल्लेखनाया अभ्यासविधिरनुष्ठीयते ।

कालो द्वादशवर्षाणि काले सति महीयसि ।
भक्तत्यागस्य पूर्णानि प्रकृष्टः कथितो जिनैः ॥
विचित्रैः सल्लिखत्यंगं योगैर्वर्ष-चतुष्टय ।
समस्तरसमोक्षेण पर – वर्ष – चतुष्टयम् ॥
आचाम्लरस–हानिभ्यां वर्षे द्वे नयते यतिः ।
आचाम्लेन विशुद्धेन वर्षमेकं महामनाः ॥
षण्मासीमपकृष्टेन प्रकृतेन समाधये ।
षण्मासीं नयते धीरः कायक्लेशेन शुद्धधीः ॥

विचित्रैरनियतैरनशनादितपोभिः क्षपयति वर्षचतुष्टयं । द्वितीयवर्ष-चतुष्टयं क्षीरादिरसान् परित्यज्य शरीरं कृशयति । आचाम्लरसत्यागेन वर्षद्वयं नयति ।

केवलेन शुद्धाचाम्लेन वर्षमेकं प्रयाति, अवशिष्टः वर्षस्य षण्मासान् सामान्यतपोभिः शेषषण्मासान् उत्कृष्ट–तपोभिः गमयति । अन्तसमये जलपानं विना अन्यत्सर्वं त्यज्यते
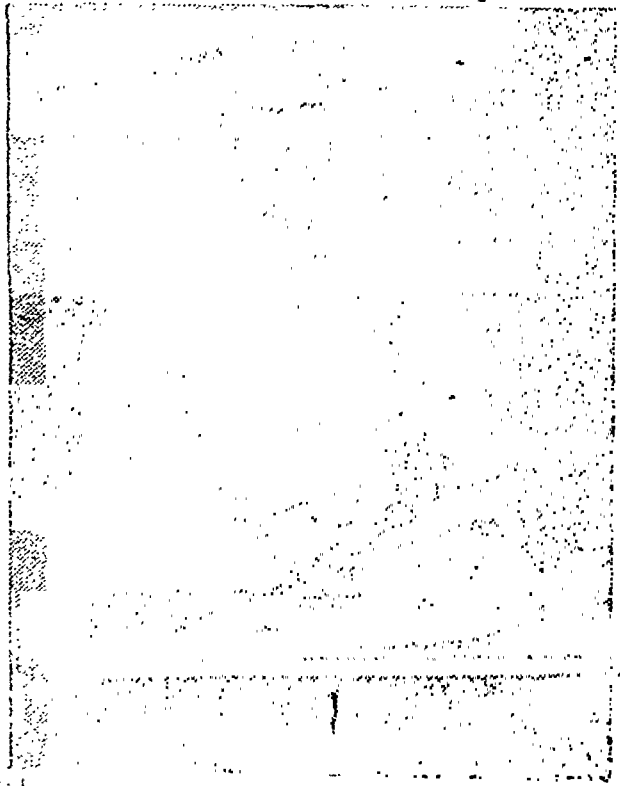
लेखक

उपवासक्रमवृद्ध्या तदपि परित्यज्य शरीरं कृशयति । तथा कायसल्लेखनया सह कषायसल्लेखनाप्यवश्यं भजनीया

भावशुद्ध्या विनोत्कृष्टमपि ये कुर्वते तपः ।
बहिर्लेश्या न सा तेषां शुद्धिः भवति केवला ॥
कषायाकुलचित्तस्य भावशुद्धिः कुतस्तनी ।
यतस्ततो विधातव्या कषायाणां तनूकृतिः ॥
जेतव्यः क्षमया क्रोधो मानो मार्दव-संपदा ।
आर्जवेन सदा माया लोभः संतोषभावतः ॥

सम्वेग—वैराग्य-दया—दम–तत्त्वज्ञान-संस्कारादिशुभ-परिणामप्रवृत्त्या अशुभकषायाणां सल्लेखना कृता भवति अतः सम्यक्कायकषाय–लेखना सल्लेखना इति ।

समाधिमरणं त्रयात्मकं

भक्त–प्रयाख्यानं, इंगिनीमरणं प्रायोपगमनं चेति । उक्तभेदेषु आहारत्यागस्य क्रमः समानविधिरेव किंतु भक्त—प्रत्याख्याने स्वशरीरस्य वैय्यावृत्यं स्वेन तथा परेणापि कर्त्तव्या । इंगिनीमरणे वैय्यावृत्यादिकं स्वेनैव क्रियते, परेण नेति । प्रायोपगमने स्वदेहे असह्य वेदना संजातापि स्वेन परेण वापि सेवा नैवापेक्ष्यते ।

समाधिमरणं नात्मघातः

शरीरे वेदना संजाता ऋणादिना कृत्येन च समाजे अपमानः संजात इत्याद्यनेककारणेषु जीवितात् मरणं वरं मत्वा विषसेवनादिप्रयोगेण देह-विसर्जनमेव आत्म-हत्या भवति । न तु समाधिमरणे तादृशं कारणं । यदा शरीरं जीर्णावस्थितं स्यात्, परिपालित-स्वधर्मे संजायेत मालिन्यं, पुद्गलमयो जडकायो धर्माचरणे गलित—सामर्थ्यो भवेत् तदा चिंतितात्मबलेनाराधनया शांति—सहितं विधिपूर्वकं ममत्वभावं त्यक्त्वा क्रमश आहारकषायान् तनूकृत्य काय-विसर्जने आत्म-घातो हठयोगो वा नैव विद्यते । अपितु विचारप्लुतात्मशक्तेर्विकास एव अतः समाधिमरणं मुमुक्षु–धर्मरत-जनेषु अध्यात्मबल-संवर्धितस्य मार्गस्य दर्शकं तस्मात् समाधिमरणमवश्य सेव्यं ।

स्वस्तिश्री १०८ आचार्यप्रवर चारित्र चूडामणि—विश्ववंद्य–श्रीशांतिसागरयोगिना जिनप्रणीत–दैगंबरीय-जैनेंद्रमुद्रांकिता दीक्षा स्वीकार्य चिरकालमहिंसादिमहाव्रतानि निरतिचारतया परिपालितानि । जगत्–पूजितोयं योगिराट् चतुर्विधसंघ–सहितो भारतवर्षे सर्वत्र पादमार्गेण संचर्य पुण्यमयक्षेत्रं ददर्श । विहारकाले ऋषिप्रवरः शांतिसिंधुः धर्म–

जागृति धर्मप्रभावनां च चक्रे। यथा प्राक् धर्मोपरि यवनकृतोपसर्गः श्रीविद्यासागरमुनिना विद्यावलेन निवारितः। तथाधुना मुनिकुंजरः आत्मनः प्राणान् तृणीकृत्य तपसः प्रभया धर्ममालिन्यमनीनशत।

चिरमभ्यसित—स्वाध्यायभाव-श्रुतज्ञानवलेन विवादास्पदसैद्धांतिक-रहस्य-स्पटीकरण-विषये भगवतोऽस्य मुनेः कुशाग्रतीक्ष्णतरा बुद्धिरियमवर्णनीयाऽसीत्।

पंचाचारः स्वयमेव भगवता श्रीमता सपालितः स्वशिष्यैरपि परिपालयितः। अयं योगिराट् व्रतादिकेषु कुशलः तस्य सयंमिनः शरीरमतीव वलवत् दीर्घायुष्मदभूदित्यत्र न संदेहः। एकस्मिन् नेत्रेकाचविवं भूत्वा क्रमशो निस्तेजदृष्टिरविद्यत। भक्तैरनेकशुद्धोपचारः कृतः किंतु किमपि गुणीभूतं न वभूव। दिने दिने दृष्टिमन्दता संजाता। अतः आचार्यप्रवरेण पचवर्षमधिकृत्य सल्लेखनाया अभ्यास आरब्ध आगमानुसारेण।

गतचातुर्मास्य—प्रारंभे नयन-मांद्यात् यमसल्लेखनाया समयः संजातश्चेदात्मनःसमाधिकरणं सिद्धक्षेत्रे नाम निर्वाणभूमी भूयादिति संल्कपेन श्री कुंथलगिरिसिद्धक्षेत्रे स्ववास्तव्यं निहितं स्वामिना पूज्यपादेन। अवर्धत दृष्टिमांद्यं दैवविलसत-दुर्विपाकात्। अतो दीर्व-काल-समाचरित-व्रतानां निर्दोषरीत्याधुना परिपालनं न विंचेत दीर्व-संसार भयात् चतुर्गत्यां भ्रमणशीलो भवेयमिति मत्वा स्वामिना गुरुदेवेन स्वकायमोहादिकं त्यक्त्वास्यात्महितं स्वधर्मरक्षणे।

अथ पूर्णरीत्या विचिंत्यांतिमयमसल्लेखना स्वीकृता।

त्रिषु सल्लेखनासु इंगिनीमरणं नाम सल्लेखना निर्धारिता। दिनांके १७-६-५५ तः प्रारम्य जलपानं विना सर्वाहारः त्यक्तः। द्विश्चतुःषष्ठ-दिनस्य चर्यां कृत्वा केवलं गृहीतं जलपान—मात्रं हि।

दिनांके ५-६-५५ तो जलपानमपि विसृज्य आत्मनः स्वरुपचिंतने ध्यानमग्नोऽभूत् पूज्यपादगुरुः।

दिनांके १७-६-५५ दिने प्रातः पट्वादनसमये संश्रुता गंधोदकस्य सूचना। स्वामिनो हुँकारात्मक—सूचनया लेपनं कृतं गंधोदकस्य। साधुना स्वामिनोत्थापयितुं प्रार्थितम्। तथापि नकारात्मककरेण सूचितं नोत्थापयितव्योऽहम्।

सर्वे त्यागिनः ॐ सिद्धाय नमः जिनाय नमः सिद्धोऽहम् बुद्धोऽहम् इत्यादिकं मंत्रमयोपयन्।

तदेव पंचनिमिष—न्यून सप्तवादन—समये शान्तिजागृतिसमाधिपूर्वकेण पूज्यगुरोरमरात्मा जडदेहं त्यक्त्वा दिव्यां सपदमासदत्।

इत्थमवसर्पणेः कलिकाले विच्छिन्न—मुनिधर्मस्य पुनर्जीवनोद्यतोऽहिंसाया मूर्तिमानप्रतिकृतिरिव सत्यशीलयोरचलमेरुः निमंत्रितमृत्युः पवित्रहुतात्मा श्री आचार्यशांतिसागरमहाराजो भारतीय परमपवित्रयतिरद्वितीयो गुरुरासीत्। अयममरात्मा चिरसुख—शान्ति प्राप्नुयात् इत्यर्हच्चरणयो प्रार्थना कुर्मः।

प्रेरणाप्रद विनोद

एक बार जब आचार्य श्री शेड़वाल में थे, तब क्षुल्लक पार्श्वकीर्त्ति जी एवं अन्य त्यागी गण उनका उपदेश सुन रहे थे। प्रवचन के अन्त में त्यागियों ने मुनीन्द्र को प्रणाम किया और विनम्र निवेदन किया, "महाराज, हमें क्षमा प्रदान करें"।

आचार्य श्री ने तत्काल मुस्करा कर कहा, "मैं तभी आप लोगों को क्षमा करूंगा जब आप निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ग्रहण कर लें।"

इस प्रेरणाप्रद विनोद पर उपस्थित सब लोग मुग्ध हो गये।

संयम सुरक्षा के लिये सल्लेखना

[लेखक---श्री पं० नाथूलाल जी शास्त्री इन्दौर]

[संयमी के जीवन का अन्त यदि मधुर है तो पहले का सारा जीवन सफल माना जाता है। इस कसौटी पर विद्वान लेखक ने आचार्य महाराज की सल्लेखना को परखा है और यह निष्कर्ष निकाला है कि आचार्य श्री ने अपने समाधि-मरण द्वारा एक अद्भुत आदर्श उपस्थित किया है।]

हिंसा आदि पांच पापों का त्याग कर व्रतों का धारण करना, असावधान प्रवृत्ति को छोड़कर समितियों का पालन करना, कषायों का निग्रह करना, मन-वचन-काय की चंचलता का त्याग करना और पांचों इन्द्रियों पर विजय पाना संयम कहलाता है। गृहस्थ एक देश संयम और साधु सकल संयम का पालन करते हैं। संयम में पीड़ा परिहार और इन्द्रिय विजय मुख्य माना गया है।

'निवृत्तिरूपं यतस्तत्वम्' आचार्य अमृतचन्द्र की इस उक्ति के अनुसार जीवन में त्याग की ही प्रधानता है, परन्तु जहां त्याग है वहां उससे विपरीत वस्तु का ग्रहण अवश्य है। एक वस्तु का त्याग दूसरी वस्तु के स्वीकार रूप में माना गया है।

संयम और व्रत

संयम और व्रत पर्यायवाची हैं। जहां निवृत्ति की मुख्यता है वहां संवर का कारण जहां प्रवृत्ति की मुख्यता है वहां पुण्याश्रव का कारण व्रत माना गया है। अनर्गल प्रवृत्ति को रोकना ही व्रत या संयम का उद्देश्य है। यद्यपि मोक्ष के लिये निवृत्ति की ही प्रधानता हैं क्योंकि द्रव्य और भाव-कार्यों से आत्मा को पृथक् करने के लिये गुप्ति, जो कि संवर का प्रधान हेतु है, कही गई है। परन्तु शक्ति की ही हीनता से गुप्ति में असमर्थ साधु समिति का पालन करते हैं और समिति के पालन में भी अशक्त दश प्रकार धर्म को धारण करते हैं इस प्रकार अनुप्रेक्षा परिषहजय और चरित्र की अशक्ति वश उत्तरोत्तर पालन करते हुए साधु संवर द्वारा आगामी कर्मों को रोकते हुए निर्जरा और मोक्ष के अधिकारी बनते हैं। संवर और निर्जरा ही मोक्ष के हेतु हैं और निवृत्ति की ही वहां प्रधानता है वहां जो कुछ प्रवृत्ति होती है उसमें शुभाश्रव भी हो जाता है। यह सब सम्यग्दृष्टि जीवों के होता है।

संयमी सदैव बहिर्मुखीदृष्टि हटाकर अन्तर्मुखी दृष्टि रखता है। यह आत्मलीनता की ओर ही बढ़ता है।

सफल जीवन--मधुर अन्त

श्रावक के बारह व्रतों में आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य देवसेन तथा वसुनंदि आचार्य ने सल्लेखना को चतुर्थशिक्षाव्रत में गिनाया है। आचार्य समंतभद्र आदि ने बारह व्रतों के साथ सल्लेखना को जीवन की सफलता और तप का फल बताया है।

संयमी के जीवन का अन्त यदि मधुर है तो पहले का सारा जीवन सफल माना जाता है। बिना संयमी के जीवन का अन्त मधुर नहीं बन सकता क्योंकि अन्त समय में भयंकर रोग, वृद्धावस्था, उपसर्ग आदि के आ जाने पर स्मृति शक्ति आदि नष्ट हो जाने से बुद्धि काम नहीं कर पाती। उस समय तो पूर्व संस्कार, जिसका चिरन्तन अभ्यास द्वारा हृदय पर प्रभाव अंकित हो चुका है, काम आते हैं।

संयम का आराधान

संयमी व्यक्ति, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु, अपने संयम की रक्षा करने में सदा सावधान रहता है। वह प्रतिक्षण मृत्यु को सामने आती हुई देख कर संयम का आराधन करता है। संयम यद्यपि आत्मबल को बढ़ाने के लिये है। उससे आत्मा की अनंत शक्ति का विकास होता है। जैसे आतिशी काच में सूर्य की किरणें केन्द्रित होकर सामने की वस्तु को भस्म कर देती है उसी प्रकार एकाग्रचित्त संयमी चित्त निरोध द्वारा अपनी विभाव परिणति और कर्मपुद्गलों की अशुद्ध दशा को नष्ट कर नित्य, निरंजन, शुद्ध बन

जाता है संयमी की आराधना में निमित्त शरीरादि की भी वह रक्षा करने में असावधान नहीं रहता। 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' की उक्ति को वह चरितार्थ करने में उपेक्षा नहीं रखता। जब उसका शरीर संयम में साधक की जगह बाधक बनने लगता है तब संयम की रक्षा का ख्याल अधिक रखना अनिवार्य हो जाता है।

आत्मघात करने वाला व्यक्ति किसी दुःख या स्वार्थ में हानि होते देख कर ही आहारादि का त्याग करता है और उसकी कषायें उस वक्त तीव्र हो जाती हैं इसी कषायावेश में वह श्वास रोककर, जल में डूब कर, विष खाकर अग्नि लगाकर, शस्त्राघात कर या भोजन का परित्याग कर शरीर को नष्ट करने में उद्यत होता है। यह उसका आत्म-वध कहा जाता है जो उसे इहलोक में और परलोक में घोर दुःख का देने वाला होता है।

लेखक

इस प्रकार प्रतिक्षण जीवन की क्षणभंगुरता को जानता हुआ संयमी अपने अजर अमर आत्मा के स्वाभाविक गुणों के विकास के हेतु सतत प्रयत्न शील रहता है।

संयमी को जीवन के अन्त में शरीर छोड़ते वक्त ही समाधिमरण या सल्लेखना नहीं करनी होती, वरन् जीवन के प्रत्येक क्षण में अपनी आयु विनाश का खयाल कर सावधानी रखनी होती है, तब ही उसका अन्त सुधरता है। जिसका अन्त सुधरता है तो उसका जीवन भी सुधरा हुआ माना जाता है। पूर्व संस्कार ही अन्त में काम आते हैं।

अतः सल्लेखना संयम का एक अंग है और उसकी रक्षा के लिये सल्लेखना प्रेमपूर्वक संयमी धारण करता है। मरणसमाधि अतिशय दुर्लभ होती है। वह किसी भाग्यवान को ही प्राप्त होती है, जिसका फल शीघ्र मुक्ति है।

श्री १०८ चा० च० आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने सल्लेखना धारण कर इस काल में अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया है।

कृपालु शान्ति सागर जी

चले अब छोड़ कर हमको हमारे शान्ति सागर जी,
दयानिधि हैं। हितु सबके, कृपालु शान्ति सागर जी,
बड़े ही। भाग्य से हमने समागम आपका पाया,
सुना उपदेश हितकारी, सुमारग में हमें लाया,
ममत निज देह से छोड़ा तजा परिवार गृह सारा
लगाया ध्यान आतम का समक्ष जिन धर्म को प्यारा
घड़ी अब आगई हमको चले अब छोड़कर मुनिवर
हृदय हैं रो रहे सबके मिलेंगे कब हमें मुनिवर
अधम हम लोग हैं स्वामी हमारी सुध न विसराना
भटकते को दया करके निरन्तर ध्यान में लाना।

(११-६-५५ की कुंथलगिरी से पठित)

प्रेरणाप्रद संस्मरण
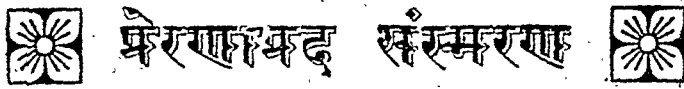
लेखक श्री ला० परसादीलाल जी पाटनी—देहली

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के सुयोग्य एवं निष्ठावान महामन्त्री लाला परसादीलालजी पाटनी उन सौभाग्यशाली महानुभावों में से हैं जिनको आचार्य श्री के बार बार दर्शन करने तथा उनसे धर्म एवं समाज की समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रस्तुत लेख में लालाजी ने आचार्य श्री से हुए अपने प्रथम मिलन से लेकर अन्तिम दर्शन तक के कई महत्वपूर्ण संस्मरण रोचक शैली में प्रस्तुत किये हैं।

प्रातः स्मरणीय श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज अब हमारे बीच में नहीं रहे। जब कभी मैं इस विषय पर सोचता हूँ, मेरा कंठ रून्ध जाता है और रोमांच हो आता है। कैसे अद्वितीय मानव-दीप रहे आचार्य श्री ! उनकी मात्र स्मृति ही कितनी प्रेरणा प्रद है ! भावी पीढ़ियाँ कभी यह विश्वास कर सकेंगी कि ऐसे लोकोत्तर तपस्वी, जनहित कारी मार्गदर्शक, धर्मोद्धारक, सरलता की प्रतिमूर्ति, उपसर्ग-तरंगों से निरन्तर प्रताड़ित होने पर भी कभी विचलित न होने वाले मनस्वी, इस जडवादी युग में हमारे बीच में रहे और हमारी इस पीढ़ी को उज्वल कर गये ? यदि आने वाली पीढ़ियां आचार्य श्री के अस्तित्व तक को कोरी कल्पना समझें तो आश्चर्य नहीं होगा।

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जब मैंने आचार्य श्री के प्रथम बार दर्शन किये थे। २८ वर्ष पहले की बात है। आचार्य श्री उत्तर भारत में प्रथम बार विहार करते हुए श्री सम्मेद शिखर जी पहुँचे थे। शिखर जी के दर्शनार्थ मैं अपने परिवार के साथ गया था। वहां पूज्य आचार्य महाराज के प्रति स्वभाविक श्रद्धावश उनके दर्शन करने पहुँचा।

प्रथम दर्शन में ही महाराज की शान्त, स्निग्ध मुखाकृति, सरल, सुमधुर वाणी एवं तपस्या के तेज ने मुझे मोह लिया। उस क्षण से मैं उनका भक्त बन गया। मैंने बड़े संकोच के साथ उनसे कुछ प्रश्न भी किये थे। महाराज ने बड़े ही स्नेह के साथ मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया। उनकी उस सरलता से मैं गदगद हो गया।

दो वर्ष बाद

इसके दो वर्ष बाद सोनागिर, मथुरा कोसी कलाँ आदि स्थानों के विहार के समय तथा मथुरा चातुर्मास के अवसर पर कई बार महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। ज्यों ज्यों उनसे परिचय बढ़ा, उनके प्रति मेरी श्रद्धा एवं भक्ति भी बढ़ती गयी।

कुछ समय बाद मैं महासभा का महामन्त्री बना तो समाज-सेवा का गुरुतरभार मेरे कमजोर कन्धों पर आ पड़ा। उसे निर्बाध रूप से वहन करने में यदि मैं सफल हो सका तो उसका पूरा पूरा श्रेय आचार्य महाराज के अनुग्रहपूर्ण आशीर्वाद एवं मार्ग दर्शन को है।

इन दिनों समाज के सामने अनेकों संकट आये। सुधार वाद का भूकंप समाज एवं धर्म की नींव को ही हिलाने लग गया था। ऊपर से बम्बई-कांड की आँधी प्रचण्ड वेग से चली तो मेरे जैसे सीमित शक्ति वाले धार्मिकों को यहां तक आशंका हो गयी कि अब समाज व धर्म की रक्षा करना संभव नहीं हो सकता।

उस घटा टोप अन्धकार में प्रकाश की एक ही किरण अनिमेष रूप से सत्पथ को आलोकित कर रही थी। सुधार वाद और कानूनी दाव-पेच के उस झंझावात में एक ही व्यक्ति अटल विश्वास-पर्वत के शिखर पर आसीन होकर सबको अभय-प्रदान कर रहा था।

"हमारा धर्म अभी अनेक हजार वर्षों तक अक्षुण्ण बना रहेगा—यह वीर वाणी है। इस पर विश्वास रक्खो।

कोई कानूक धर्म को लेशमात्र भी ह्रास पहुंचा नहीं सकता भयभीत न होओ !" आचार्य श्री की यह निर्भीक, स्थिर, ओजमयी वाणी हमारे मन में नयी ही स्फूर्ति, नये ही उत्साह और विश्वास का संचार कर देती थी ।

अन्त में वही हुआ जिसकी आचार्य श्री वार वार घोषणा करते रहे । धर्म की विजय हुई । कानून उसके मार्ग में रोधक नहीं बन सका यह आचार्यश्री की तपस्याकी विजय थी । धार्मिक विश्वास की विजय थी ।

उस अविचल तपस्वी के सम्मुख हम सब लोग नतमस्तक हो गये । लौकिक बुद्धि कुशलता एवं व्यवहार पटुता एक निर्लिप्त वीतराग की अटल श्रद्धा के सम्मुख नतशिर हो गयी ।

अन्तिम दर्शन

फिर अन्तिम दर्शन । कुन्थलगिरि की तपो भूमि पर, मरण को आमन्त्रण देकर, एकाग्र आत्मचिन्तन में लीन हो, महाप्रयाण की घड़ी की प्रतीक्षा करने वाले आचार्य श्री से मेरी अन्तिम अश्रुमय भेंट । मेरी आँखें सजल थीं, कंठ अवरूद्ध हो रहा था, जीभ लड़खड़ा रही थी, परन्तु कठोर व्रत से कृश आचार्य श्री का मुखमण्डल मधुर मुस्कान से प्रदीप्त था । बड़े ही स्नेह के साथ उन्होंने कहा, "बहुत लम्बे से आये !" मैंने अपने आने में विलम्ब का स्पष्टी करण करने के बाद पूछा, "महाराज, महासभा के लिए क्या आदेश है ?"

महाराज ने विना किसी हिचक के कहा, "महासभा भविष्य में भी धर्म की रक्षा एवं प्रसार का कार्य निरन्तर करती रहे जैसे वह अब तक करती आयी है ।धर्म के विरूद्ध किसी कार्य में वह प्रवृत्त न हो । बस, यही मेरा संदेश है ।"

बच्चों वाली बिल्ली

सल्लेखना आरम्भ होने से करीब एक मास पहले की बात है । आचार्य श्री कुन्थलगिरि की नीचे वाली गुफा में रहा करते थे । उन दिनों मध्यान्होपरान्त वह सामने के मन्दिर में बैठकर एकान्त ध्यान करते फिर गुफा में लौट आते । उनका दीर्घ चिन्तन का विषय सल्लेखना धारण ही था, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

एक दिन जब आचार्य श्री मन्दिर से गुफा को लौट रहे थे, तब कुन्थलगिरि क्षेत्र कमेटी के व्यवस्थापक बीडकर जी ने उनकी चरणवन्दना की ।

मधुर मुस्कान के साथ आचार्य श्री बोले, "मेरी स्थिति ठीक उस बिल्ली की सी है, जिसने अभी बच्चे दिये हों और उनको बचाने के लिए कभी यहां, कभी वहां छिपाती फिरती हो ।"

इस विनोद की गहराई पर बीडकर जी मुग्ध रह गये ।

इस अमर सन्देश को मैंने महासभा के मन्त्री की हैसियत से ही नहीं, अपितु व्यक्तिगत रूप से भी गांठ बांधकर रख लिया । आज भी महाराज की वह स्थिर वाणी मेरे कानों में गूंज रही है । जीवन-भर मुझे वह सन्मार्ग प्रदर्शित करती रहेगी, यह मेरी हार्दिक आशा एवं विश्वास है ।

उस महान अमर आत्मा की पावन स्मृति में मैं अत्यन्त विनम्रता पूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ ।

卐

श्रद्धांजलि

रचयिता—श्री पं० खूबचन्द शास्त्री

श्रीमान्योऽभूद्गणाधीशः सुज्ञोगुणगणाग्रणीः ।
गणनीयपदःसुश्रीःनाम्नाश्रीशान्तिसागरः ॥१॥

पंवृणोतिस्मवैराग्यलक्ष्मीर्जन्मान्तरानुगा ।
प्रशान्ताकृतिरद्वैताभूतिर्जैनेश्वरीसती ॥२॥

येनप्रवर्त्तितासाध्वीसृष्टिरद्यकलौयुगे ।
अष्टाविंशगुणादर्शाश्रेयोमार्गानुगामिनी ॥३॥

मथामाविभोवच्छेदाभक्तिभारेणनिर्भरः ।
कुर्वतेस्म नमो यस्मै सद्योमंगलमूर्तये ॥४॥

यस्मादासाद्यसम्यक्त्वंसंयमं देशसंयमम् ।
नियम्यसंसृतिसारं सन्तः प्रापुः परं पदम् ॥५॥

यस्याद्यापिगुणाः पूताः पवित्रहृदयैर्जनैः ।
स्मर्यन्तेसाधुसद्वृत्ततपः प्रशमवर्णने ॥६॥

यस्मिन्नादर्शसंसिद्धसमाधौ निरतिक्रमे ।
ऐतिहासिकतां यातामृतिः सल्लेखनाभिधा ॥७॥

तस्याद्य गणिनःपादपद्मेषुक्रियते गुरोः ।
सत्प्रणामगुणाध्यानपूर्वाश्रद्धांजलिर्मया ॥८॥

काश ! उन्हें हम समझ पाते.........!

[लेखक—श्री सोहनलाल जी सवलावत, पलासबाड़ी]

जिनका प्रत्येक कार्य अद्भुत आकर्षण व महान व्यक्तित्व का केन्द्रस्थल रहा है, जिनका नाम स्मरण करते ही हृदय भक्ति से भर आता है उन आचार्य श्री की गौरव गाथा तो उनकी मुखाकृति पर ही अंकित थी। लिखने की चीज़ थी नहीं वह, वह तो मनन व अध्ययन की चीज थी। काश ! हम उन्हें ठीक २ समझ पाते.........!

—सर्पराज का उपसर्ग जिनकी तपस्या में खलल न डाल सका, व्याघ्रराज का आगमन जिन में भय का संचार न कर सका, असंख्य चीटियों का घंटों—काटना जिनके लिये मानसिक अशांति का कारण न बन सका, सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत के लम्बे उपवास के समय ज्वर का प्रकोप जिनको शिथिलाचार की ओर ठेल न सका, कंचन और कामिनी जैसे मोहक पदार्थ जिन्हों के संयम साधना में बाधक न बन सके, उन योगिराज की आत्मा कितनी महान थी, यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है !

आज का मानव जहाँ जमाने की दुहाई देकर पग २ पर शिथिलता की ओर बढ़ता चला जा रहा है, ईमानदारी व सच्चाई को ताक में रखकर धन व ऐश्वर्य प्राप्ति का माप दंड—नैतिकता की जगह एकमात्र धन ही रह गया है, वहाँ आचार्य श्री का साधनामयी जीवन हमें सही राह की ओर बढ़ने के लिये प्रेरणा प्रदान करता है।

दर्शनों का सौभाग्य

इन पंक्तियों के लेखक को आचार्य महाराज के दर्शन करने का कई बार सौभाग्य मिला, जब भी दर्शन किये, परम शाँति प्राप्त हुई। आपका भाषण सहज, सरल भाषा में होने पर भी अद्भुत प्रभाव डालने वाला होता था, शिथिलाचारी जीवन बिताने वालों को—आप दया के पात्र समझते थे। जिस सरल सम्बोधन द्वारा उन्हें सदाचारी बनाने का आग्रह आप करते, सामने वाला व्यक्ति मोम हो जाता। तत्क्षण ही उसे अपनी हीनता का अनुभव हो उठता। आपके उपदेश को हृदयंगम कर कठिन व्रत पालने के लिये भी स्वेच्छा से तैयार हो जाता। अपने जघन्य-कृत्यों से ऊब कर आत्म हत्या के लिये—तत्पर व्यक्तियों को आपका उपदेश वरदान सिद्ध हुआ। यही कारण है, जो आचार्य श्री अपने जीवन काल में हजारों व्यक्तियों को चारित्रवान बनाने में समर्थ हो सके। मुनि दीक्षा जसे कठिन व्रत लेने को आज के जमाने में कोई तैयार भी हो सकता है, यह कल्पना से परे का विषय था; वहाँ आपके द्वारा दीक्षित बीसों मुनिराज यत्र-तत्र भ्रमण कर जैन धर्म का जबरदस्त प्रचार करते हुए नजर आ रहे हैं।

अन्तिम साधना का २० वां दिन

आचार्य श्री की वह अंतिम-साधना जिसे समाधिमरण कहा जाता है, अत्यन्त ही चमत्कार पूर्ण रही। अन्न जल परित्याग किये बीस दिन बीत जाते हैं वृद्धावस्था है, शरीर क्षीण हो चला है, फिर भी जिन्हों की मुखाकृति पर पूर्ण शाँति नज़र आरही है, न विकल्प है, न दीनता। आत्म-ध्यान में पूर्ण सतर्क चेतनामय उन्होंकी अलौकिक आभा को देखकर सभी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

—हर सुबह पहाड़ पर जिनाभिषेक के समय गंधोदक के लिये जाना, धार्मिक चर्चाओं में भाग लेना, पूर्ण शाँत बने रहना, सेवा शुश्रुषा न कराने का नियम लेकर पूर्ण ध्यानस्थ अवस्था में सिद्ध भगवान का नामोच्चारण करते हुए—पूर्ण शाँति के साथ प्राणों का विसर्जन करना—आपकी अद्भुत प्रतिभा का द्योतक है।

धन्य है, ऐसे ऋषिराज। धन्य है।

तपोवीर आचार्य श्री

[लेखक—श्री १०५ क्षु० ज्ञानभूषण जी]

चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज, इस युग के एक अद्वितीय पथ-प्रदर्शक महर्षी हो गये हैं जिन्होंने अपने जीवन-काल में अनेकानेक उल्लेखनीय कार्य किये और हम सरीखे पामरों के सम्मुख, मानव जीवन का परमादर्श उपस्थित कर गये हैं। जिनका कि पूर्ण विवरण दिया जावे तो एक बड़ी पुस्तक बनसकती है।

आचार्य श्री ने अपने निष्कलंक जीवन में इस संसार को यह बतला दिया कि—एक अध्यात्म पथ का पथिक, अहिंसा का सच्चा पुजारी आदमी, अपनी जीवन यात्रा में आ उपस्थित होने वाली दुरूह कठिनाई को भी किस तरह पार करके अपने ध्येय को प्राप्त करने के लिये अग्रसर होता है। इतना ही नहीं अपितु अन्त में उन्होंने यह भी कर दिखलाया कि एक शान्ति प्रिय मनुष्य जिस प्रकार निराकुलता से जीवित रहना जानता है वैसे ही निर्भीकता के साथ मरना भी वह जानता है। जिस मौत का नाम सुन कर ही यह दुनियादारी का जीव थर-थर कांपने लगता है उसी मृत्यु से वह सहर्ष लोहा लेकर विजय प्राप्त करता है।

उन्होंने अपने तमाम जीवन को आत्म साधन में ही विताया, इस जीवन के हरेक समय को बहुमूल्य मानकर किसी भी समय को व्यर्थ न जाने दिया। एवं उनकी उस आत्मसाधना में सहयोगी हो रहने वाले अपने इस शरीर को भी उन्होंने सौहार्द भाव से पूर्ण सम्भाल के साथ निभाया। किन्तु जबकि यह शरीर उनके उपयुक्त मार्ग में कण्टक रूप बन गया, दृष्टि कम हो जाने के कारण मुनिचर्या में बाधक हो गया, तो "माध्यस्थभावं विपरीतवृत्ती" इस उक्ति को ध्यान में लेकर उसकी तरफ से तटस्थ होकर अपने अभीष्ट मार्ग पर सुदृढ़ रहे। इस नश्वर शरीर के मोह में मुनिचर्या के विरुद्ध आहार ग्रहण करके अपने चिर सञ्चित तपः स्वरूप धन को व्यर्थ खो देना उचित नहीं समझा अतः निराहार रह कर प्रसन्नतापूर्वक शान्ति के साथ इस शरीर से किनारा कर गये।

इस पर सर्व साधारण ही नहीं बल्कि कोई कोई विज्ञ कहलाने वाले भाई भी ऐसी शङ्का करते हैं कि स्वामी जी ने ऐसा क्यों किया, क्योंकि यह तो आत्मघात हुआ जो कि महापाप माना गया है। परन्तु उन महानुभावों को सोचना चाहिये कि—आत्मघात तो किसी भी प्रकार के कषायावेश में आकर विष शस्त्रादि के द्वारा हठात् इस शरीर को बरवाद करने का नाम है। परमागमके—

"उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायांच निःप्रतीकारे।
धर्मायतनु – विमोचन–माहुः सल्लेखनामार्याः

इस सूत्र के अनुसार—अपने ध्येय के अनुकूल आहार प्राप्त करने में रुकावट आ जाने आदि के अवसर पर शान्ति पूर्वक अपने कर्तव्य में संलग्न होना तो सल्लेखना है जो कि एक आत्म साधक का अनिवार्य आवश्यक कर्तव्य है। जन्म भर की तपस्या का, अपनी कर्तव्यनिष्ठा का फल स्वरूप समझा गया हुआ है। अगर इस सल्लेखना को भी आत्मघात कह कर इससे उपेक्षा की जाय तो फिर तो त्याग तपस्या का या कर्तव्य पालन का कोई भी मूल्य नहीं रह जाता। फिर तो हर तरह से शरीर का दास होकर रहने में ही बहादुरी समझी जावेगी जैसा कि आम संसारी प्राणी समझ ही रहे हैं।

किन्तु लोक ख्याति - अख्याति, आपत्ति - विपत्तिकी कोई भी परवाह न करके अपने कर्तव्य पथ पर अटल रहे, मरण तक से भी नहीं डरे, इसी में बलिहारी है जैसे कि श्री शान्तिसागर जी महाराज ने किया है। और हमारे लिये परमादर्श उदाहरण बन गये हैं। जो बातें हम किताबों में सुना करते थे उन्हें स्पष्ट कर दिखला गये हैं। यद्यपि महाराज श्री इस भौतिक शरीर को यहां छोड़ गये किन्तु अपने यशः शरीर को तो सदा के लिये अपने साथ ही रखे हुये हैं जिसके कि द्वारा वे अमर हो रहे हैं। धन्य है ऐसे महात्मा जी को। मेरा तो उनके चरणों में बार-बार प्रणाम है और हर एक ही आत्मार्थी को भी उनका कृतज्ञ होते हुए उनके प्रति श्रद्धांजली अर्पित करना चाहिये।

हम से आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया

श्री सुधेश जैन नागौद—

हमसे आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया।
सौम्य सत्य की प्रतिकृति सा ही 'सत्यवती' ने जिसको जाया।
खिला 'भीम' ने जिसे गोद में, भीम सदृश वलवान वनाया।
'भोज ग्राम' ने जिस उदार को भोज सदृश ही त्याग सिखाया।
और 'सिद्धसागर' से जिसने आत्म सिद्धि का मोती पाया॥
वही सत्य, वल, त्याग सिद्धि का एक मात्र शृंगार छिन गया।
हमसे आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया॥१॥

जिसके मन पर फहर न पायी मनसिज की भी मीन पताका।
जिसके सम्मुख साहस छूटा रति की भी प्रत्येक कला का॥
विफल वासना ने हो समझा जिसको धरती का ध्रुवतारा।
एवं जिस निर्मोही से सुख भोगों का सम्मोहन हारा॥
वही जितेन्द्रिय इन्द्रिय संयम का अनुपम अवतार छिन गया।
हमसे आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया॥२॥

जिसकी वास-भूमि का वन्दनवार वनी थी ललित लताएँ।
जिसकी सुन्दर सेज वनीं थीं उत्सुकता से वन्य गुफाएँ॥
जिसे अहर्निश ही नहलातीं थीं रवि-किरणें, चन्द्रकलाएँ।
और स्वयं ही जिसके तन के वसन वनी थीं दशों दिशाएँ॥
वही विकृति से शून्य प्रकृति का अद्वितीय आधार छिन गया।
हमसे आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया॥३॥

जिसे इन्द्र का वैभव भी तो मरुस्थली की धूल सदृश था।
जिसे मार्ग का शूल नुकीला नन्दन वन के फूल सदृश था॥
जिसे कण्ठ में लिपटा, विषधर, मोहक मृदुल मृणाल सदृश था
जिसे सिंह भी पास खेलते हुए प्रशान्त मराल सदृश था॥
वही विरागी वीतरागता का दुर्लभ अधिकार छिन गया।
हमसे आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया॥४॥

मोक्ष मार्ग के उस राही के जाने का क्या शोक मनाना।
उसको तीनों लोक त्याग कर पावन सिद्धशिला तक जाना।
अतः कामना करें कि पथ में क्षण भर रुकें न वह निर्मोही॥
मोक्ष प्राप्ति के लिये उसे भव धरने पड़ें एक या दो ही
और एक दिन दिग्गज देखें उसका सव संसार छिन गया।
हमसे आज हमारे युग का सुन्दरतम उपहार छिन गया॥

स्वर्णिम क्षण

लेखक—श्री श्रीचन्द जी जैन, पलासबाड़ी

—:o:—

"घनुनन......"टेलीफोन की घंटी घनघना उठी। रिसीवर उठाया "जी, कहिये" मेरा प्रश्न था-जिज्ञासा पूर्ण।

"मैं फलां गद्दी से बोल रहा हूँ-आप लोगों के लिए वम्वई जानेवाले हवाई जहाज में सीटें बुक करा दी गई हैं" उधर से आवाज आयी।

"धन्यवाद" चोंगा रखते रखते मैंने कहा।

उन दिनों मैं कलकत्ता में था। व्यापार के सिलसिले में वोम्वे जाना था। मेरे साथ और भी दो तीन महानुभाव इसी उद्देश से जा रहे थे।

प्रात: काल का समय, मौसम सलौना था। अंशुमांसु की स्वर्णिम किरणों की प्रभा चारों ओर छितरायी हुयी थी। घड़ी ने आठ का डंका दिया, इधर प्लेन का इंजन घरघराहठ करता आगे वढ़ा। शैल, सरिता, वन-उपवन को लांघता हुआ, हमारा जहाज उड़ा जा रहा था वम्बई की ओर।

यह शान्ताक्रुज है इंडिया का नामी हवाई अड्डा। पांच घन्टे की लगातार सफर से यद्यपि कुछ थकावट नजर आ रही थी, सभी के चेहरों पर। फिर भी हम सभी प्रसन्न थे, अपने को इस नये शहर में पाकर और वह भी हिन्दुस्तान के नामी शहरों में प्रमुख।

योगीराज आचार्य श्री शान्तिसागर जी यहां से कुछ दूरी पर स्थितनासिक शहर के सन्निकट श्री गजपन्था तीर्थ क्षेत्र पर विराजमान हैं यह जानकारी हमें उपलब्ध हुई—वहाँ के एक जैन श्रावक के मुखार–विन्द से। दिल वाग वाग हो उठा-यह सुनकर। जीवन के वीस वसंत व्यतीत हो चुके थे फिर भी सच्चे साधु के संसर्ग में आने का मौका अप्राप्त ही रहा। तमन्ना थी वहुत अरसे से, आज उसे साकार होने की कल्पना में वदन खिल उठा। मन ने कहा—अरे पगले, अव किस उधेड़बुन में फंसे हुये हो, शुभस्य शीघ्रम्–। निश्चित समझो यह सुनहला मौका पुन: प्राप्त होना दुर्लभ है। शान्ति-सुधा वरसाने वाले श्री शान्तिसागर जी के सान्निध्य में आने का सौभाग्य विरलों को ही मिलता है।

कार द्वारा वम्वई से नासिक और वहां से श्री गजपन्था तीर्थक्षेत्र पर पहुँचे। मार्ग में अधिक समय व्यय नहीं हुआ फिर भी जो गुजरा–वह भी एक युगसा प्रतीत हो रहा था, उत्सुकता जो लगी हुयी थी योगिराज श्री के दर्शनों की। नैनों में तो उनकी एक काल्पनिक आकृति ही उतर आयी थी।

प्रथम दर्शन

दिल धड़क रहा था! जीवन में प्रथम अवसर था जव मैंने अपने को महान श्रमण के समक्ष पाया। उनकी ओर अवलोकन मात्र से ही आत्मा में एक शान्ति की लहर दौड़ पड़ी। हृदय गद्गद हो उठा। त्याग और तपस्यामय तपोमूर्ति की जैसी कल्पना मेरे हृदय समायी हुई थी– आश्चर्य, महान् आश्चर्य। सचमुच मैंने उन्हें उससे भी वढ़कर पाया। दीर्घ ललाट, वदन पर स्मितहास्य, विस्तीर्ण वक्ष:स्थल, लम्वी वाहें युक्त सौम्य मूर्ति पर प्रथम दृष्टिपात से ही इन पंक्ति के लेखक ने अपने को नत मस्तक पाया उनके श्री चरणों में यह कहते हुये "नमोस्तु महाराज"। उनका आशीर्वाद मूक था–फिर भी हमारे जैसे प्राणियों के लिये उतना ही वहुत था।

निस्सन्देह योगिराज के सान्निध्य में जो चन्द क्षण व्यतीत हुये वे अनमोल थे, स्वर्णिम थे। रोम २ पुलकित हो उठा उनकी चरण धूलि पाकर। सतत् साधना से उनके मुख श्री पर कठोर संयम एवं आत्मविश्वास की

निराली छटा प्रस्फुटित हो रही थी। उनकी मुखाकृति पर जो तेज विद्यमान था—वह अलौकिक था। जीवन-क्षेत्र में हम एक नहीं अनेकों दिग्गज विद्वानों को मिलने का या उनकी विद्वत्ता की कीर्ति सुनने का मौका पाते हैं लेकिन मुझे यह कहते हुये आत्म सुख होता है कि महाराज श्री ने जो करुणा प्राणी मात्र के लिये हृदयंगम कर रक्खी थी वैसी करुणा न तो किसी में देखी-सुनी और न पायी। अतीत का इतिहास हमें अलवत्ता यह जानकारी कराता है कि अति प्राचीन समय में ऐसे धीर-वीर जितेन्द्रिय हुये थे, परन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में जहाँ अपने स्वार्थ के वशीभूत मानव मानवता का नाश करने पर तुला हुआ है, वहां प्राणी मात्र के प्रति दया के सिद्धान्त को साकार रूप देना योगीराज सदृश विरले ही महात्माओं का कार्य है, जो स्तुत्य है।

चारित्र की कसौटी पर जहां आज का मानव अपने को अध:पतन के गर्त्त में गिरा हुआ पाता है, महाराज श्री का जीवन प्रशंसनीय रहा है। किशोर अवस्था से ही जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत को पाला वे बाल ब्रह्मचारी सत्य अहिंसा, अपरिग्रह आदि जितने भी उच्च आदर्श हैं, निस्सन्देह अपने जीवन में उतारने में सफल रहे हैं। ऐसा कहते हुये हमारा सीना फूल उठता है।

आघातकारी तार

समय की गति बड़ी वेगवान है। आज और कल यों कहते कहते न जाने कितना काल व्यतीत हो जाता है। हां तो उपरोक्त घटना को भी पांच वर्ष से भी अधिक गुजर गये।

मध्यान्ह का समय रवि अपनी प्रखर किरणों से जग को संतप्त कर रहा था, चहुं ओर सन्नाटा सा छाया हुआ था, आंखों में मेरे तन्द्रा समा रही थी-ठीक उसी क्षण-

"तार है बाबू जी" तार वाहक की यह ध्वनि जा टकरायी मेरे कानों से। सोचा होगा-व्यापार सम्बन्धी—लेकिन स्तब्ध रह गया महामन्त्री जी के इस तार को पाकर "महाराज श्री ने सल्लेखना व्रत धारण कर लिया है"—चारों तरह के अन्न त्याग की कल्पना मात्र से गात्र-सिहर उठा। जैन समाज का सूर्य पश्चिम दिशा के अन्तिम छोर पर था। यह तो सुन रक्खा था कि महाराज

> ## अमावस्या भी शुभ दिन
>
> १७ अगस्त, १९५५ को यमसल्लेखना की घोषणा के बाद आचार्य श्री ने पहाड़ के ऊपर की गुफा में जाने की इच्छा प्रकट की
>
> "आज अमावस है, महाराज! आज ऊपर जाना ठीक नहीं," भट्टारक जिनसेनजी ने कहा।
>
> महाराज बोले, "जब महावीर भगवान अमावस के दिन ऊपर गये (मुक्ति प्राप्त की) तो अमावस अशुभ दिन कैसे हो सकता है?"

श्री के नेत्रों की ज्योति शनैः शनैः कम हो रही है फिर भी इतना शीघ्र यह दर्द भरा संवाद सुनने को मैं कतई तैयार नहीं था। नियति प्रवल है···उफ। एक लम्बी उच्छ्वास छोड़ते हुये मैं······ठगा सा रह गया।

आंखें सजल थीं। हाय यह दुर्दिन भी देखना पड़ा। इस नश्वर संसार से आचार्य श्री हमें असहाय विलाप करते हुए—छोड़कर, विदा ले गये। विद्युत की नाईं यह संवाद विश्व भर में फैल गया। दिल हाहाकार कर उठा—उनकी पावन स्मृति में। तमन्ना दिल की दिल में ही रह गई—उनके अन्तिम दर्शन की। जैन समाज के सिवाय दूसरे समाज के व्यक्ति भी जो इनके सम्पर्क में आये, मर्माहत हुये। आज वे हमारे पास नहीं, फिर भी जब जब उनकी स्मृति आती है, उनके प्रयाण से दुःख एवं उन्होंने जो महान् कार्य किये उससे सुख की अनुभूति होती है। सोचता हूँ मानव पीछे पछताता है—महान आत्माओं के सम्पर्क से वंचित रहने की वजह से, लेकिन अफसोस जब वे महात्मा मौजूद होते हैं—उनकी उतनी कीमत क्यों नहीं आंकी जाती।

काश हम उनके पद चिन्हों का कुछ अंशों में भी अनुसरण कर सकें······।

आचार्य श्री के चरणों में

[रचयिता—श्री राजेन्द्रकुमार कुमरेश चन्देरी]

विश्ववन्द्य, हे महातपस्वी, ऋषिवर ! तुम्हें प्रणाम !

बेसुध भूल रहा था मानव अपने पन का ज्ञान
प्रतिपल यह रत था विलास में विषयों से मियमाण।
जीवन का उद्देश्य न समझा चला विपथ की ओर
नित नवीन आकांक्षाओं की ले उर में मुस्कान।
किया प्रकाश तुम्हीं ने पथ पर बन उद्दीप अविराम।
विश्ववन्द्य, हे महा तपस्वी ऋषिवर ! तुम्हें प्रणाम ॥

माया छोड़ी ! ममता तोड़ी ! किया सुखों का त्याग
जगजीवन में सार न पाया अपना लिया विराग।
वीतरागता के महत्व का प्रतिक्षण रक्खा मान,
कठिन साधना से समाज के धोये तुमने दाग।
करते रहे निरन्तर मुनिवर तुम जन-हित का काम ॥
विश्वन्द्य, हे महातपस्वी, ऋषिवर ! तुम्हें प्रणाम ॥

प्रलोभनों से हुये नहीं तुम कभी स्वप्न में ग्रस्त
कर न सका भयभीत जगत का कोई भी भय त्रस्त
विस्मित है जग आज तुम्हारी देख अपरिमित शक्ति,
स्वागत तुमने किया मृत्यु का स्वयम् बढ़ाकर हस्त.
जग का नित सन्ताप मिटाये एक तुम्हारा नाम।
विश्ववन्द्य हे महा तपस्वी ऋषिवर ! तुम्हें प्रणाम ॥

आचार्य श्री और महिला समाज

लेखिका---पं० ब्र० सुमतिबाई शहा न्याय काव्यतीर्थ
(संचालिका, श्राविकाश्रम, शोलापुर)

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आचार्य श्री ने नारी जाति का उद्धार किया। वह सभी स्त्रियों को मातृ सदृश मानते थे। जैन नारियों के लिये वह अमूल्य गुरु-निधि थे। कोई जैन नारी उनके जीवन से अनभिज्ञ या अपरिचित नहीं हो सकती।

लेखिका

मेरा सौभाग्य कि वालिकावस्था में ही आचार्य श्री के दर्शन एवं उपदेश की श्रम-लभ्य निधि मुझे प्राप्त हो गई थी। "ब्राह्मी-सुन्दरी को अपना आदर्श बनाओ," यह उनका उपदेश था। उस समय में उस उपदेश के अमृतमय सार को ग्रहण नहीं कर सकी। परन्तु अब देखती हूँ कि गुरुदेव के आशीर्वाद एवं प्रेरणा के ही बल पर मैं जीवन-पथ पर पग-पग आगे बढ़ रही हूँ। उनका आशीर्वाद ही वह दीपक है जो मेरे ही नहीं, अन्य अनेक देवियों के भी जीवन-मार्ग को आलोकित कर रहा है। संघपति (श्री गेन्दनमल जी की कन्यारत्न गुणमाला देवी, श्राविकाश्रम की स्नातिका सुश्री विद्युल्लता देवी आदि कुमारियों को ब्रह्मचर्य जैसा महान रत्न सम्हालने के लिए समर्थ और योग्य बनाना आचार्य श्री के ही पुण्य प्रसाद की महिमा थी।

अखिल भारत में आचार्य श्री का जो विहार हुआ, उससे नारी समाज को अनूठा लाभ हुआ। आचार्य महाराज स्त्रियों को ही धर्म का आधार मानते थे। अतः धर्म-संरक्षण के लिए उन्होंने पहले नारी को ही प्रवृत्त किया। नारी जाति में मिथ्यात्व की जो छाया थी उसे दूर कर उसे सम्यक रूप में परिवर्तित करने का कष्टतर कार्य आचार्य श्री ने ही किया था। देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान, इन षट्क्रियाओं में महिला समाज को निष्णात कर गृहस्थ धर्म की जड़ मजबूत करने का श्रेय आचार्य श्री को ही है।

विधवाओं का उद्धार

आचार्य श्री के प्रभावमय चारित्र्य के प्रसाद से जैन विधवा-समाज का जो कायापलट हुआ, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य है। जब घर के भोगमय वातावरण में विधवा नारी निरालंबन होकर कीचड़ में धंसी हुई थी, तब आचार्य श्री ने उसे धर्म का आलम्बन ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। विधवा नारी के दुख को अपनी मधुर उपदेशमय वाणी से शान्त किया। बड़े घर की वैधव्य-पीड़ित बेटियों को अपने समान दुखिया नारियों की सेवा करने के लिए उन्होंने प्रेरणा दी। पूज्य मां श्री चन्दाबाई जी, श्री धर्मचन्द्रिका कंकूबाई जी, महिलाबेन मगनबाई जी तथा शोलापुर में राजुलमती जी आदि महिलाओं को श्राविकाश्रम स्थापित करने की प्रेरणा तथा स्फूर्ति आचार्य श्री से ही मिली थी।

इस तरह कुमारी, गृहणी, विधवा तथा त्यागी महिलाओं पर आचार्य श्री का बड़ा भारी ऋण है। इस ऋण का बोझ अंशतः भी चुकाने के लिए नारी को चाहिये कि वह आचार्य श्री का वही उपदेश--"डरो मत, संयम धारण करो" शिरोधार्य कर क्रियान्वित करना होगा।

भारतवर्ष की दिगम्बर जैन महिलायें आचार्य श्री के परोक्ष चरणारविन्द में जीवन के अन्तिम क्षणतक श्रद्धांजली समर्पित करती रहेंगी।

श्रद्धांजलियां
एवं
संस्मरण
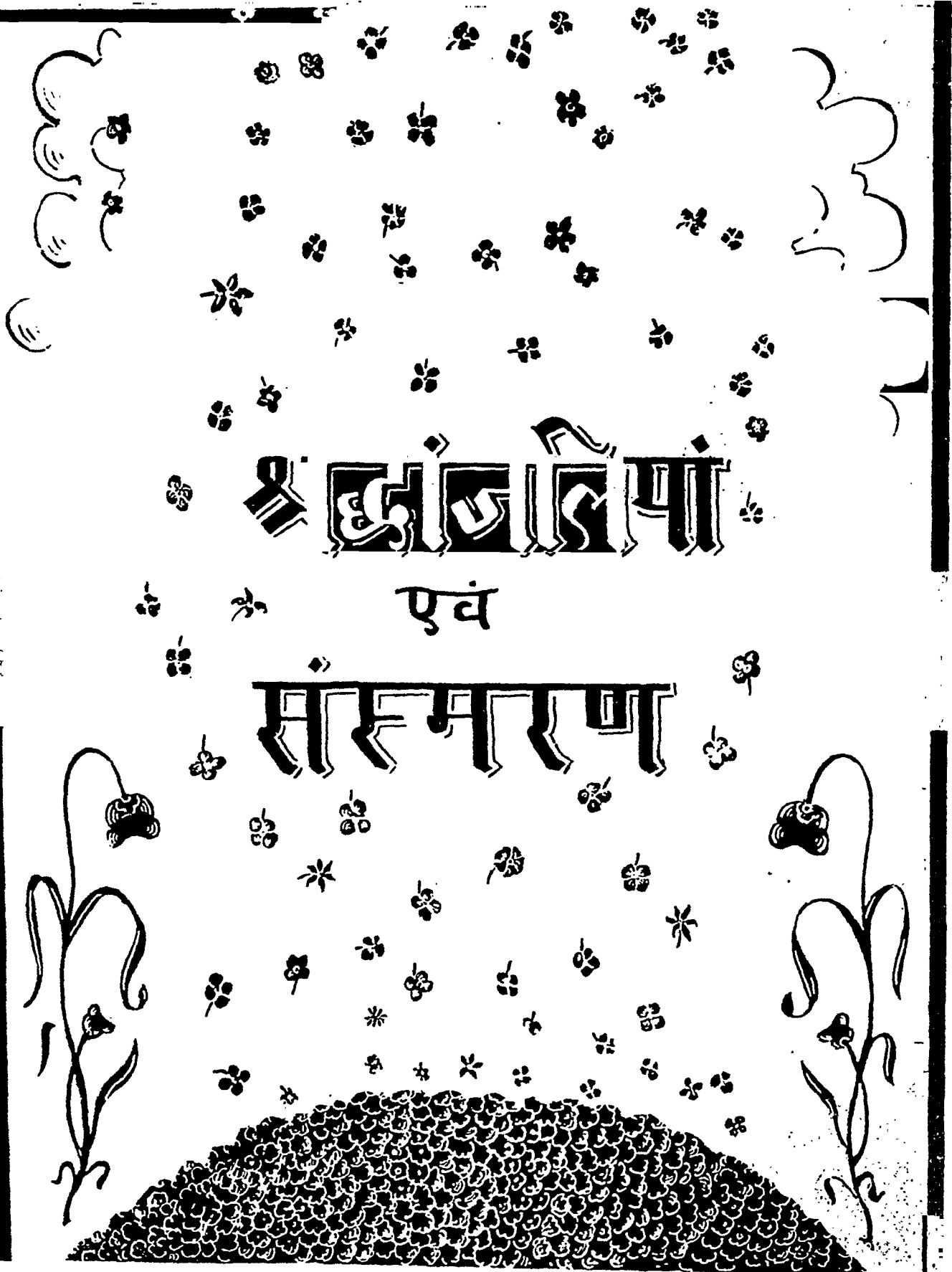
संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः

रचयिता—श्री १०५ क्षुल्लक ज्ञानभूषण जी महाराज (भूतपूर्व पं० भूरामल)

किलात्मघातःक्रियते तु देह-भ्रताऽपमानाद्यनुभूय चेह ॥
संन्यस्यतेशान्तिमताऽऽत्मनाऽतः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥१॥

नाशोन्मुखं नाम शरीरमेतन्निक्षिप्यते तादृगुपक्रमेतत् ॥
हृषीकनिःस्वान्तनियंत्रणातः सन्यास एषोऽस्तुकिमात्मघातः ॥२॥

किन्त्वात्मनोग्लानिवशेन घातस्तनोः सुचारोः क्रियतेवतातः ॥
उद्विज्यसञ्जीवनतोऽयिमातः सन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥३॥

विषादिनाऽङ्गक्षतिषाञ्जघन्यः सम्रात्मघाती पुनरेति धन्यः ॥
देहेविरुद्धेऽमुमुदारतातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥४॥

संन्यासिनारत्नकरण्डकस्ये--वाङ्गस्यरक्षाक्रियते स्ववश्ये ॥
नोचेत्तु रत्नान्यभिरक्षताऽतः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥५॥

शाकाशनीशाकविधाऽपलापे प्रवर्तते किन्नुपलेऽपि पापे ?
म्रियेतधैर्येण निरन्नतातः संन्यास एषोस्तु किमात्मघातः ॥६॥

स्वसम्विदः सम्वहनं विधानेऽपिश्लाघ्यतामेतिकिलानुजाने ॥
यो गीयते योगिषु संहितातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥७॥

यत्रात्महन्त्रे घृणया धिगस्तु संन्यासिने किन्तु नमोऽङ्गिनस्तु ॥
सर्वत्र नित्यं मृदुभावनातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः ॥८॥

गुरु – चरणों की देन

श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के उत्तराधिकारी श्री १०८ आचार्यवर्य वीरसागर जी की श्रद्धांजली

पूज्यपाद गुरुदेव श्री १०८ आचार्य वर्य शांतिसागर जी महाराज को जिन्होंने जीवनकाल में परखा और अपनाया उन्होंने मानव-जीवन को सफल कर लिया है। मुझ द्वारा गुरुदेव का शिष्यत्व स्वीकार करने में वैराग्य के अतिरिक्त उनका परमोच्च और महानतम व्यक्तित्व भी कारण था। मैंने गुरुदेव को बहुत ही निकट से देखा उनके बराबर अन्य महापुरुष अपनी आयु में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मुझ पर यह सारी देन गुरुदेव के चरणों की ही है।

मुझे सबसे बड़ी व्यथा यह है कि गुरुदेव की सल्लेखना एवं अन्त बेला में मैं निकट सम्पर्क में न रह सका और न दर्शन प्राप्त कर सका।

श्री १०८ आचार्य वीरसागर जी महाराज

मैंने हजारों की संख्या में एकत्रित जनता की प्रार्थना पर भी जिस आचार्य पद को स्वीकार नहीं किया उसे इस ८१ वर्ष की अवस्था में गुरुदेव का प्रसाद समझ कर ही अनिच्छा होते हुए भी स्वीकार करना पड़ा। गुरुदेव की आज्ञा का उलंघन केसे करता। इस स्वेच्छचारी युग में मुझ जैसे अपुण्य शाली से इस पद का निर्वाह कैसे होगा, इसकी मुझे चिंता है।

मैं चाहता हूँ कि समस्त धार्मिक विवेकी प्राणी गुरुदेव के पदानुसारी बन इस परम-दुर्लभ मानव जीवन को सफल बनावें। परमनिःश्रेयक गुरुदेव की मेरी मनसा, वाचा कर्मणा श्रद्धांजलि है।

विनम्र श्रद्धांजलि

[श्री १०८ आचार्य नेमिसागर जी महाराज]

卐

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्रद्धेय गुरुदेव श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज की पुण्य स्मृति में जो आप जैन गजट का विशेषांक निकाल रहे हैं यह आपकी गुरु-भक्ति जीवन्त उदाहरण है।

पूज्य आचार्य श्री का स्मरण होते ही यह हृदय श्रद्धा से गद्गद हो उठता है। कल्पना सम्भव नहीं, वह जैन-धर्म मन्दिर के कितने सुदृढ़ एवं सारवान् महान् स्तम्भ थे। धर्म प्रभावना तथा लोक-कल्याण कामना के तत्व उनके जीवन में घुल-मिलकर एक रूप हो गये थे। भौतिक भूख से बुभुक्षित इस युग को वह ऐसा अमर संदेश दे गये, जिससे आत्म-बोध प्राप्त करके विश्व का प्रत्येक प्राणी शाश्वत शांति के पक्ष का पथिक बन सकता है।

मेरी यही कामना है कि मैं उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर अपने परमवीतराग-रूप को प्राप्त कर सकूं। पूज्य गुरुदेव के चरणों में कोटि-कोटि विनम्र-श्रद्धांजलि।

गुरुवर्य का महान उपकार

परमपूज्य बालब्रह्मचारी मुनि देशभूषण जी महाराज लिखते हैं:—

प्रभो! आप हमको छोड़कर चले गये। आपने जो मार्ग बताया है प्रत्येक भव्य जीव उसी मार्ग में लगे हुए हैं। आपके सामने हमें किसी प्रकार की बाधा नहीं थी; लेकिन आपके चले जाने के बाद जिस प्रकार बिना पानीके मछली तिलमिला जाती है ठीक उसीप्रकार आपके बिना समाज अपनेको असहाय अनुभव करता है। आपने भगवान् महावीरस्वामीके शासन की महान प्रभावना की, अपने निर्मल चरित्र और महान आचरण द्वारा जनता के हृदय में उत्कृष्ट साधु धर्म को प्रत्यक्ष कर दिखाया। आज जो जैन धर्म की भावना जन साधारण में दिखाई देती है वह आपके चरणों का ही प्रभाव है। आपके प्रभाव के ही कारण आज कल साधु, त्यागियों की परम्परा दिखाई देती है। प्रभो! आपके महान् उपकार को हम कभी भी नहीं भूल सकते। हमारी आन्तरिक भावना है कि स्वामिन आप शीघ्र कर्मों का नाशकर मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्राप्त हों। मैं मन, वचन और काय से आपके पवित्र चरणों में श्रद्धांजली अर्पण करता हूँ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराज

卐 सबके उपास्य 卐

श्री १०८ मुनि आनन्दसागर जी महाराज

परम पूज्य श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज मोक्ष मार्ग को प्रकट दिखाने वाले एक प्रशम मूर्ति थे। हम सबके उपास्य थे। उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजली समर्पित करता हूँ और भावना करता हूँ कि वे अन्तरात्मा सत्वर शिवसिद्धि साधें।

उत्तमार्थ का आराधन

श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी ईसरी

पूज्य श्री १०८ आचार्य शाँतिसागर महाराज ने अपूर्व ज्ञान तथा वैराग्य के बल से इस नश्वर शरीर से तथा रागद्वेषादि भावों से अहंता व ममता छोड़ कर स्व स्वरूप से विचलित न होते हुये उत्तमार्थ का आराधन किया। यही अंतिम उनकी शिक्षा रूप अवस्था हम सबको भी समाधि का मार्ग प्रशस्त करने वाली हो।

सच्चा स्मारक

श्री १०५ क्षु० पार्श्वकीर्ति वर्णी लिखते हैं :—

आचार्य श्री शांतिसागर जी इस बीसवीं सदी के विज्ञान युग में एक अद्वितीय आदर्श तपस्वी थे। जितने गम्भीर उतने ही विनोदी भी ! बच्चे उन्हें प्रिय थे। जहां बड़े बड़े अपरिचित उनके सामने मुंह खोलते घबराते वहां बच्चे बड़ी आसानी से वार्तालाप करते पाये गये हैं। आचार्य श्री भी आस्था के साथ उनकी पूछताछ करते थे। उनके सान्निध्य में आने वाले अश्रद्धा से अपना नाता छोड़ श्रद्धा से नतमस्तक होते थे। ऐसे प्रभावी नेता को खोकर जैन समाज सचमुच छत्रविहीन अनाथ बन गया है। सल्लेखना के अवसर पर हमने आचार्य श्री से कुछ आदेश मांगा। उन्होंने कहा—

जिनधर्मं जगद्बन्धुमनुबद्धुमपत्यवत्।
यतीन् जनयितुं यस्येत्तथोत्कर्षयितुं गुणैः॥

मेरी तो धारणा है, कि आचार्य श्री के द्वारा स्वहस्तारोपित इस बाल-वृक्ष को सींच सींचकर विशालकाय बनाना यही आचार्य श्री का सच्चा स्मारक होगा। आचार्य श्री के अन्तिम उपदेश को मूर्त-रूप देने के लिये श्रद्धापूर्वक अपनी अपनी अंजलि अर्पण करना ही सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

आराध्य

श्री १०५ क्षु० मनोहरलाल जी वर्णी लिखते हैं :—

परम पूज्य श्री १०८ चारित्र्य चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज मोक्ष-मार्ग को प्रकट दिखाने वाले एक प्रशममूर्ति थे। हम सबके उपास्य थे। उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ और आशा एवं भावना करता हूँ कि वे अन्त-रात्मा सत्वर शिवसिद्धि प्राप्त करेंगे।

गुरु चरणों में श्रद्धांजलि

श्री १०५ क्षु०सिद्धिसागर जी भूतपूर्व ब्र० भरमण्णा लिखते हैं :—

मुझ जैसे अज्ञान पामर को अपने चरणों में आश्रय देकर आचार की सच्ची दीक्षा देने वाले मेरे गुरु पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी ने न जाने कितने जीवों का उद्धार किया है। मेरी इच्छा है कि स्मृति ग्रंथ में ग्रथित बातों से भी ऐसी ही प्रेरणा मिलेगी जिससे मुमुक्षुओं को सच्चा मार्ग-दर्शन मिलकर उद्धार हो। मुझमें वाक्चातुर्य नहीं है। गुरु के गुणों का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। आचार्य श्री की स्मृति में उनके पुनीत चरणों में मैं कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

श्री गुरु चरणों में

श्री शिखरचन्द जैन, शास्त्री तथा उदासीनाश्रम, ईसरी बाजार स्थित ब्रह्मचारी गण ने आचार्य चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है :—

दिगम्बर – वृषजुषे सम्यग्बोधादिगुणसिन्धवे।
विश्वलोकैकबन्धवे नित्यं नमः श्रीशांतिसिन्धवे॥

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ शांतिसागर महाराज की ही तपस्या के फल-स्वरूप आज अनेक मुनि, ऐलक, क्षुल्लक तथा अन्य व्रतधारी नारी-पुरुष भारत के विभिन्न भागों में दृष्टिगत हो रहे हैं।

ऐसे महापराक्रमी तपस्वी दिगम्बर जैनाचार्य एवं ज्ञान-दिवाकर गुरुवर के पुनीत चरणों में वारंबार नतमस्तक होकर अश्रुसिक्त श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए हम अपने को धन्य मानते हैं।

ब्र० सूरजमल जैन, आचार्य वीरसागर जी संघ, लिखते हैं :—

वर्तमान भौतिक युग में कहीं परोक्ष श्रद्धा का नाम भी न मिलता और न कहीं संयम व्रत की चर्चा हो होती यदि आचार्य श्री न होते ?

वास्तव में आचार्य श्री ने वास्तविक देशोद्धार और समाजोद्धार किया है। आज ४०–५० की संख्या में दिगम्बर जैन मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, श्रावक और इनसे होने वाली जो धर्म-साधना है उस सबका श्रेय परम पूज्य आचार्य महाराज को है।

आचार्य श्री ने यह बतला कर कि एक तपस्वी साधु को किस तरह मरण करना चाहिये सल्लेखना धारण करके दिखला दिया। आचार्य श्री का समस्त देश ऋणी है और आजीवन रहेगा। ऐसे महामहिम परमयोगी साधु पुंगव को अनन्तशः प्रणाम।

विशिष्ट प्रभावशाली

श्रीमती पं० कमलाबाई, (श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय, महावीर जी) लिखती हैं :—

परम पूज्य आचार्य शांतिसागर महाराज जैसी विभूति का सद्भाव जैन-समाज के लिये विशेष गौरव की बात थी। ऐसे महान प्रभावशाली निस्पृह तपस्वी के रिक्त स्थान की पूर्ति होना अशक्य है। मैं आचार्य श्री को विनम्र परोक्ष वन्दना करती हूँ।

NEPAL'S HOMAGE

H. E. The Ambassador of Nepal writes—

Jainism in its Catholic and pristine form rigidly enjoins non-violence on all its followers. The main philosophy of this religion is entirely based on the principle of non-violence. Acharya Shanti Sagar Maharaj was one of the greatest exponents of Jainism in the modern age. I personally belive the passing away of such a great soul is a great loss specially when the world is trying to solve problems through non-violence. Had he been alive he could have thrown some light to evolve out a medium to explain how the form of non-violence could be brought into play to achieve this end. May the soul of Acharyaji rest in peace.

अहिंसा के पथ-प्रदर्शक

अहिंसा जैन धर्म का मूलभूत एवं आधारात्मक सिद्धांत है। जैन-धर्म का प्रत्येक अनुयायी अहिंसा का पूर्णतः पालन करने के लिये अनिवार्य रूप से बाध्य होता है। इस धर्म का प्रमुख दर्शन भी पूर्णतया अहिंसा पर ही आधारित है।

आचार्य शांतिसागर महाराज आधुनिक युग में जैन-धर्म का प्रतिपादन करने वाले सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में से थे। मेरी व्यक्तिगत राय में ऐसे महात्मा का इस अवसर पर स्वर्गारोहण, जबकि संसार अपनी समस्याओं को अहिंसा द्वारा सुलझाने का प्रयास कर रहा है, एक महती क्षति है।

आज वह जीवित होते तो वह इस बात पर प्रकाश डाल सकते थे कि अहिंसा द्वारा संसार की समस्याओं का हल करने का सफल एवं सरल मार्ग क्या हो सकता है। आचार्य श्री की आत्मा को शांति प्राप्त हो, यही मेरी कामना है।

JAPAN'S HOMAGE

[H. E. Mr. Seijiro Yoshizawa, Ambassador of Japan writes :-

I feel pleasure in responding to the invitation of the Jain Gazette to send this message for the 'Homage Number' the Gazette is bringing out to honour the memory of Acharya Shanti Sagar Maharaj.

Self-immolation for a sacred cause, whether for impressing upon the world the truth of a great principle or for one's own spiritual amelioration, has been the great prerogative of the saints in India. In particular shining examples that have shed lustere through the ages are found among the Jain teachers. They have portrayed themselves as living symbols of self-denials and self-abnegation. The great Digambar Jain saint Acharya Shanti Sagar Maharaj is in the great line of Jain hermits who have left deep imprints in the history of India. Passing through ascendent degrees of spiritual heights he came to the top as an 'Acharya', a world preacher. One would rarely find such gems of humanity elsewhere.

I pay him homage which is indicative of the respect Japan has for the religious preceptors of other faiths. I trust his teachings will enable many persons to attain peace of mind and contribute to the welfare of humanity.

महात्माओं की परम्परा में

भारत स्थित जापानी राजदूत श्री सेइजिरो योशिजावा लिखते हैं :—

आचार्य शांतिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में "जैन-गजट" "श्रद्धांजलि विशेषांक" प्रकाशित कर रहा है, उसके लिये यह सन्देश भेजते हुए मुझे अतीव प्रसन्नता होती है।

किसी महान सिद्धांत की सत्यता को संसार के सम्मुख सिद्ध करने अथवा आत्मोद्धार के हेतु प्राणोत्सर्ग करना, भारतीय सन्तों की एक महान विशेषता रही है। मुख्यतया जैन आचार्यों-मुनियों में युग-युगान्तर से ऐसे कितने ही प्रकाशमान उदाहरण मिलते हैं। परीषह-सहन एवं संपूर्ण त्याग के वे सजीव प्रतीक रहे हैं। महान दिगम्बर जैन सन्त आचार्य शांतिसागर उन्हीं महात्माओंकी परम्परा में हैं, जो भारत के इतिहास-पटल पर अपनी अमिट स्मृति अंकित कर गये हैं। आध्यात्मिकता के सोपानों पर क्रमशः ऊपर-उठकर वह "आचार्य", अर्थात् विश्व-गुरु के पद पर आरूढ़ हुए। ऐसे नर-रत्न अन्यत्र विरले ही प्राप्त हो सकते हैं।

मैं उनको जो श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हूँ वह इस बात की द्योतक है कि जापान अन्य धर्मों के आचार्यों के प्रति कितनी श्रद्धा रखता है। मैं विश्वास करता हूँ कि उनके उपदेशों से बहुतों को मानसिक शांति प्राप्त होगी तथा मानव-समाज का कल्याण होगा।

—सईजिरो योशिजावा

IRAN'S TRIBUTE

H. E. A. A. Mr. Hekmat, Ambassador for Iran in India, writes —

I am happy to learn that the "Jain Gazette" is bringing out a special "Homage Number" in honour of the memory of the great Jain Saint Acharya Shanti Sagar Maharaj.

Men who live and even die for high ideals deserve the respect and appreciation of the whole mankind.

I hope the Jain Community in particular and the people in general take their lessons from the illustrious spiritual career of the departed soul.

ईरान की श्रद्धांजलि

भारत स्थित ईरानी राजदूत श्री ए. ए. हिकमत ने लिखा है :—

महान् जैन सन्त आचार्य शांतिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में "जैन-गजट" एक श्रद्धांजलि विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

ऐसे महापुरुष जो महान् आदर्शों के लिये जीते हैं और उन्हीं की खातिर प्राणोत्सर्ग करते हैं, समस्त मानव समाज की श्रद्धा एवं प्रशंसा के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूँ कि समस्त जनता, विशेषकर जैन समाज, दिवंगत महापुरुष के जाज्वल्यमान आध्यात्मिक जीवन से शिक्षा ग्रहण करेगा। —ए० ए० हिकमत
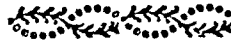
YUGOSLAVIA'S MESSAGE

Mr. C. Minderovic, Cultaral Counsellor, Yugoslav Embassy, writes—

I have been directed by my Ambassador to acknowledge with thanks the receipt of your kind letter.

I am desired by His Excellency to convey to you his best wishes and to express his hope that your 'Homage Number' would be a great success.

C. Mindevoric,
Cultural Counsellor.

यूगोस्लाविया का सन्देश

भारतस्थित युगोस्लाव राजदूत ने आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए यह शुभ कामना भी व्यक्त की है कि "जैन गजट" का श्रद्धांजलि विशेषांक पूर्णतया सफल हो।

SOURCE OF SUSTENANCE

Dr S. Radhakrishnan, Vice President of India and one of her foremost philosophers and savants, says :–

In the death of Acharya Shanti Sagar Maharaj, India has lost a great man, a great Tapasvi and a great Rishi. In his constant search for truth and spiritual advancement, he imposed hardships on himself and bore them with the atmost detachment. It is saints like him who, through their sacrifices, sustain the world.

Radhakrishnan

जीवन का स्रोत

भारत के उपराष्ट्रपति, अग्रगण्य दार्शनिक, विद्यानिधि डा० राधाकृष्णन लिखते हैं

आचार्य शान्तिसागर महाराज के निधन से, भारत के एक महामानव, महातपस्वी एवं महर्षि उठ गये हैं। वह सत्य की खोज तथा आध्यात्मिक प्रगति के अनवरत प्रयास में जीवन भर संलग्न रहे। इस प्रयास में उन्होंने कितने ही कठिन व्रतों को अपनाया और अत्यन्त निर्मम एवं निरीह भाव से शारीरिक सन्ताप का सहन किया। उनके जैसे सन्त ही अपने बलिदानों से संसार को जीवन प्रदान करते हैं।

राधाकृष्णन

विनम्र श्रद्धांजलि
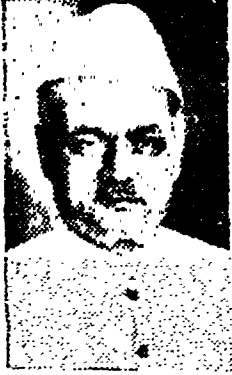
भारतीय लोक सभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर लिखते हैं :—

आचार्य शाँतिसागर महाराज की स्मृति में
आप सब लोगों के साथ मैं भी अपनी
विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—जी० वी० मावलंकर
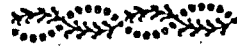
शुभ कामना

केन्द्रीय प्रतिरक्षा मंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू लिखते हैं :—

जैन गजट के 'श्रद्धाँजलि विशेषांक' की सफलता के लिये अपनी शुभ-कामनायें प्रकट करता हूँ।

पुण्य स्मृति में

केन्द्रीय गृहमन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त लिखते हैं :

आचार्य शाँतिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में आप जो 'श्रद्धांजलि विशेषाँक' प्रकाशित कर रहे हैं उसके लिये मैं अपनी शुभकामनायें भेजता हूँ।—गोविंदवल्लभ पंत

Living Symbol of Ahimsa

Shri Ajit Prasad Jain, Minister for Food and Agriculture, writes :—
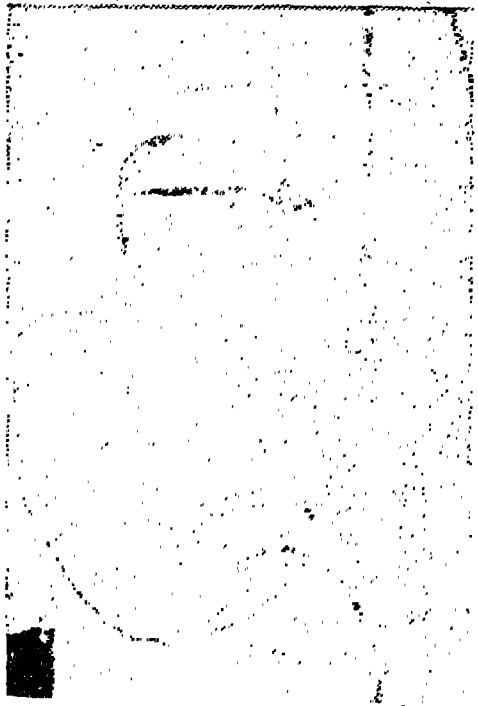
Saints give their message not so much through words as through the life they live. Acharya Shanti Sagar Maharaj's life is a living symbol of Ahimsa, Tyaga and Tapascharya. He lived not for himself but for a mission. So long as the life was worth living he cared to live. When the time came he withdrew himself into the eternal embrace of death. Acharyaji is not dead. He lit a lamp the light of which will permeate and inspire the generations to come.

To that great sage I pay my respectful greetings.

Ajit Prasad jain

* अहिंसा के प्रतीक *

भारत सरकार के खाद्य एवं कृषि-मंत्री श्री अजितप्रसाद जैन लिखते हैं :—

सन्त लोग बहुधा अपने वचन से नहीं अपितु आचरण से ही उपदेश दिया करते हैं। आचार्य शांतिसागर महाराज का जीवन अहिंसा, त्याग एवं तपश्चर्या का सजीव प्रतीक था। वह अपने लिये नहीं, अपितु एक ध्येय के लिये जीवित रहे। जब तक जीवन जीने योग्य था, जीवित रहने में उनकी आस्था थी, परन्तु जब नियत समय आया तो उन्होंने जीवन से विमुख होकर मरण के अमर बाहुपाश में शरीर का समर्पण कर दिया।

परन्तु वास्तव में आचार्य श्री मृत नहीं हैं। वह एक ऐसा दीप जगा गये, जिसकी ज्योति चिरकाल तक भावी पीढ़ियों को आलोकित करेगी और प्रेरणा प्रदान करेगी।

उन महामुनि को मेरी विनम्र श्रद्धांजलियाँ।

अजितप्रसाद जैन

Inspiring Message

Hon. Shri Punjab Rao Deshmukh, Minister for Agriculture, writes :—

I am glad that the "Jain Gazette" is publishing a special Homage Number in the hallowed memory of Acharya Shanti Sagar. The Number will no doubt enshrine the noble Jain precepts of universal love, peace, non-violence and truth, which Acharya Shanti Sagar preached and which the world today so sorely needs.

The example of this great Jain saint in calmly courting death after a 36 days fast of self-purification—the supreme sacrifice of which man is capable-should inspire people all over the world with greater and deeper respect towards moral values of life, and help them cleanse their hearts of such baser instincts as selfishness, avarice and fear.

P. S. Deshmukh

प्रेरणाप्रद आदर्श

केन्द्रीय कृषिमन्त्री श्री पंजाबराव देशमुख लिखते हैं :-

आचार्य शान्तिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में 'जैनगजट' एक 'श्रद्धांजलि विशेषांक' प्रकाशित कर रहा है यह जान कर मुझे प्रसन्नता हुई। निश्चय ही जैन धर्म के अहिंसा, सर्वजीवदया, शान्ति एवं सत्य के उन महान सिद्धान्तों पर, जिनका आचार्य शान्तिसागर प्रचार करते रहे और जिनकी आज संसार को बड़ी आवश्यकता है, इस विशेषांक में प्रकाश डाला जायेगा।

इन महान जैन सन्त ने छत्तीस दिन के दीर्घ उपवास के अनन्तर शरीर त्यागा था। मनुष्य के प्राणोत्सर्ग का यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था। आचार्य श्री के इस ज्वलन्त उदाहरण से संसार-भर के लोगों को जीवन के नैतिक मूल्यों के प्रति अधिक गहन श्रद्धा रखने की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए और अपने हृदय से स्वार्थ, लोभ एवं भय की नीच प्रवृत्तियों का कलंक धोने में सहायता लेनी चाहिए।

पंजाबराव देशमुख

अनुपम साधना

भारत सरकार के उपश्रममन्त्री श्री आविद्अली जाफरभाई लिखते हैं :—

साधारण मनुष्य को जीवन से कितना मोह होता है, मृत्यु के सिरपर आ खड़े होने पर भी वह जीवित रहने के लिये जितने भी उपाय संभव हैं सब से काम लेता है और किसी भी प्रकार कुछ और दिन नहीं तो कुछ घंटे या कुछ मिनट ही जीवित रहने का प्रयत्न करता है । उसके रिश्ते-नातेदार और मित्र लोग भी उसको जीवित रखने का कितना प्रयत्न करते हैं । एक एक घंटे के जीवन के लिये डाक्टरों पर हजारों रुपये लुटा दिये जते हैं । परन्तु संसार में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो जीवन की इस मोह माया और ममता में विल्कुल भी फंसते नहीं । वे इस जीवन में ही विदेह की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं । जैन साधुओं के जीवन का यही स्वरूप है ।

साधारण जैन लोग भी स्वेच्छा मरण के सिद्धांत को मानते हैं । जहां तक मैं समझ सका हूँ इस सिद्धांत का यही अर्थ है कि मनुष्य को जीवन के मोह में फंसना नहीं चाहिये और मृत्यु से घवड़ाना नहीं चाहिये । मृत्यु यदि आती है तो उसका स्वेच्छा से स्वागत किया जाना चाहिये । परन्तु मैंने ऐसे जैनी भाई को देखा है कि जीवन के अन्तिम समय में अन्नादि का परित्याग केवल इसीलिये कर देते हैं कि वे उस समय संसार से विल्कुल विरक्त हो जाते हैं और यह मान लेते हैं कि सिसकते-सिसकते जीवन छोड़ने की अपेक्षा स्वेच्छा से जीवन का परित्याग करना कहीं अधिक अच्छा है ।

मैंने जब आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के सम्वन्ध में यह सुना कि उन्होंने अपनी ८४ वर्ष की उम्र में अन्नादि का परित्याग करने के वाद दूध आदि का भी परित्याग कर दिया है । और केवल गर्म पानी भी कुछ दिनों के अन्तर से पीना शुरू कर दिया है, तब मेरे हृदय में अनेक तरह के विचार पैदा हुये । उनके प्रति मेरी श्रद्धा इसलिये जाग उठी कि जिस समय संसारी जीव मृत्यु से डरते हैं उस समय एक साधक तपस्वी महात्मा किस प्रकार मृत्युसे निर्भय हो जाता है । यह धर्म साधना का ही परिणाम है । मैं अत्यन्त विनम्र भाव से आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इसलिये अर्पित करता हूँ कि उन्होंने तव धर्म-साधना का एक आदर्श हमारे सामने उपस्थित किया है जव जनता का विश्वास धर्म पर से उठता जा रहा है । जीवन में श्रद्धा का अपना स्थान है और उसके विना जीवन को सफल नहीं वनाया जा सकता । आचार्य श्री सरीखे साधु संतों के जीवन से हमें इतनी शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिये ।

—आविद अली

Highest Ideal

Shri Hare Krishna Mahtab, Governor of Bombay, writes :–

That the highest ideal of individual life which the Indian philosophy set forth before the man thousands of years ago is still alive was proved in the person of Acharya Shanti Sagar Maharaj. May his blessed soul bless us and make us pure and dutiful.

Hare Krushna Mehtab

उच्चतम आदर्श

बम्बई के राज्यपाल श्री हरेकृष्ण महताब लिखते हैं :—

हजारों वर्ष पहले भारतीय दर्शन ने मानव समाज के सम्मुख वैयक्तिक जीवन का जो उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया था, वह आज भी जीवित है, यह आचार्य शान्तिसागर महाराज के व्यक्तिगत जीवन द्वारा प्रमाणित हो गया है। उनकी भव्यआत्मा हमें आशीर्वाद दे और हमें निर्मल और कर्तव्यपरायण बनाये।

हरेकृष्ण महताब

Amazing Phenomenon

Shri Chandreshvar Prasad Narayan Singh, Governor, Punjab, writes :—

I have read an account of the life and self-immolation of Acharya Shanti Sagar. He has been a saint after the traditions of our old Rishis. His detatchment from life itself---and that in a literal sense---is an amazing phenomenon for modern times. Such saints belong to no single community but are common to all. Together with you I pay homage to his memory.

C. P. N. Singh

प्राचीन ऋषियों की परम्परा में

पंजाब के राज्यपाल श्री चन्द्रेश्वरप्रसाद नारायणसिंह लिखते हैं :–

आचार्य शान्तिसागर महाराज का जीवन-परिचय तथा उनके शरीर त्याग का विवरण मैंने पढ़ा। वह हमारे प्राचीन ऋषियों की परम्परा में आये एक सन्त हैं। जीवन के प्रति उनका विराग भाव---केवल शब्दों में नहीं, अपितु क्रियात्मक रूप में–आधुनिक युग का एक अद्भुत चमत्कार है। ऐसे सन्त किसी एक समाज के नहीं अपितु समस्त मानवसमूह के आराध्य होते हैं। आप सब के साथ में भी उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ–चन्द्रेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

Brave Soul

Shri R. R. Divakar, Governor of Bihar, writes--

Death is feared by all living beings, because it is the very negation of life. It is the most concentrated form of fear. But death seems to be more terrible to those who fear it most, while it is sweet to those who embrace it with love.

Acharya Shanti Sagarji was one of those rare brave souls who invite death most cordially and welcome it with a smile when it comes. While his passing away is a great loss to us, to him it was the last solace he sought and got it. May his soul rest in peace, may his great qualities live in our memories for long.

R. R. Divakar
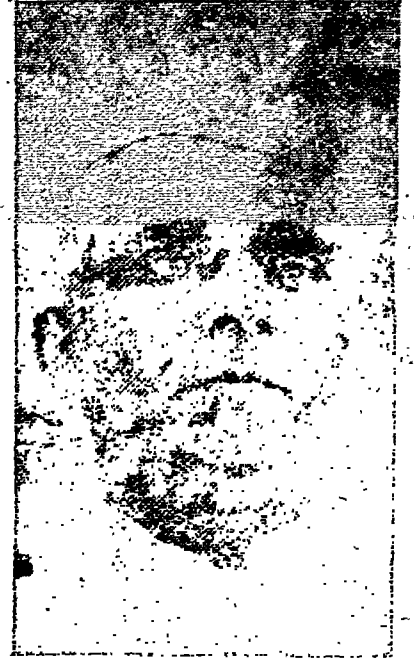
निर्भय महापुरुष

बिहार के राज्यपाल श्री आर. आर दिवाकर लिखते हैं :-

सभी जीव मरण से डरते हैं, क्योंकि वह जीवन का नकार है। मरण का भय सबसे अधिक तीव्र होता है।

परन्तु जो लोग मरण से डरते हैं उन्हीं को वह अधिक भयावना प्रतीत होता है। इसके विपरीत जो लोग मरण का प्रेमपूर्वक स्वागत करते हैं, उन्हें तो वह मधुर लगता है। आचार्य शान्तिसागर महाराज उन विरले साहसी महापुरुषों में से थे, जो मरण को स्नेहमय निमन्त्रण देते हैं और जब वह आता है तब मधुर मुस्कराहट से उसका स्वागत करते हैं। यद्यपि उनके शरीर-त्याग से हमें भारी क्षति पहुंची, फिर भी उनके लिए तो वह ऐसी सान्त्वना थी, जिसे वह प्राप्त करना चाहते थे और जो उन्हें प्राप्त हो गई। उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो। उनके महान गुण चिरकाल तक हमारी स्मृति में हरे रहें।

आर० आर० दिवाकर

Great Ascetic

Shri K. M. Munshi, Governor, Uttar Pradesh, writes :—

I had known Acharya Shanti Sagar Maharaj. He was a profound scholar and a great ascetic of modern India. His death has been a great loss to the country.

महान यती

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुन्शी लिखते हैं :—

आचार्य शान्तिसागर महाराज को मैं जानता हूँ। वह प्रगाढ़ पण्डित तथा आधुनिक भारत के एक महान यती थे। उनके निधन से देश को भारी क्षति पहुंची है। क. मा. मुन्शी

महान विभूति

मध्य भारत के राजप्रमुख श्री जीवाजीराव शिन्दे लिखते हैं :--

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि आप मुनि शांतिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में "जैन गजट" का विशेषाँक प्रकाशित करने जा रहे हैं।

मुनि शांतिसागर जी ने अपना समस्त जीवन मानवता की रक्षा और आत्मिक विकास के तत्वों की खोज में व्यतीत कर दिया था। जीवन भर वे आचरण में पवित्रता, सात्विकता एवं उदारभाव निहित करने के हेतु संघर्ष करते रहे और उन्होंने अपने को एक महान उद्देश्य के लिये, जन-कल्याण के लिये, मनुष्य के विकास के हेतु अर्पित कर दिया। देश की इन महान विभूतियों के आदर्शों पर ही मानव समाज का आधार निर्भर करता है। आज के विषमताओं से युक्त समाज में जन-साधारण के लिये इनके पद-चिन्हों का अनुसरण आवश्यक है।

मेरा विश्वास है कि आप "जैन-गजट" विशेषाँक के प्रकाशन द्वारा उन आदर्शों की स्थापना, प्रचार एवं प्रसार में सहायक हो सकेंगे जिनके लिये मुनि शान्तिसागर जी निरन्तर प्रयत्नशील रहे। मैं आपके इस प्रयास की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

जीवाजीराव शिंदे

जम्मू और काश्मीर के सदरे-रियासत श्री कर्णसिह लिखते हैं--"आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के श्रद्धांजलि विशेषांक की सफलता के लिए मै अपनी शुभ कामनायें भेजता हूँ"
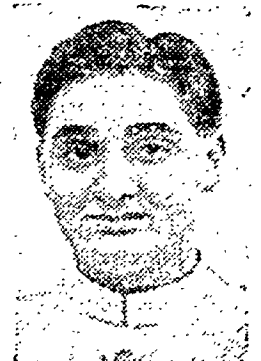
卐 GREAT SERVICE 卐

Shri K. Santhanam, Lt. Governor, Vindhya Pradesh, writes :-

I have great pleasure in sending my good wishes for the success of the special issue of Jain Gazette to commemorate the Nirvana of Acharya Shanti Sagar Maharaj on the 18th of September 1955 after a self-imposed penance and fast of 36 days. This ancient custom of Hindus by which individuals, when they feel their work in this world is over, voluntarily lay down their lives, deserves admiration and in suitable cases, it deserves to be followed. Death by voluntary choice is always to be preferred to death by disease or failure of natural organs and functions provided the choice is not due to anger, passion, disappointment or desire to escape from responsibilties. While there is so much talk of birth control, the question at the other end of allowing people to die voluntarily and the conditions and circumstances in which they should be assisted to do so deserves no less consideration. It is implicit in human intelligence that human life from birth to death should be illuminated and, as for as possible, regulated by it. Acharya Shanti Sagar Maharaj has done a great service by demonstrating that the anicent Hindu tradition of victory over death by voluntary submission to it is not mythical.

K. Santhanam

विन्ध्यप्रदेश के उप-राज्यपाल श्री क. सन्तानम् लिखते हैं—

छत्तीस दिन के यम-सल्लेखना-व्रत के उपरान्त १८ सितम्बर, १९५५ को स्वर्गारोहण करने वाले आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की पुनीत स्मृति में "जैन गजट" जो विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, उसकी सफलता के लिए अपनी शुभकामनायें भेजते हुए मुझे अपार हर्ष होता है । इस प्रकार का समाधि-मरण भारतीयों की एक प्राचीन प्रथा है । जब कोई व्यक्ति यह अनुभव करता था कि संसार में मेरा काम पूरा हो चुका है, तो वह स्वेच्छा से मरण को वरण करता था । यह प्रशंसनीय प्रथा है और कुछ उपयुक्त महानुभावों के लिए अनुकरणीय भी ।

रोग के कारण अथवा इन्द्रियों की शिथिलता के कारण होने वाली मृत्यु से स्वेच्छा-मरण कहीं अधिक श्रेयस्कर है, बशर्ते कि क्रोध, भावावेश, निराशा अथवा दायित्व से बचने की इच्छा से मरण को वरण न किया जाय। मनुष्य के विवेकशील प्राणी होने का तात्पर्य ही यह है कि मानव जीवन जन्म से लेकर मरण तक प्रदीप्त रहे और यथा सम्भव विवेक-संयत हो । स्वेच्छा से मरण को अपनाकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की प्राचीन भारतीय परम्परा कोरी कल्पना नहीं है, इस सत्य को अपने उदाहरण द्वारा प्रदर्शित करके आचार्य शान्तिसागर महाराज ने एक महान सेवा की है ।

क० सन्तानम्

MARCH WITH THE INFINITE

Shri A. D. Pandit, Chief Commissioner of Delhi, writes :—

On the 18th of September Acharya Shanti Sagar shed this mortal coil and his spirit soared to march with the Infinite. He undertook a fast for 36 days and during all this period he meticulously observed all his duties and till the last minute went on preaching the great precepts of the Jain Dharma to all his disciples.

Such deliberate surrender of self in full possession of one's faculties, even in advanced age, is the privliege of very rare souls who have attained liberation from all attachment to life. This glorious end crowned a life full of love and compassion for all mankind, every minute of which was devoted to the search after Truth.

I am glad that the Jain Gazette is bringing out a Special Number to pay homage to the great Digambar Jain Saint who has joined the ranks of the spiritual aristocracy of this country, which is its greatest pride.

A. D. Pandit

महान तपस्वी

दिल्ली के चीफ कमिश्नर श्री ए० डी० पण्डित लिखते हैं:—

आचार्य शान्तिसागर महाराज ने १८ सितम्बर को नश्वर शरीर का त्याग किया और उनकी आत्मा स्वर्ग-पथ पर अनन्त के साथ उड़ान भरने लगी। उनका सल्लेखना-व्रत ३६ दिनों तक जारी रहा। वह अन्त-समय तक अपने सब कर्त्तव्यों का नियम पूर्वक पालन करते रहे और जैन धर्म के महान सिद्धान्तों की शिक्षा अपने सब शिष्यों को देते रहे।

शरीर के सब प्रकार से स्वस्थ एवं सशक्त होते हुए इस प्रकार संकल्प करके आत्मोत्सर्ग करना, वृद्धावस्था में भी, उन्हीं विरले महात्माओं ही के लिए सम्भव है, जो जीवन के प्रति सब प्रकार के मोह-जंजाल से पूर्णतया मुक्त हो चुके हों। आचार्य शान्तिसागर का जीवन समस्त मानव जाति के प्रति प्रेम एवं अनुकम्पा से पूर्ण था। जीवन का एक-एक पल उन्होंने सत्यान्वेषण में बिताया। ऐसे जीवन का यह अन्त सिर पर मुकुट की भांति शोभामय था।

आचार्य शान्तिसागर महाराज हमारे देश के उस पूज्य तपस्वी-वर्ग में सम्मिलित हो चुके हैं जिस पर इस देश को सबसे अधिक अभिमान है। इन महान दिगम्बर जैन सन्त के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए "जैन गज़ट" एक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।

ए. दत्तात्रेय पण्डित

Pride of India

Hon. Justice Shri T. L. Venkatarama Iyer, judge, Supreme Court, writes :—

I consider it a privilege to pay homage to the memory of Acharya Shanti Sagar who attained liberation on 18-9-1955. This country is justly proud of its magnificent achievements in the spiritual world, and much of it is due to the fact that we had at all times in our midst saints who had shown by their life and conduct the great virtues of our religion and ethical tenets. The Jains have made considerable contribution in this direction, and the Acharya was an illustrious example of it. It is by reason of such personalities that India has lived in the past and will continue to live in the future.

T. L. Venkatarama Iyer.

भारत का अभिमान

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री टी० एल० वेंकटराम अय्यर लिखते हैं :—

आचार्य शांतिसागर महाराज की स्मृति में, जिन्होंने १८ सितम्बर, १९५५ को शरीर-त्याग किया, श्रद्धांजलि अर्पित करने का यह सुअवसर पाकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी साधनाओं पर अपने देश को सदैव उचित अभिमान रहा है। इन साधनाओं का मुख्य कारण यह है कि सभी कालों में हमारे बीच ऐसे सन्त पुरुष होते आये हैं जिन्होंने अपने जीवन एवं आचरण से हमारे धर्म एव नैतिक सिद्धांतों की महानता को निर्दशित किया है। इस दिशा में जैनों का योग दान महत्वपूर्ण रहा है और आचार्य शांतिसागर महाराज इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। ऐसे ही महापुरुषों के कारण भारत अतीत में जीवित रहा है और भविष्य में भी जीवित रहेगा।

टी० एल० वेंकटराम अय्यर

PRACTISED TRUTH

Hon. Justice Shri Ram Labhaya, Judge, Patna High Court, Writes :--

I am glad you have given me the opportunity of paying my respectful homage to the revered memory of Acharya Shanti Sagar, a great saint of modern India.

Acharya Shanti Sagar did not pass away as other mortals do. He surrendered the physical part of his being after purifying his soul through a voluntary fast of 36 days. He not only preached but demonstrated by personal practice the truth that the human soul is not merely immortal, it is also capable of obtaining deliverance from the shackles of a long and unending succession of births and deaths. The lesson of his life lived so nobly is that the goal of life is salvation by obtaining freedom from the bondage of earthly existence, which can be achieved by universal love of a transcendental character. Such love is experienced only when the ego in man is stilled and the self is annulled. So long as this self is alive and kicking, it is a fruitful source of troubles which arise from conflicting interests. The revered Acharya conquered the self by celibacy and renunciation, sought and discovered the truth for himself and attained the highest goal of life, a blissful state for the soul. He thus discarded the body when it had ceased to be of any use for the soul. He lived upto the highest ideal. He shall live through eternity. His physical frame which served as a kindly light is gone. Benighted humanity is left without the guidance that he provided. His loss is irreparable. For, such great souls appear in physical frame on rare occasions and after intervals extending over centuries. Humanity and particularly Indian humanity is thus very much poorer by his death. To this great soul I join all others, in offering my humble homage of reverance.

Ram Labhaya

पटना हाईकोर्ट के न्यायाधीश जस्टिस श्री रामलभाया लिखते हैं :--

आधुनिक भारत के एक महान सन्त आचार्य शांतिसागर महाराज की पुण्य स्मृति में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करने का आपने मुझे अवसर दिया, यह मेरे लिये हर्ष की वात है। आचार्य शांतिसागर का देहावसान उस रूप में नहीं हुआ, जैसे साधारण मनुष्यों का होता है। छत्तीस दिन की सल्लेखना--आत्म-शुद्धि के लिये उपवास—स्वेच्छापूर्वक धारण करने के पश्चात, उन्होंने अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया। उन्होंने न केवल अपने उपदेशों से, वल्कि अपने आचरण से यह सिद्ध कर दिया कि आत्मा अमर है, यही नहीं, किन्तु जन्म-मरण के जंजाल से अपने को मुक्त करने में भी वह समर्थ है। उनके निर्मल एवं उच्च जीवन से हमें यही शिक्षा मिलती है कि जीवन का ध्येय साँसारिक अस्तित्व के वन्धन से निस्तार पाना ही है और यह सर्व जीव-प्रेम एवं विशुद्ध अहिंसा द्वारा ही साध्य हो सकता है। ऐसा सर्व जीव-

NOBLE EXAMPLE

Hon. Justice Shri Sarjoo Prasad, Chief Justice of Assam High Court, writes :—

I regret that I had not the pleasure of knowing Acharya Shanti Sagar Maharaj personally, but the life-sketch which you have enclosed speaks of the Supreme Sacriifce made by the Saint. The members of the Jain community are generally the captains of our national trade and commerce. If anything, they should imbibe from the life and teachings of the Saint the spirit of self-sacrifice in the Cause of the country and the Goverment. The sacrifice of the Saint, will not be in vain if that spirit of service and self-abnegation permeates the Jain community in all their dealings to the everlasting benefit of our nation.

Sarjoo Prasad

अनुकरणीय आदर्श

आसाम हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश श्री सरजूप्रसाद लिखते हैं :—

मुझे खेद है कि आचार्य शान्तिसागर महाराज को व्यक्तिश: जानने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु उनके जीवन परिचय में उन सन्त पुरुष के महान बलिदान का वर्णन किया गया है। जैन समाज के सदस्य हमारे देश के उद्योग एवं वाणिज्य के प्रमुख नेता हैं। आवश्यकता इस बात की है कि वे आचार्य महाराज के जीवन एवं उपदेशों से शिक्षा ग्रहण करें और देश एवं समाज के कल्याण के लिए स्वार्थ-त्याग की भावना अपनायें। यदि जैन समाज आचार्य श्री के सेवा-भाव एवं स्वार्थ-त्याग के महान गुणों का अपने जीवन के हर क्षेत्र में पालन करें तो उससे राष्ट्र का स्थायी कल्याण होगा और आचार्य महाराज का बलिदान भी सार्थक होगा।

सरजूप्रसाद

प्रेम तभी संभव है जब मनुष्य का अहम्भाव नष्ट हो जाय और ममत्व का अन्त हो जाय। अहंकार-ममकार जब तक सक्रिय रहेंगे तब तक परस्पर विरोधी स्वार्थों से होने वाले संकटों का वह स्रोत अवश्य बने रहेंगे। पूज्य आचार्य महाराज ने ब्रह्मचर्य एवं सन्यास द्वारा अहं पर विजय पाई, अपने ही प्रयासों से सत्य का अन्वेषण करने में सफल हुए, और आत्मा को परमानन्द की स्थिति पर पहुँचा कर जीवन का ध्येय प्राप्त किया। इस प्रकार उन्होंने उस समय शरीर-विसर्जन किया जब वह आत्मा के लिये उपयोगी नही रह गया था। हमारे धर्म ग्रन्थों में प्रकट किये हुए उच्चतम आदर्शों का वह अन्त तक पालन करते रहे।

आचार्य शांतिसागर महाराज मरे नहीं हैं। वह अनन्त काल तक जीवित रहेंगे। उनका मर्त्य शरीर, जो दयामय दीप से ज्योति फैलाता रहा, अब नहीं रहा। अन्धकार में भटकने वाले मानव समाज ने एक मार्ग-दर्शक को खो दिया है। यह ऐसी क्षति है जिसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। क्योंकि ऐसे महात्मा विरले ही अवसरों पर, कई शताब्दियों में एक बार ही, देह-धारण करते हैं। मानव-समाज, विशेषकर भारतीय मानव समुदाय, उनके देहावसान से, एक विपुल सम्पत्ति से वंचित रह गया है। इन महात्मा को, अन्य सब जनों के साथ मैं भी अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

रामलभाया

Sipirtual Force

Shri Bishnuram Medhi, Chief Minister of Assam, writes :–

I am glad to learn that the Jain Gazette, the official organ of the All India Digambar Jain Mahasabha, proposes to bring out a "Homage Number" in honour of the sacred memory of Acharya Shanti Sagar Maharaj who passed away on the 18th September, 1955. It is indeed in fitness of things that the Digambar Jain Mahasabha has decided to publish authoritative articles on the glorius life and teachings of the great saint and also of different aspects of the Digambar Jain creed. Acharya Shanti Sagar, a great spiritual force in India, practised what he preached and ceaselessly endeavoured for the salvation of the entire mankind by his precepts and examples.

All through his long life of 84 years the saint devoted himself fully to the preaching of the noble Jain precepts of universal love, peace, truth and non-violence. The Acharya won the hearts of millions of people who ultimately became his disciples by his sacrifice and service. A seeker of truth all his life, the saint's entire life was a supreme sacrifice which has few parallels in the spiritual history of mankind. India, the cradle and nursery of all great religions, has shown to the world, throughout ages, the light of spiritualism and the basic principles of truth and love which alone sustain the world. It is the spirit of disinterested service to humanity that earned Acharya Shanti Sagar great honours which were bestowed upon him by his admiring disciples and the country-men alike.

I thank the All India Digambar Jain Mahasabha for their laudable endeavour to keep alive the memory of the great saint of India. I take this opportunity to pay my tribute to the spiritual giant that he was.

Bisnuram Medhi

आध्यात्मिक अतिमानव

आसाम के मुख्य मन्त्री श्री विष्णुराम मेधी लिखते हैं :—

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का मुखपत्र "जैन गजट" आचार्य शान्तिसागर महाराज की पुण्यस्मृति में एक "श्रद्धांजलि विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। यह उपयुक्त ही है कि महासभा ने इस विशेषांक में इन महान दिगम्बर जैन सन्त के ज्योतिमय जीवन एवं उपदेशों पर तथा दिगम्बर जैन धर्म के मूल

धर्म का मूर्त्तस्वरूप

श्री भीमसेन सच्चर, मुख्य मन्त्री पंजाब राज्य, लिखते हैं :-

हमारी वर्तमान पीढी के सामने दो दो भयानक और विध्वंसकारी महायुद्ध हो चुके हैं और अभी यह कहना कठिन है कि तीसरा विनाशकारी ज्वालामुखी कब फूट पड़े और परमाणु बम तथा उद्जन बम जैसे प्रलयंकारी और भयानक अस्त्रों द्वारा मानवता, सभ्यता तथा संस्कृति का नाम निशान तक मिट जाय । ऐसे आतंक-मय वातावरण में यदि कोई आशा की किरण दिखाई पड़ती है तो वह है जैनमत के प्रवर्तक श्री महावीर स्वामी की अनोखी शिक्षा; जिस में प्रेम और सार्वभौमिक भ्रातृत्वभाव और त्याग के भाव कूट कूट कर भरे हैं ।

स्व० आचार्य शान्तिसागर महाराज जैन धर्म के इन्हीं महान सिद्धान्तों के मूर्त्तस्वरूप थे और वह अपनी सल्लेखना द्वारा एक ज्वलन्त आदर्श स्थापित कर गये हैं ।

सौभाग्य से भारत के सर्वप्रिय कर्णाधार श्री जवाहिरलाल नेहरू भी उसी विभूति के चरण-चिन्हों पर चलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय ईर्षा और द्वेष से संतप्त संसार के हृदय में अमृत वर्षा का प्रयत्न कर रहे हैं ।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि महावीर स्वामी के संदेश की जहां भारतवर्ष के कोने कोने में फैलाए जाने की आवश्यकता है वहां यह भी ज़रूरी है कि इस संदेश को योरुप और अमेरिका में भी पहुँचाने की कोशिश की जाए, क्योंकि इस संदेश की बहुत अधिक आवश्यकता पाश्चात्य देशों को ही है ।

भीमसेन सच्चर

सिद्धान्तों पर विभिन्न प्रामाणिक लेख प्रकाशित करने का निश्चय किया है ।

आचार्य शान्तिसागर जी भारत की एक महती आध्यात्मिक शक्ति थे । वह जो उपदेश देते थे उसी पर आचरण करते थे । समस्त मानव-समूह के उद्धार के लिए वह अपने उपदेशों एवं आचरण द्वारा सतत प्रयत्न करते रहे । ८४ वर्ष की अपनी लम्बी आयु का एक-एक क्षण वह सर्वजीव-प्रेम, शान्ति, सत्य एवं अहिंसा—जैसे जैन धर्म के आधार भूत सिद्धान्तों के प्रचार में बिताते रहे । अपने आत्म-बलिदान एवं सेवाओं से उन्होंने लाखों लोगों के हृदय जीत लिये जो अन्त में उनके शिष्य एवं अनुयायी बन गये ।

आचार्य श्री का सारा जीवन सत्य के अन्वेषण में व्यतीत हुआ । उनका जीवन ही ऐसा महा-बलिदान था जिसकी तुलना मानवजाति के आध्यात्मिक इतिहास में विरले ही कहीं हो सकती है ।

भारत संसार के सभी महान धर्मों की जन्म एवं क्रीडा-स्थली है । युग-युगान्तर से वह आध्यात्मिकता, सत्य एवं सर्वजीव प्रेम की पवित्र ज्योति से संसार का पथ आलोकित करता आया है । इन्हीं सिद्धान्तों के बल पर आज संसार जीवित है । निष्काम्य सेवा की ही भावना के कारण आचार्य शान्तिसागर जी अपने शिष्यों एवं देशवासियों की श्रद्धा एवं सम्मान के पात्र हुए ।

भारत के इन महान सन्त की स्मृति को शाश्वत बनाये रखने के लिए भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा जो प्रशंसनीय प्रयास कर रही है, उस के लिए मैं उसे धन्यवाद देता हूँ । इस अवसर पर मैं उन आध्यात्मिक अतिमानव को श्रद्धाँजलि अर्पित करता हूँ ।

विष्णुराम मेधी

DEDICATED TEACHER

Shri Mohan Lal Sukhadia, Chief Minister of Rajsthan, writes :—

Acharya Shanti Sagar Maharaj has been one of the illustrious sons of this country in the great religious tradition of our ancient seers and sages. A dedicated teacher like him, with his wide and profound scholarship, with his elevating influence and self-effacement born of spiritual serenity, lives on in the hearts of men and will guide the path of humanity in its ceaseless quest for light and progress, bliss and self-realisation in times to come.

I join with my country-men in paying heart-felt homage to the memory of such a pious and noble soul.

Mohanlal Sukhadia

महर्षि और आचार्य

राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहनलाल सुखाडिया लिखते हैं :—

आचार्य शांतिसागर महाराज हमारे देश के प्राचीन ऋषि-मुनियों की परम्परा में उदित हुए एक जाज्वल्यमान रत्न हुए हैं। उनका जीवन सद्धर्म के शिक्षण के लिए समर्पित था। उनका पाण्डित्य प्रगाढ़ एवं विशाल था। उनका प्रभाव उत्थान-पथ पर मनुष्यों को अग्रसर करने वाला था। आध्यात्मिक गम्भीरता में लीन वह महापुरुष अहंकार रहित थे। ऐसे महात्मा मनुष्यों के हृदयों में सदैव जीवित रहेंगे और ज्योति और प्रगति की, शान्ति एवं आत्मसाक्षात्कार की खोज में निरन्तर यत्नशील रहने वाले मानव समाज के पथ को भविष्य में भी सर्वदा आलोकित करते रहेंगे।

ऐसे निष्ठावान एवं उच्चादर्शपूर्ण महापुरुष की स्मृति में अपने देशवासियों के साथ में भी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

मोहनलाल सुखाड़िया

Trailing Cloud of Glory

Shri Hanumanthaiya, Chief Minister of Mysore State, writes :-

Acharya Shanti Sagar is "a trailing cloud of glory, came from God" to lead a life of sacrifice in this world.

He practised what he preached. We, in this troubled world, derive much calm of mind by constantly remembering such great souls.

K. Hanumanthaiya

दैवी ज्योति

मैसूर के मुख्यमन्त्री श्री के हनुमन्तय्या लिखते हैं :

आचार्य शान्तिसागर महाराज इस जगत में आत्मोत्सर्ग का जीवन चलाने के हेतु ईश्वर द्वारा प्रेषित 'महिमा की ज्योति छिटकाने वाले मेघ-खण्ड' हैं।

जैसा उपदेश वह देते थे, वैसा ही आचरण करते थे। इस अशान्त संसार में रहने वाले हम लोग, ऐसे महापुरुषों का निरन्त स्मरण करने से मानसिक शान्ति प्राप्त करते हैं।

के० हनुमन्तय्या

Jainism's Glory Enhanced

Shri Takhatmal Jain, Chief Minister, MadhyaBharat, writes :—

I am glad to learn that the All-India Digambar Jain Mahasabha is bringing out a special number of the Jain Gazette in memory of the late Acharya Shanti Sagar Maharaj. Acharya Shree was a great scholar and a renowned saint who greatly enhanced the glory of the Jain religion not only by his teachings but by putting into practice what he preached. It is in the fitness of things that the teachings and the memory of such a great saint and distinguished scholar be preserved for posterity. Your efforts in this direction are indeed praiseworthy and I wish your endeavour all success.
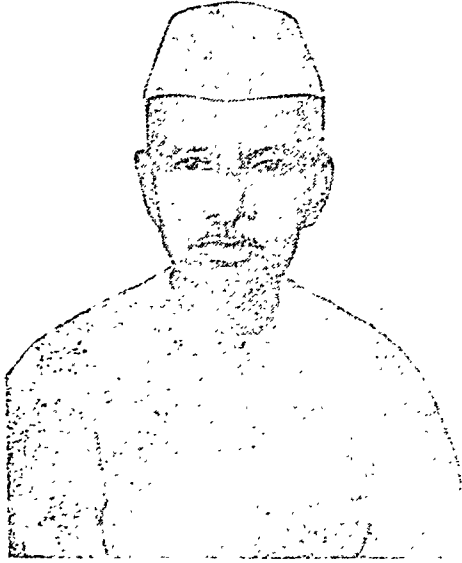
Takhatmal Jain

धर्म की महिमा की श्रीवृद्धि

मध्यभारत के मुख्यमन्त्री श्री तख्तमल जैन लिखते हैं :—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, स्वर्गीय आचार्य शान्तिसागर महाराज की स्मृति में "जैन गज़ट" का विशेषांक प्रकाशित कर रही है। आचार्य श्री प्रगाढ़ पण्डित एवं विख्यात सन्त थे। न केवल अपनी शिक्षा से, अपितु अपने उपदेशों पर स्वयं आचरण करने के द्वारा उन्होंने जैन धर्म की महिमा की श्रीवृद्धि की। ऐसे एक महान सन्त एवं विद्या पारंगत की स्मृति को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना निश्चय ही उचित एवं उपयुक्त है। इस दिशा में आपका प्रयास प्रशंसा-योग्य है। मैं आपके प्रयत्न की सफलता की कामना करता हूँ।

तख्तमल जैन

Noble Sacrifice

Hon. Shri Ram Saran Chand Mittal, Speaker, Pepsu Vidhan Sabha, writes :-

Jain saints and Munis have their own pattern of living characterised by austerity, simplicity and strict discipline in life. An outstanding example of this class is the life of Acharya Shanti Sagar Maharaj. Highly learned he has made the supreme sacrifice by laying down his life for the ideals for which he stood.

Ram Saran Chand Mittal.

महान त्याग

पेप्सू विधान सभा के अध्यक्ष श्री राम शरण चन्द मित्तल लिखते हैं :—

कठोर आत्मानुशासन, सादगी एवं वैराग्य जैन सन्तों-मुनियों की जीवन-चर्या की विशेषता है।

आचार्य शान्तिसागर महाराज इसके ज्वलन्त उदाहरण थे। वह महा विद्वान थे और उन आदर्शों की रक्षा करते हुए जिन पर वह जीवन भर स्थिर रहे, उन्होंने प्राणोत्सर्ग किया यह उनका महान त्याग था।

राम शरण चन्द मित्तल

Uinique Event

Hon. Shri Hargovind Pant ,Deputy Speaker, U. P. Vidhan Sabha, writes :-

The attainment of Nirvan and the manner of achieving it by shriyut Acharya Shanti Sagar Maharaj are unique events in the religious history of Bharat-Varsha. A life of asceticism and perfect non-violence like his will ever remain a high ideal for humanity. I bow my head in homage to the great Acharya.

Hargovind Pant

असाधारण

उत्तर प्रदेश विधान सभा के उपाध्यक्ष श्री हर गोविन्द पन्त लिखते हैं :—

आचार्य शान्तिसागर महाराज ने जिस ढंग से प्रशस्त पंथ पर चलकर स्वर्गारोहण किया, वह भारत वर्ष के धार्मिक इतिहास में असाधारण घटना है। उनका सा आदर्श यती-व्रत एवं सम्पूर्ण अहिंसात्मक जीवन साधारण मानव समाज के लिए सदैव दुर्लभ आदर्श ही रहेगा। उन महान आचार्य को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं नतमस्तक होता हूँ।

हरगोविन्द पन्त

कठोर तपश्चरण

श्री मिश्रीलाल गंगवाल, वित्त मंत्री, मध्य भारत, लिखते हैं :—

आप पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की पुण्य स्मृति में जैन-गजट का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं यह हर्ष की बात है। इस दिशा में किया जाने वाला प्रयास स्तुत्य है। पूज्य आचार्य श्री का जीवन कठोर तपश्चरण और महान आध्यात्मिक साधना का सुरम्य सुन्दर शिखर था। उनके द्वारा प्रकट किये गये अहिंसा और त्याग के मार्ग पर चलकर जग के असंख्य प्राणी आत्म-कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करके शांति पायेंगे। सर्वश्रेष्ठ व्रत सल्लेखना पूर्वक उनका निर्माण विशुद्ध आत्म तत्व और आत्म धर्म की ओर उनकी गहरी तथा अविचल श्रद्धा प्रकट करने वाला अपूर्व तथा अलौकिक उदाहरण है। उनके समान महान सन्त विरले ही हुए हैं और आगे होंगे भी। मैं अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ विनम्र भाव से उनके चरणों में श्रद्धांजलि चढ़ाता हूँ।

मिश्रीलाल गंगवाल
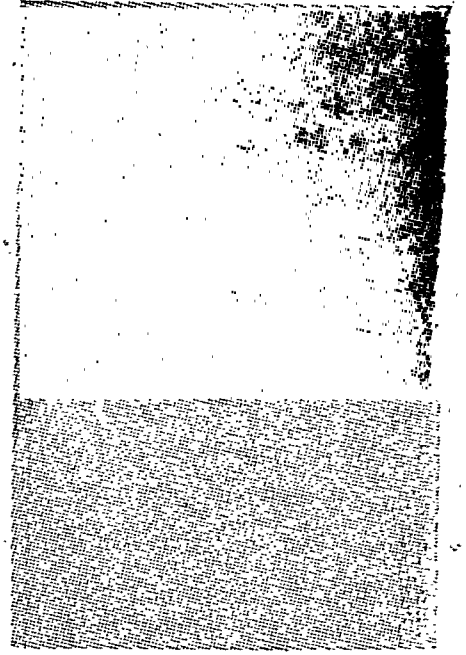
मंगलमयी प्रेरणा

श्री कमलापति त्रिपाठी, सिंचाई व सूचना मन्त्री उत्तर प्रदेश लिखते हैं:—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप आचार्य शांतिसागर महाराज की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये अपने पत्र का विशेषाँक प्रकाशित कर रहे हैं। हमारे देश में साधकों; तपस्वियों और सन्तों की परम्परा सदा से चली आई है और कोई भी युग ऐसा नहीं बीता जब भारत वसुन्धरा ने जगत की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के लिये महापुरुषों को जन्म न दिया हो। ये महापुरुष सभी क्षेत्रों में, सभी विचारों के और सभी संप्रदायों के मध्य उत्पन्न होकर अपने निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करते रहे हैं। उनका सन्देश युग-सन्देश बना, उनकी वाणी युगवाणी के रूप में प्रभावकारी सिद्ध हुई और जनता ने उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलकर अपने को कृत-कृत्य समझा। इस देश की यह विशेषता है कि यहां का कोई भी महापुरुष चाहे वह किसी सम्प्रदाय विशेष में उत्पन्न हुआ हो कभी भी संकीर्णता अथवा भेदभाव का समर्थक नहीं रहा है। उसने सदा सर्व जनहित की मंगलमयी प्रेरणा से प्रभावित होकर ही कार्य किया। जैन समाज की इस सम्बन्ध में अपनी विशेष देन है। भगवान महावीर की अमर वाणी के प्रभाव से आज भी ऐसे व्यक्ति हमारे बीच विद्यमान हैं जो क्षणभंगुर देह की उपेक्षा करके अविनश्वर आत्मा के उन्नयन के लिये आत्मार्पण कर देते हैं। आचार्य शान्तिसागर महाराज इसी परम्परा के व्यक्ति थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनका गोलोकवास भौतिकता की ओर आधुनिक अंध दौड़ से जनसमाज को विरत करने में समर्थ होगा। मैं इन कतिपय शब्दों के साथ उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—कमलापति त्रिपाठी

Proved Sprit's Superiority

Shri Brijlal Biyani, Finance Minister, M. P., writes :—

I am glad that the Bharat Varshiya Digambar Jain Maha Sabha is bringing out a special Homage Number of the 'Jain Gazette' in memory of the great Digambar Jain Saint, Acharya Shanti Sagar Maharaj. This is a laudable effort. It will not only perpetuate the work, sacrifice and memory of the late Shanti Sagarji Maharaj but will be a source of inspiration to all those who read it. Life is a mixture of sacrifice and enjoyment. Those who devote their life on the altar of sacrifice have always been respected in this world. Those who have sacrificed their life for their cause and more so for spiritual cause are really great. Shanti Sagarji Maharaj was one of such great men, who lived on the face of this earth and who proved to the world that spirit was stronger and powerful than body. Those who strive to achieve this spirit fulfil their existence.
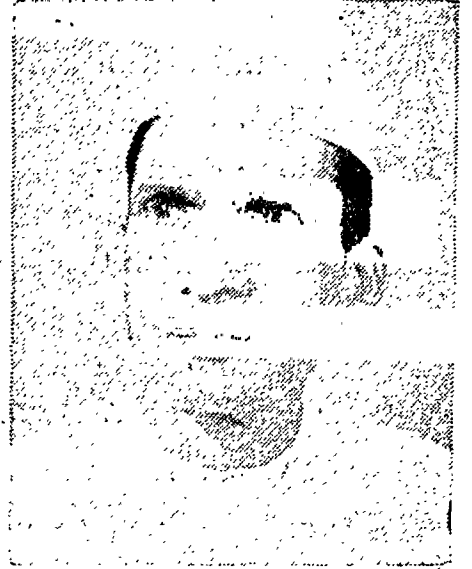
Brijlal Biyani

प्रेरणा का स्रोत

मध्यप्रदेश के वित्तमंत्री श्री ब्रिजलाल बियाणी लिखते हैं :—

यह जानकर हर्ष हुआ कि महान दिगम्बर जैन सन्त आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की स्मृति में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा "जैन गजट" का एक "श्रद्धांजलि विशेषांक" प्रकाशित कर रही है। इससे न केवल पूज्य आचार्य श्री की सेवाओं एवं बलिदान की स्मृति स्थायी रहेगी, अपितु उसका अध्ययन करने वालों को उससे प्रेरणा भी प्राप्त होगी। जिन महापुरुषों ने बलिदान की वेदी पर अपने जीवन अर्पित किये हैं, संसार सदैव उनका सम्मान करता रहा है। किसी ध्येय की—विशेषकर आध्यात्मिक ध्येय की पूर्ति में अपने जीवन जिन्होंने होम किये हैं, वास्तव में महापुरुष वे ही हैं। शान्तिसागर जी महाराज ऐसे ही महात्मा थे। उन्होंने इसी धरती पर रहकर यह सिद्ध कर दिया कि आत्मा शरीर से अधिक शक्तिमान एवं बली है। ऐसी आत्मिक शक्ति को जो प्राप्त करते हैं, वे ही जीवन को सार्थक बनाते हैं।

ब्रिजलाल बियाणी

NOBLE IDEAL

Shri Digambar Rao Bindu, Home Minister, Hyderabad State writes :—

India is a land which produced great Saints of all religions. It is a land where different peoples following different religious faiths live and work together, thus establishing a lesson in regard to religious toleration.

Though India is a secular state, still everyone is at liberty to follow the religion he chooses. It would be a wrong interpretation to say that secular state means state where there is no religion. It was the intention of the constitution-makers to give free play to all the religions in India.

Like other religious saints, the Jain community has also produced a number of saints. Janisim stands distinctly above all other religions in so far as its principles of non-violence and purity are concerned.

By revering the sacred memory of Acharya Shanti Sagar Maharaj, the great Digambar Jain Saint, we are paying our homage to the departed Saint and remind ourselves the great ideals he set before himself.

Digambar Rao

महान आदर्श

हैदराबाद राज्य के गृहमन्त्री श्री दिगम्बरराव बिन्दु लिखते हैं :—

भारत एक ऐसा देश है जिसने विभिन्न धर्मावलम्बी अनेक महान सन्तों को जन्म दिया है। भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयायी इस देश में साथ साथ रहते और मिलकर काम करते आ रहे हैं और इस प्रकार धार्मिक सहिष्णुता का आदर्श स्थापित कर रहे हैं।

भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य अवश्य है, किन्तु यहां प्रत्येक नागरिक को अपनी पसन्द के धर्म का अवलम्बन करने की पूरी छूट है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का यह अर्थ लगाना गलत है कि वह धर्म-रहित होगा। भारत के संविधान-निर्माताओं का उद्देश्य यही था कि इस देश में सभी धर्मों को स्वच्छन्द रूप से फलने-फूलने दिया जाय।

अन्य धर्मों की भांति जैन समाज ने भी अनेक सन्तों को जन्म दिया है। जहाँ तक अहिंसा एवं आचरण-शुद्धि का सम्बन्ध है, जैन धर्म का स्थान अन्य सब धर्मों से विशिष्ट एवं सर्वोपरि है।

महान दिगम्बर जैन सन्त आचार्य शान्तिसागर महाराज जैसे साधु-महात्माओं की पुनीत स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के द्वारा हम न केवल उन दिवंगत मुनि को अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं, अपितु उन महान आदर्शों का भी स्मरण करा लेते हैं जो उन्होंने हमारे सम्मुख उपस्थित किये थे।

दिगम्बरराव बिन्दु

ABODE OF TRUTH

Shri Soubhagyamal Jain, Minister of Revenue, Madhya Bharat, writes :-

Both Jains and non-Jains have received a severe blow owing to the demise of Acharya Shanti Sagar but it was a glorious death. The Acharya's supreme sacrifice has made it crystal clear that the Saint was the abode of Truth, Love and Spiritual Purity. I pray the Almighty to give peace to the departed soul.-Soubhagyamal jain

सत्य के निकेतन

मध्यभारत के राजस्व मन्त्री श्री सौभाग्यमल जैन लिखते है:---

आचार्य शान्तिसागर महाराज के शरीर-त्याग से जैन एवं अजैनों को भारी आघात अवश्य पहुंचा है, परन्तु उनकास्वर्गारोहण गरिमामय था। आचार्यश्री के महान प्राणोत्सर्ग ने यह स्पष्टतया निदर्शित कर दिया है कि वह सत्य, प्रेम एवं आध्यात्मिक विशुद्धि के निकेतन थे। परमात्मा से मैं प्रार्थना करता हूँ कि दिवंगत महापुरुष की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

सौभाग्यमल जैन

SPIRITUAL MASTER

Shri Sitaram Jajoo, Minister for Commerce, Madhya Bharat writes:-

For a man full of human failings it is really a difficult task to express any views about Acharya Shanti Sagarji. I associate myself with innumerable people in paying my homage and respects to Acharyaji for having carried out the message of 'The Master' to millions of people and practised it in his own individual life and ultimately achieving unification with 'The Master'. The world is served, sustained and saved by such saints whenever it faces degradation and degeneration.

I pray that we will continue to receive inspiration from his teaching for a long time to come.

Sitaram Jajoo

आध्यात्मिक गुरु

मध्यभारत के वाणिज्य मन्त्री श्री सीताराम जाजू लिखते हैं :—

मानवीय दुर्बलताओं से भरे मुझ जैसे व्यक्ति के लिए आचार्य शान्तिसागर जी के सम्बन्ध में कुछ कहना अत्यन्त कठिन है। आचार्य महाराज करोड़ों लोगों में जिनवाणी का प्रचार करते रहे और अपने निजी जीवन में उसके अनुरूप आचरण करते रहे। अन्त में उन्होंने जिन चरणों में ध्यान-लीन होकर स्वर्ग-प्राप्ति की। ऐसे सन्त की वन्दना एवं उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने वाले असंख्य लोगों के साथ मैं भी सम्मिलित होता हूँ। जब कभी संसार को अवनति एवं पतन का सामना करना पड़ा है, ऐसे ही सन्तों ने उसका उद्धार कर उसकी रक्षा एवं पुनस्थापना की है।

मेरी प्रार्थनामय कामना यही है कि हम चिरकाल तक उनके उपदेशों से स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त करते रहें।

सीताराम जाजू

SEEKER OF TRUTH

Shri Shyamlal Pandaviya, Minister for Public Works, Food and Information, Madhya Bharat, writes :—

So, Acharya Shanti Sagarji is now dead !

In his demise, the whole religious world in general and the Jain samaj of India in particular has suffered irrepairably and lost indeed an Apostle of Peace and Non-Violence.

It is really very difficult to describe him in words. As a highly learned scholar, as a spiritual leader, as a symbol of Purity, Love, Truth and Sacrifice ? A unique combination of all these virtues, indeed a wonderful personality.

To see him was to love and adore him out of all reverence and respect. Everybody who anytime went to him as a seeker of truth and self-awakening, always drew from him the high inspiration and aspiriation for attainment of all lofty ideals of life.

There was no pendantry and not the slightest shadow of affected pride or anything unreal when he set upon giving his "sermons" and out of the masterly study of most of the holy Jain scriptures, he preached all what he practised himself and thereby always set a model of Purity and Piety for thousands of his devotees and desciples—not only Jains but those hailed from all ranks and classes of people from everywhere.

The great saint lived a life of renunciation till the age of 84 years and when at the close, he took upon himself a 36 days complete fast, he amazed us all for the purification of his soul.

Such saints are rare to be born and when they are born and while they live, they make the world blessed and happy. They bring with them "solace" to mankind and leave lit the path unto eternity, after them.

Muni Shanti Sagarji lived such a glorious life and the noble traits of character he left behind will ever enshrine in our hearts for ages to come.

No. He is not dead. He shall always be alive. He has become immortal.

Shayamlal Pandaviya.

सत्यान्वेषी

मध्य भारत के लोककर्म, खाद्य एवं सूचना मन्त्री श्री श्यामलाल पाण्डवीय लिखते हैं :—

आचार्य शान्तिसागर महाराज अब नहीं रहे !

उनके निधन से समस्त धार्मिक जगत को तथा विशेष रूप से जैन समाज को ऐसी क्षति पहुँची है जिस की पूर्ति नहीं हो सकती । शान्ति और अहिंसा के एक महान आचार्य को हम खो बठे ।

आचार्य महाराज का शब्दों में वर्णन करना बहुत ही कठिन है । उनको धार्मिक भक्त कहें, पहुंचे हुए विद्वान कहें, आध्यात्मिक नेता कहें, पवित्रता, प्रेम, सत्य एवं बलिदान का प्रतीक कहें, क्या कहें ? वह इन सभी गुणों के अद्भुत सम्मिश्रण थे, सचमुच आश्चर्यजनक व्यक्ति थे।

Glorious Example

Shri G. L. Dogra, Finance Minister, Jammu and Kashmir State, writes:-

I am deeply grieved to learn the sad demise of Acharya Shanti Sagar Maharaj, the great Digambar Jain saint on the 18th Sept. 55 at the ripe age of 84. The demise is glorious at the same time,as the great saint of India willingly met his death after 36 days of self-imposed penance—fast of 36 days of soul-purification. This example of supreme self-sacrifice has few parallels in the spiritual history of mankind. Shri Acharya Shanti Sagar ceaselessly endeavoured for the salvation of the entire mankind by preaching the noble Jain precepts of Truth, Universal love and Peace. The great Jain saint, a multi-linguist scholar, was a beacon of light to all the lovers and seekers of truth and spiritual purity. I pay my humble homage to this great appostle who practised what he preached.

G. L. Dogra

महिमामय शरीर-त्याग

जम्मू और कश्मीर के वित्तमन्त्री श्री जी. एल. डोगरा लिखते हैं :—

महान दिगम्बर जैन सन्त आचार्य शान्तिसागर महाराज ने ८४ वर्ष की परिपक्व आयु में १८ सितम्बर, १९५५ को शरीर-त्याग किया, यह जानकर मुझे हार्दिक व्यथा हुई। परन्तु उनका शरीर-त्याग कितना महिमामय था ! छत्तीस दिन की स्वेच्छापूर्ण सल्लेखना—उपवास एवं तपश्चर्या—के उपरान्त उन्होंने स्वर्गारोहण किया। मानव समाज के आध्यात्मिक इतिहास में यह सर्वोच्च समाधि-मरण शायद ही कोई सानी रखता हो। आचार्य शान्तिसागर महाराज, जीवन भर, सत्य, सर्वजीव-प्रेम एवं शान्ति के महान जैन सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे और समस्त मानव समाज के आध्यात्मिक उत्थान के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहे। सत्य एवं आध्यात्मिक पावनता के अन्वेषकों के लिए आचार्य महाराज पथ-प्रदर्शक ज्योति-दीप थे। वह महान सन्त थे, बहुभाषाविद थे और विद्वान थे। जो कुछ वह उपदेश देते थे, उसी के अनुसार आचरण करते थे। ऐसे महान धर्मोपदेशक की पुनीत स्मृति में मैं हार्दिक श्रद्धा के सुमन अर्पित करता हूँ।

जी. एल. डोंगरा

उनके दर्शन मात्र से प्रेम और श्रद्धा उमड़ आती थी, उसका वार रहता था न पार। जो कोई भी सत्यान्वेषण की इच्छा से उनके सान्निध्य में गया, उसे जीवन के सभी उच्च ध्येयों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा मिलती थी, उत्कट इच्छा होती थी।

उनके उपदेशों में पाण्डित्य-प्रदर्शन या कृत्रिम अभिमान का लेशमात्र भी नहीं होता था। उनमें स्वाभाविक सरलता प्रवाहित होती थी। जैन शास्त्रों का विशाल अध्ययन करने के फलस्वरूप, वह उनके सारतत्वों को अपने आचरण में लाते थे और उसी का उपदेश भी देते थे। इस प्रकार वह अपने हजारों भक्तों एवं शिष्यों के लिए—जिनमें जैन ही नहीं, सभी धर्मों एवं वर्गों के लोग थे—पवित्रता एवं धार्मिकता के आदर्शस्वरुप बन गये थे।

चौरासी वर्ष की आयु तक आधुनिक त्यागी जीवन बिताने के बाद इन महान सन्त ने जब छत्तीस दिन की सल्लेखना धारण की तो उनकी आत्मिक पवित्रता को देखकर हम सब विस्मय-चकित रह गये थे।

ऐसे सन्त विरले ही होते हैं और जब वह होते हैं तो अपने जीवन-काल में संसार को कृतार्थ एवं सुखी बना जाते हैं। वह अपने साथ दैवी सान्त्वना लाते हैं और जाते समय अमरत्व का मार्ग मनुष्य-मात्र के लिए आलोकित कर जाते हैं।

मुनि शान्तिसागर जी का जीवन ऐसा ही ज्योतिमय रहा और वह उत्तम गुणों का जो उदाहरण प्रस्तुत कर गये हैं, वह हमारे हृदयों पर युगों तक अक्षुण्ण रूप से अंकित रहेगा।

नहीं, वह मरे नहीं हैं। वह सदा जीवित रहेंगे। वह अमर हो गये हैं।

श्यामलाल पाण्डवीय

Upholder Of Noble Precepts

Shri Bhagawat Jha Azad, M. P., writes :—

Acharya Shanti Sagar, the distinguished upholder of noble precepts of universal love, peace, non-violence, truth and non-covetousness was a beacon light to the seekers of truth.

The world torn by the threats of atom and hydrogen bombs has lost in him an illustrious son who all his life threw his weight on the side of peace & progress.

Bhagwat Jha Azad

आदर्श-ध्वजा के वाहक

संसद सदस्य श्री भगवत झा आजाद लिखते हैं :—

आचार्य शान्तिसागर महाराज, सर्वजीव-प्रेम, शान्ति, अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रह के उच्च आदर्शों की ध्वजा को उन्नत करने वाले विख्यात सन्त थे। सत्य का अन्वेषण करने वालों के लिए वह मार्गदर्शक आलोक-से थे।

अणु एवं उदजन बमों के आतंक से त्रस्त इस संसार ने उनके देहावसान से एक ऐसे तेजस्वी सुपुत्र को खो दिया है, जो जीवनभर शान्ति एवं प्रगति के प्रबल समर्थक रहे हैं।

भगवत झा आजाद

Great Teacher

Dr. P. V. Kane, Member, Lok Sabha, writes :—

It was with great sadness that I learnt about the passing away of the great Digambar Jain saint, Acharya Shanti Sagar Maharaj. I respectfully pay my humble homage to the great teacher and saint.

When alive, he was the guide, philosopher and friend of millions of people who hung upon his words of wisdom, comfort and solace. In passing away from this world of hatreds and conflicts he set a noble example of serene fortitude and unconcern about the mortal coil in which most souls are enmeshed. Our country and the whole world are the poorer by his passing away.

P. V. Kane

महान पथ-प्रदर्शक

लोक सभा के सदस्य डा. पी. वी. काने लिखते हैं :—

महान दिगम्बर जैन सन्त आचार्य शान्तिसागर महाराज के निधन का समाचार पाकर मुझे हार्दिक शोक हुआ। उन महान आचार्य एवं सन्त को मैं नम्रतापूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

अपने जीवन-काल में वह लाखों लोगों के पथ प्रदर्शक गुरु एवं मित्र थे। विवेक, शान्ति एवं सान्त्वना देने वाले उनके शब्दों को लोग बड़ी ही लगन के साथ सुनते थे। ईर्ष्या-द्वेष एवं संघर्ष से भरे इस संसार से प्रस्थान करते समय वह नश्वर हाड़-माँस के शरीर के प्रति पूर्ण अना- सक्ति एवं शान्ति के साथ पीड़ा को सहने की मानसिक दृढ़-ता का एक महान आदर्श स्थापित कर गये हैं। शारीरिक मोह में फंसे हुए मानव उससे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। आचार्य श्री के निधन से हमारे देश और समस्त संसार को भारी क्षति हुई है।

पी. वी. काने

जैनत्व का उत्कृष्ट आदर्श

राज्य सभा के सदस्य श्री रतनलाल जी मालवीय लिखते हैं:--

ऐतिहासिक दृष्टि से २५०० वर्ष पूर्व भगवान महावीर के निर्वाण के बाद से आचार्य शान्तिसागर महाराज का स्वर्गारोहण शायद पहिला उदाहरण है जिसने जैन धर्म का सच्चा स्वरूप अपने चरित्र व क्रियाओं द्वारा दिग्दर्शित किया। जैन समाज में विद्वानों और उच्च संयमी पुरुषों की कमी नहीं है। आचार्यों और मुनियों का आविर्भाव भी अच्छी संख्या में हुआ है पर जैनत्व की पराकाष्ठा का जो उदाहरण महाराज ने प्रदर्शित किया वह जैन धर्म के इतिहास में अमर रहेगा। यद्यपि हरएक जैनी उस श्रेणी पर पहुँचने का स्वप्न नहीं देख सकता फिर भी उनका यह स्वर्गारोहण मानव जाति को यह संदेश देता है कि हर एक पुरुष व स्त्री अपने २ क्षेत्र में अपने कर्तव्य की इति श्री करदें। मेरे जैसे छोटे आदमी में इससे आगे सोचने की शक्ति नहीं है। आचार्य शान्तिसागर महाराज का शरीर-त्याग भविष्य में शताब्दियों तक मानव जाति का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

जैनियों का यह कर्तव्य है कि जैन धर्म की जो ज्योति महाराज ने जगाई है उसे कभी धीमी न पड़ने दें।

रतनलाल मालवीय

श्री सेठ अचलसिंह जी संसद-सदस्य लिखते हैं:-

यह जानकर बड़ा शोक हुआ कि श्री शान्ति सागर जी महाराज ने ३६ दिन का सन्थारा धारण करके शरीर त्यागा।

जीते जानते शरीर का त्याग करना एक बड़ा ही कठिन कार्य है। संसार में प्रत्येक जीव मरने के मुकाबिले अनेक दुःख उठा करके भी जीना पसन्द करता है। संसारके ऐसे विरले ही पुरुष होते हैं जो ज्ञान पूर्वक सन्थारा धारण करके शरीर का त्याग करते हैं। श्री शान्तिसागर उन में से एक थे। आपने अनेक जैन और अजैन प्राणियों को अहिंसा सत्य और प्रेम का उपदेश दिया और मनुष्यों को आत्मा और पुद्गल के भेद को बताया। जिससे अनेक प्राणी तरे।

मेरी श्री भगवान से यही प्रार्थना है कि श्री शान्तिसागर जी की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

अचलसिंह

मृत्युंजय सन्त

संसद-सदस्य एवं प्रसिद्ध पत्रकार श्री कन्हैयालाल वैद्य लिखते हैं :-

संसार और मानव जाति के कल्याण के लिए भारत-भूमि पर महापुरुषों के अवतार समय समय पर होते रहे हैं। महात्मा बुद्ध और राष्ट्रपिता गांधी जी के बाद इस देश में हमें आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के द्वारा जो ज्ञान, त्याग, तपस्या और व्यवहारिक जीवन का उत्कृष्ट मार्ग दर्शन मिला उससे न केवल भारत बल्कि ससार की मानव जाति को प्रकाश मिला—तथा शान्ति मिली—दुःख की बात है करपात्र को अपनी सम्पत्ति बना कर आचार्य श्री शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतु की परवाह किये बिना जंगलों, पर्वतों, गिरि कन्दराओं के बीच प्राचीन ऋषियों की भांति भ्रमण करते हुए जीवन के अन्तिम क्षण तक संसार को प्रकाश देते रहे।

मोक्ष का मार्ग दर्शन करने वाले इस महापुरुष ने अपने जीवन में जो कुछ कहा वह साक्षात रूप में कर दिखाया। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के कार्य में भी आचार्य श्री की दिव्य वाणी और उपदेशों के प्रभाव से लाखों नहीं करोड़ों व्यक्तियों ने प्रेरणा ली और देश तथा मानवता के लिए भामाशाह की तरह त्याग का उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। यद्यपि आचार्य श्री शरीर से नहीं हैं किन्तु आने वाले अनन्तकाल तक उनके त्याग और उपदेश हमें और मनुष्य जाति को प्रेरणा तथा मार्ग दर्शन प्रदान करते रहेंगे यही नहीं आज जब देश समाजवाद की ओर बढ़ रहा है आचार्य श्री के त्याग के सर्वश्रेष्ठ आदर्श का अनुकरण कर हमारे धनी लोग देश की जनता के लिए भामाशाह का अनुकरण कर अपनी सम्पत्ति और धन को देश के अर्पण करने की आवश्यकता हुई तब पीछे नहीं रहेंगे।

आचार्य श्री उन महापुरुषों में से थे जो प्रबल इच्छा शक्ति की शक्ति का अन्तिम समय तक मानवजाति को प्रत्यक्ष दर्शन कराते रहे। उन्होंने इच्छा शक्ति के बल पर ही अपने जीवन की अन्तिम सांस ली। मौत से भयभीत न होने वाला मनुष्य मौत के सामने सर नहीं झुकाता है—इसे प्रत्यक्ष कर दिखाने वाले सन्त महापुरुष के अन्तिम बलिदान को संसार याद रखेगा। राष्ट्रनेता नेहरू जी ने कहा है कि "मनुष्य देवताओं के सामने हार नहीं मानता और न वह मौत के सामने ही सिर झुकाता है। जब कभी वह हार मानता है, अपनी इच्छा शक्ति की कमजोरी की वजह से ही मानता है।"

युगों के बाद महापुरुषों का जन्म होता है। आचार्य श्री का नाम भी आज संसार—और उस संसार को प्रेरणा और मार्ग दर्शन देने वाला है जो शान्ति की खोज में है—तो शान्ति के सागर के रूप में प्रेरणा दायक है। आज स्वेच्छा से जब स्वर्गवास कर आचार्य श्री स्थूल रूप में हमारे बीच नहीं है उनके नाम लेते ही लाखों आत्माओं के हृदय पवित्र हो जाते हैं। उस महापुरुष का हम किन शब्दों में उपकार मानें जितना उपकार माने थोड़ा है।

आचार्य श्री ने धर्म के सच्चे स्वरूप को बताकर शंकाओं को दूर कर दिया तथा उस पर साम्य ज्ञान का प्रकाश फैलाकर मनुष्य को मनुष्यता का उपदेश दिया। मनुष्य को शास्वत शान्ति का सच्चा मार्ग दर्शन देकर संसार की मानव जाति पर जो उपकार किया है ऐसी महान पवित्र आत्मा ने करोड़ों मनुष्यों का मार्ग दर्शन कर उद्धार कर हमारे जीवन काल में स्वर्ग प्राप्त किया यह हमारे युग की महान ऐतिहासिक घटना है। प्रभु हमें शक्ति दे कि हम आचार्य श्री के बताये कांटे भरे पथ पर चल कर संसार की साधना में रहते हुए कर्तव्य पालन कर सच्चे रूप में आचार्य श्री के उपदेशों को व्यवहार में लाते रहें।

कन्हैयालाल

Luminent Saint

Shri Sumat Prasad Jain, Member, Council of States, writes :–

Acharya Shanti Sagar Maharaj was a great scholar of Sanskrit and he was one of the greatest saints of his time. He was always calm and serene and attracted all who came in contact with him by his devotion, sincerity and penance. He became a muni at the age of 47. Since then he became an object of adoration. He was the best exponent of Jain religion and had mastered the Jain philosophy of life. He was considered to be an authority of the Jain shastras.

He lived a life of great austerity and willingly and smilingly invited death by performing a fast unto death as he had lost his eyesight and it had become impossible for him to lead his life any longer according to the injunctions of Jain shastras.

He had his disciples amongst the rich and the poor alike. Thousands used to visit him during the 36 days of his fast. To the last he performed his daily routine and used to deliver sermons to his follwers. He knew no distinctions between man and man. He has set an ideal so that others may follow his example and attain liberation. His disciples and followers will always remember him as a great saint of high luminence and will receive inspiration from his life.

Sumat Prasad

उज्वल सन्त

राज्य सभा के सदस्य श्री सुमतप्रसाद जी जैन एडवोकेट लिखते हैं:—

"आचार्य शान्तिसागर महाराज संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और अपने युग के सर्वश्रेष्ठ सन्त थे। वह सदैव शान्तिमय एवं गम्भीर चिन्तन में लीन रहे। जो कोई उनके सम्पर्क में आया, उनकी श्रद्धा, सच्ची निष्ठा एवं तपश्चर्या से वरबस उनकी ओर आकृष्ट हो जाता था। ४७ वर्ष की आयु में वह निर्ग्रन्थ मुनि बन गये थे। उस समय से देश भर में लोग उनके भक्त एवं श्रद्धालु बन गये। जैन-जीवन दर्शन के वह मर्मज्ञ थे और जैन धर्म के सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक थे। जैन शास्त्रों के वह अधिकारी माने जाते थे।

उनका सारा जीवन त्यागमय था। दृष्टि क्षीण होने के कारण जब जैन शास्त्रों के नियमों को पूर्णतः पालन करना दुष्कर हो गया तो उन्होंने सल्लेखना धारण की और स्वेच्छा से, हंस मुख हो, मरण को आमन्त्रण दिया।

उनके शिष्यों में धन कुवेर भी थे और निर्धन भी। उनकी छत्तीस दिन की सल्लेखना के समय हजारों लोग उनके दर्शनार्थ आते-जाते थे। अन्तिम घड़ी तक उन्होंने अपने दैनंदिन के अनुष्ठानों का बड़ी ही निष्ठा के साथ पालन किया और अपने अनुयायियों को उपदेश भी दिया करते थे। मानव-मानव के बीच वह कोई भेद नहीं मानते थे। उन्होंने एक ऐसा आदर्श पथ प्रशस्त किया है जिस पर चलकर और लोग भी मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। उनके शिष्य एवं अनुयायी उन्हें एक महान सन्त एवं प्रकाश-पुंज के रूप में सदैव स्मरण करेंगे और उनके जीवन से सदैव प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। सुमतप्रसाद
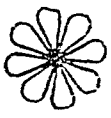
युग प्रवर्तक महात्मा
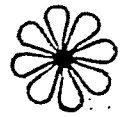
दानवीर, सरसेठ हुकमचन्द जी, इन्दौर लिखते हैं:-

मुझे जीवन में संभवत इतना दुःख कभी नहीं हुआ जितना परम पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के वियोग से। उनके अभाव से सचमुच आज समाज से धार्मिक संरक्षण उठ गया। वे आदर्श साधु महान आचार्य और अपने क्षेत्र के सर्व श्रेष्ठ युग प्रवर्तक महात्मा थे।

अनासक्ति ने उन्हें साधु बनाया और अकिंचनता उनकी चिर संगिनी बनकर रही। उनका तपस्वी जीवन प्रवृति और निवृत्ति मार्ग का आदर्श समन्वय था। हमारे युग के साधुओं में से वही एक साधु ऐसे थे जिनके लिए सभी के हृदय में समान रूप से श्रद्धा भक्ति और समपर्ण की भावनाएं थी।

जब जब धर्म पर संकट आया हम उनके पास दौड़ गये फल स्वरूप हमें उनसे प्रेरणा और उत्साह मिले। वे हमारी धार्मिक आकाँक्षाओं के प्रतीक थे। मेरे जीवन पर उनके साधु जीवन की छाप तो थी ही परन्तु उनके समाधि मरण ने तो मुझे अत्यधिक अनुप्राणित किया है। धर्म के गौरव स्वरूप ऐसे महान साधु के समकालीन होने का मुझे गौरव है।

मैं उस दिवंगत तपस्वी के पावन चरणाविंद में अपनी विनीत श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ और साष्टांग पांवाढोंक करता हूँ।

हुकमचन्द

तपस्वी धर्मशासक

श्री रायबहादुर राजकुमारसिंह जी, इन्दौर, लिखते हैं:

पूज्य आचार्य शांतिसागर जी का निधन धार्मिक समाज के लिये सबसे बड़ी क्षति है। उन जैसा कठोर तपस्वी और धर्मशासक निकट भविष्य में होना दुर्लभ है। आचार्य पद के सभी गुण उनमें मूर्तिमान होकर अवतरित हुये थे। वे पतितों के उद्धारक, धर्मात्माओं के सहायक और साधुओं के मार्ग निर्देशक थे।

उन्हें देखकर प्राचीन दिगम्बर जैन साधुओं की चर्या साकार हो उठती थी। इस निकृष्ट युग में परम पूज्य आचार्य कुन्दकुन्द की परंपरा को अक्षुण्ण रखने का श्रेय उन्ही को है।

वे दर्पण की तरह स्वच्छ, आकाश की तरह निर्लेप और वायु की तरह निःसङ्ग थे। उनकी निरीह साधना साधु जगत के लिये ईर्पा की चीज थी। वे आशाओं की तरह आए, उमङ्ग बनकर रहे और स्वप्न की तरह चले गये।

उनका आदर्श समाधिमरण इस युग की महान अभूतपूर्व घटना है। सच तो यह है कि उन्होने इस श्लाघनीय मृत्यु के बहाने अपने व्यक्तित्व को अमर कर लिया है। उनकी दिवंगत आत्मा रत्नत्रय तेज से सतत जाज्वल्यमान रहे ऐसी मेरी हार्दिक भावना है।

उस तपः पूत महान आत्मा के चरणों में मेरी शतशः बन्दना।

राजकुमारसिंह

आध्यात्मिक-आकाश दीप

दानवीर सर सेठ भागचन्द जी सोनी, अजमेर अध्यक्ष, भा० दि० जैन महासभा लिखते हैं:-

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती तपोनिधि श्री० १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज के स्वर्गारोहण से जैन समाज का एक ऐसा आध्यात्मिक आकाश दीप बुझ गया है जो श्रावकों एवम् त्यागियों रूपी नौकाओं को सन्मार्ग प्रदर्शित करता रहा। उनके समक्ष का कोई वीतराग मुनि एवम् जीवोद्धारक आचार्य निकट स्मृति में अन्य कोई नहीं हुआ। वैसी अद्वितीय विभूति के पुनः दर्शन करने का सौभाग्य निकट भविष्य में हमें प्राप्त होगा। यह कल्पना करना भी कठिन प्रतीत हो रहा है।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के एक सेवक--तथा गत कुछ वर्षों से उसके अध्यक्ष के रूप में मुझे समाज के सन्मुख उपस्थित विभिन्न समस्याओं, संकटों के सम्बन्ध में आचार्य श्री से समय समय पर चर्चा तथा उनके आदेश प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इन अवसरों पर यह देखकर मैं अक्सर आश्चर्य चकित रह जाता था कि जब हम सब लोगों की लौकिक युक्तियाँ एवम् व्यवहार पटुता हार मान जाती थी, तब भी आचार्य श्री की अटल आगम निष्ठा एवम् तपस्या से तीक्ष्ण विवेक, जटिल से जटिल समस्याओं का भी कोई न कोई सुविधास्पद एवम् सुगम हल निकाल लेता था और हर तरह के संकटों को दूर करने का उपाय प्रस्तुत कर देता था। आचार्य श्री की इस अद्भुत प्रतिभा के कितने ही ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गत ३५ वर्षों में जैन समाज में जो नयी धार्मिक जागृति फैली है, उसका तथा समाज एवम् धर्म पर आये विभिन्न संकटों को दूर कर उनकी रक्षा करने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है तो वह तपोमूर्त्ति आचार्य श्री ही हैं।

अपने जाज्वल्यमान इंगिनी मरण से आचार्य श्री ने न केवल जैन समाज का, अपितु समस्त भारतवर्ष का माथा उन्नत कर दिया है और जड़ पर चेतन की विजय की अमर ध्वजा फहरादी है। ऐसी अजेय, अतिमानवीय आत्मा की पुण्य स्मृति में करोड़ों भक्त नर-नारियों के साथ मैं भी हार्दिक भक्ति से नत-मस्तक होकर विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और यह कामना करता हूँ कि आचार्य श्री का ज्योतिमय व्यक्तित्व एवम् उपदेश हमें सदैव सन्मार्ग पर अग्रसर करते रहें।

Worthy of Admiration

Shri Chogmal Chopra, President, Shwetambar Jain Terapanthi Mahasabha, Calcutta, writes :-

Acharya Shanti Sagarji Maharaj, the great Digambar Jain Saint, after having lived in this world full of cares and anxieties for nearly 84 years, breathed his last on the 18th September, 1955. His soul left the mortal frame on that day, and must have gone to a very high celestial plane. A Jain muni who suceessfully observes the five great mahavratas and who, having fulfilled his mission, leaves the world with the final Sallekhana stage knowingly and bravely undertaken, is worthy of all the admiration and reverence due to such a veera (brave soul). He uplifted his own soul and helped thousands and lacs of other souls to rise. No praise is too high for such a soul. May the world take from his pure life, the lessons of non-violence and truth, and try to follow the noble faith of peace and fraternity among all living beings is the humble desire of every Jain. May mankind in general and Jains in particular try to banish all traces of animosity and hatred from their hearts by remembering his life and teachings and thus pay a fitting homage to his noble memory is my fervent wish.

Chogmal Chopra

श्रद्धास्पद साधु

श्री छोगमल चोपड़ा, अध्यक्ष, श्वेतांबर जैन तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता, लिखते हैं :—

महान दिगम्बर जैन सन्त आचार्य शान्तिसागर महाराज ने, दुखों एवं चिन्ताओं से भरे इस संसार में ८४ वर्ष जीवन व्यतीत करने के वाद, १८ सितम्बर १९५५ को शरीर-त्याग किया। उनकी आत्मा, नश्वर शरीर की कैंचुली उतार कर ऊर्ध्वगामी हुई और निःसन्देह एक उच्च स्वर्गिक पद को प्राप्त हुई होगी।

वह जैन साधु, जो जीवन भर पांच महाव्रतों का सफलतापूर्वक पालन करता है और अपने जीवन-ध्येय को पूरा करने के वाद, पूरे सोच-विचार एवं दृढ़ संकल्प के साथ सल्लेखना धारण कर संसार-त्याग करता है, वीरोचित श्रद्धा एवं भक्ति का पात्र है। आचार्य श्री ने स्वयं अपना आत्मोद्धार करने के साथ साथ हज़ारों-लाखों अन्य व्यक्तियों को भी आत्मोद्धार का मार्ग दर्शित किया।

प्रत्येक जैन की यही विनम्र कामना है कि संसार आचार्य श्री के सम्यक् जीवन से अहिंसा एवं सत्य की शिक्षा ग्रहण करे और उस उच्चादर्श का पालन करने का प्रयास करे ताकि सभी जीवों में शान्ति एवं भ्रातृ भावना स्थापित हो सके। समस्त मानव समाज—विशेषकर जैन समाज—को चाहिये कि आचार्य श्री के जीवन एवं उपदेशों को ध्यान में रखते हुए, अपने हृदयों से विद्वेष एवं घृणा के भावों को पूर्णतया दूर कर दें। आचार्य श्री की भव्य स्मृति को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने का यही सही मार्ग है।

छोगमल चोपड़ा

Great Sacrifice

Shri Kastur Bhai Lal Bhai leader of the Shwetambar Jain Sect. and well known industrialist of Ahmedabad writes :-

"Acharya Shanti Sagar's supreme sacrifice in search of purification of soul and truth is one of the finest illustrations of adoption of Jain principles of living. By his death, a void has been created in the Jain community, which it will be difficult to fill in." Kasturabhai Lal Bhai

ज्वलन्त उदाहरण

श्वेतांबर समाज के प्रधान भारत के प्रमुख उद्योगपति श्री कस्तूरभाई लालभाई अहमदाबाद लिखते हैं :—

आत्मशुद्धि एवं सत्यान्वेषण के हेतु आचार्य शान्तिसागर महाराज का प्राणोत्सर्ग जैन सिद्धान्तों का जीवन में पालन करने का एक ज्वलन्त उदाहरण है। उनके स्वर्गारोहण से जैन समाज में एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है जिसकी पूर्ति करना कठिन होगा। कस्तूरभाई लालभाई
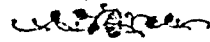
मोक्ष मार्ग के पथिक

श्री भट्टारक जिनसेन जी महाराज महसाल लिखते हैं :—

आचार्य महाराज का स्वर्गारोहण आध्यात्मिक जगत की एक अद्भुत घटना थी। मेरा यह परम सौभाग्य है कि छोटी आयु से ही मैं आचार्य श्री का चरण सेवक बना। उनकी भी मुझ पर विशेष कृपादृष्टि रहती थी। सैद्धांतिक तर्क-वितर्क में या शिक्षा जैसे व्यसनों में न पड़ कर सदैव आत्म-चिन्तन एवं धर्म-कार्यों में लीन रहने का उन्होंने मुझे उपदेश दिया था और उसी को शिरोधार्य मानकर मैं आज तक उस पर आचरण करता आ रहा हूँ। आचार्य श्री की तपोमहिमा के सम्बन्ध में मुझे कई दृष्टांत (स्वप्न) हुये हैं। इन दृष्टांतों के आधार पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि आचार्य श्री तीसरे भव में अवश्य मोक्ष को प्राप्त होंगे। मोक्ष मार्ग के उन महान पथिकके अनथक चरणों में मैं शतशः प्रणाम करता हूँ।

वास्तव में जगद्वंद्य

श्री सेठ भाईचन्द रूपचन्द जी दोशी बम्बई से लिखते हैं :—

परम पूज्य प्रातस्मरणीय, आचार्य शिरोमणि, श्री १०८ शांतिसागर जी महाराज की अलौकिक तपश्चर्या व दृढ़ यम सल्लेखना व्रत ने दिगम्बरत्व के सर्वोच्च पद का दिग्दर्शन कराकर जैन धर्म की महानता व उसके गौरव को ऊंचा उठाया है। वे बाल ब्रह्मचारी थे। प्रारम्भ से अंततक आत्महित व परहित की विशुद्ध भावना से वे महान् माने गये, और महान ही सिद्ध हुये। देव गुरु शास्त्र की संरक्षणता में तत्पर रहे, जिनकी दृढ़ता ने शासन की भूलका संशोधन करवाकर, जैन समाज की उच्च संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा। ऐसे यमविजेता, आचार्य पुंगव के प्रति हमारी करबद्ध हार्दिक श्रद्धांजलि।

मानव समाज की विभूति

श्री सेठ गणपतराय जी सेठी, लाडनूं (राजस्थान) लिखते हैं :—

परम पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का पार्थिव शरीर आज हमारे बीच से विदा ले चुका है। किन्तु आध्यात्मिकता के यज्ञ में अपने शरीर को घिस-घिस कर आहुति देने वाले महातपस्वी के दिव्य-सन्देश युग-युग तक विश्व के जन-जन के मन को उद्बोधित करते रहेंगे। वे संसार की एक महान विभूति थे। उनका जीवन अहिंसा एवं दया से पूर्ण एक ज्वलन्त आदर्श था। आचार्य श्री अपनी दैवी सद्भावना, कृपालु व्यक्तित्व एवं दृढ़ तपश्चर्या के आधार पर एक श्रेष्ठ प्रेरणादायक वातावरण निर्माण कर गये जो युग-युग तक नन्दा-दीप की तरह समस्त संसार को आलोकित करता रहेगा। ऐसे महान साधक, अमर आत्मा, श्रेष्ठ तपस्वी के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करता हुआ हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ और ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी महान विभूतियाँ समय समय पर मानव समाज का पथ प्रदर्शन करती रहें।

महान् आदर्श

श्री संघपति सेठ गेंदमल जी जवेरी, बम्बई लिखते हैं :—

परमपूज्य श्री १०८ जगद्वन्द्य चारित्रचक्रवर्ती योगीन्द्रचूड़ामणि समाविगत आचार्यप्रवर श्री शान्तिसागर महाराज न केवल आत्मसाधना करने वाले सामान्य साधु मात्र थे, वे एक ऐसे लोकोत्तर महान पुरुष थे कि जिनकी तुलना में संभवत: कई शताब्दियों से कोई दि० जैन महामुनि नहीं हुआ, और न होने की संभावना ही है। उनके द्वारा धर्म और समाज के हितरूप में हुए कार्य सर्व विश्रुत हैं। अन्त में उनके पुनीत गुणों का स्मरण करते हुए, परोक्ष नमस्कार करते हुए, तथा उनके आदर्श गुणों को प्राप्त करने की भावना करते हुए पुन: उनके चरणों में श्रद्धाँजलि अर्पण करता हूँ।

अमिट छाप

श्री रा० ब० सेठ हरकचन्द जी पांड्या रांची लिखते हैं :—

प्रात:स्मरणीय पूज्य श्री १०८ आचार्य शाँतिसागर जी महाराज आज हमारे सामने नहीं हैं तो भी उनकी भव्य शांत मुद्रा हमारे हृदय में अंकित है। उनकी स्वर्गस्थ पुनीत आत्मा से भावना करता हूँ कि ऐसी शुद्धात्माओं का मूर्त अवस्था में हमें निरन्तर साक्षात् दर्शन उपलब्ध होता रहे, ताकि हम अपने जीवन को उनके सदृश पवित्र एवं उन्नतम बना सकें।

तपस्या की अमर ज्योति

श्री सेठ जगन्नाथ जी पांडया कोडरमा, लिखते हैं :—

विश्ववंद्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज के निधन से जैन समाज को अपार क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति होना निकट भविष्य में कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। उन्होंने यम सल्लेखना द्वारा वीर मरण कर हमारे सामने एक महान आदर्श उपस्थित किया है। लाखों मानवों ने उनके उपदेश से लाभ उठाया। मैं अत्यन्त विनम्र शब्दों में उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पण कर अपने को धन्य समझता हूँ।

इस युग की महान आत्मा

श्री बाबू मदनलाल जी काला कलकत्ता लिखते हैं :—

आधुनिक युग के सर्वोच्च महात्मा परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य मुझे दो बार प्राप्त हुआ। जो शाँति मुझे उनके दर्शनों से मिली वह अकथनीय है। वे इस युग के महान पुरुष थे। जैसे वे महात्मा थे वैसा ही उनका समाधिमरण अपूर्व भी हुआ जो कि इस युग में पढ़ने और सुनने में नहीं आया। मैं इस दिवंगत अमर महात्मा को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

प्रणामांजलि

श्री सेठ भंवरीलाल जी बाकलीवाल, लालगढ़, (बीकानेर) लिखते हैं :—

मेरी प्रबल हार्दिक इच्छा थी कि कुंथलगिरि जाकर आचार्य श्री के अन्तिम दर्शन प्राप्त कर अपना जीवन सफल बनालूं परन्तु कुछ ऐसे महान् प्रतिबंधक कारण उपस्थित हो गये कि वह प्रबल इच्छा पूरी न हो सकी। आचार्य श्री महान् तपस्वी, ज्ञानी और योगी थे। उन्होंने सल्लेखना धारण कर जो मरण किया उससे जैन सिद्धान्त को कार्यान्वित कर उस पर चार चांद लगा दिये। उस महान् परमगुरु के पुनीत चरणों में बारंबार प्रणामांजलि।

जगद्वन्द्य साधु

श्री सेठ घनश्यामदास जी सरावगी लालगढ़ लिखते हैं :—

यद्यपि आप अब इस भौतिक शरीर में विद्यमान नहीं हैं, तो भी परोक्ष रूप से अनेक गुण गान करने से स्तुति करने वालों के पुण्य संचय होता ही है। इसीलिए आप के दिवंगत होने पर भी लाखों नर नारी आपके चरणों में बारंबार नमस्कार करते हुये देखे जाते हैं। आपने अपने कल्याण के साथ साथ असंख्य प्राणियों को सत्य मार्ग पर लगाया है। इसलिए आपके अनेक गुणों में अत्यन्त अनुरक्त होकर भक्तिवश आपके चरणों में बारंबार नमस्कार करता हूँ।

पारसमणि

श्री सेठ दीपचन्द, चांदमल एवं नेमीचन्द्र जी बड़जात्या, (फर्म भंवरलाल चांदमल कलकत्ता) लिखते हैं :—

हमारे और हमारे परिवार की प्रवृत्तियों में सरागता से कुछ विरागता की ओर जो परिवर्तन हुआ यह सब परम वीतरागी चारित्र चक्रवर्ती आचार्यवर्य श्री १०८ शांतिसागर जी महाराज के परम शिष्य श्री १०८ स्व० मुनिराज चंद्रसागर जी महाराज के चरणों के निकट संपर्क का ही प्रभाव है।

आचार्य श्री जैसे लोकोत्तर महापुरुष थे वैसा ही उन्होंने आदर्श भी लोकोत्तर ही, सल्लेखना मरण करके उपस्थित किया है। ऐसे महान् आदर्श परम गुरु को हजारों बार विधि अनुसार नमस्कार।

धर्म के मर्मज्ञ

श्री सेठ कुन्दनमल जी चन्दनमल जी सेठी, सुजानगढ़, लिखते हैं :—

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज आज इस वसुंधरा पर विद्यमान नहीं हैं लेकिन फिर भी उनका पावन उपदेश युगयुगांतर तक इस जगती तल के जीवों का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा यह ध्रुव सत्य है। आप जैन धर्म के परम मर्मज्ञ थे। जैन सिद्धांत संरक्षण का आपको हर समय विचार रहता था। उनकी स्मृति को हृदयंगम करते हुये आज हम इस भावना को दोहरावें कि उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर हम अपना आत्म विकाश कर सकें। मिथ्यामार्ग विध्वंसक आचार्य श्री के चरणों में हमारा शतशः प्रणाम।

आचार्य श्री का सारा ही विश्व ऋणी है

आचार्यवर्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने देश और समाज का अनुपम कल्याण किया और अन्त में मौत को ललकार कर अपूर्व आदर्श भी उपस्थित किया। वे विश्व की महान् निधि थे। वास्तव में आचार्य श्री का यह विश्व बहुत ऋणी है। स्वर्गीय आचार्य श्री के चरणों में मेरा बारंबार नमस्कार हो।

शिखरीलाल मांगीलाल, बडजात्या (गेनीलाल मांगीलाल) नागौर-राजस्थान

आदर्श साधुचर्या

श्री लाला मिश्रीलाल जी सौगानी हाथरस लिखते हैं :—

आचार्य महाराज की साधुचर्या तो निर्दोष व आदर्श थी ही। किन्तु कषायों की मन्दता, स्वरूप शांतिमुद्रा, एवं भाषा-समिति का पालन आचार्य श्री का अपूर्व था। उनके-समीप पहुँचकर उनका विरोधी भी, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से नतमस्तक हो ही जाता था। उनके प्रति मैं शत बार श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए भी तृप्त नहीं हो रहा हूँ।

कुछ मधुर संस्मरण

श्री शान्तिप्रसाद जी जैन प्रोप्राइटर जैन बुक एजेंसी नई दिल्ली

पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज के प्रथम दर्शन मैंने उस समय किये थे जब वह दिल्ली पधारे थे। मैं उन दिनों निरा बालक था, इस कारण उन दिनों की सभी बातें मुझे स्पष्टतया याद नहीं हैं। हाँ इतना अवश्य याद है कि दरियागंज दिल्ली में एक विशाल मेला लगता था और आचार्य संघ के दर्शन करने के लिए दूर दूर से हजारों यात्री प्रति दिन दिल्ली आते थे।

मैं अपने पूज्य पिता जी की उंगली पकड़कर प्रतिदिन आचार्य श्री के दर्शन को जाता था। जब तक पिता जी आचार्य श्री के सामने से न उठते तब तक मैं भी एकटक आचार्य श्री की ओर देखता हुआ वहीं बैठा रहता। आचार्य श्री के प्रवचन को भी मैं चाव से सुनता, यद्यपि उसकी कोई भी बात समझ में नहीं आती थी।

एक दिन इस तरह जब मैं आचार्य श्री के सम्मुख बैठा था, तब देखा आचार्य श्री से कुछ लोग जनेऊ ले रहे हैं। बालक तो था ही, इच्छा हुई कि हमें भी एक जनेऊ मिल जाय। मैंने बेधड़क आचार्य श्री से कहा, "मुझे भी एक जनेऊ दे दीजिए।" आचार्य श्री ने मुस्कुराहट के साथ मेरी ओर देखा और बड़े ही वात्सल्य के साथ मुझे भी एक जनेऊ दे दिया। उनका वह स्नेह मेरे शिशु-हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो गया।

इसके बाद कई बार आचार्य श्री के दर्शन एवं उपदेश-श्रवण का सौभाग्य मुझे मिला। सन् १९५३ में जब सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि में आचार्य श्री के मैंने दर्शन किये, तब वह मराठी भाषा में प्रवचन कर रहे थे। जब उनको मालूम हुआ कि दिल्ली से कुछ सज्जन आये हैं तो उन्होंने उपस्थित मराठी भाषियों से कहा, "आप लोग थोड़ी-बहुत हिन्दी तो समझते ही होंगे। दिल्ली से आये हुए ये भाई मराठी बिलकुल नहीं समझ सकते। इसलिए अब मैं हिन्दी में ही बोलूंगा ताकि ये भी समझ सकें। इसके बाद आचार्य श्री का प्रवचन हिन्दी में ही हुआ। सुनकर हम पुलकित हो उठे। कैसे कृपालु थे आचार्य श्री।

आचार्य महाराज से मेरी अन्तिम भेंट ३ सितम्बर, १९५५ को हुई। परन्तु उस समय वह सल्लेखना के महा व्रत में तल्लीन थे। हजारों की संख्या में श्रद्धालु जन उनके दर्शनार्थ नित-प्रतिदिन आते थे। आचार्य श्री के दर्शन प्रातःकाल अभिषेक के समय अथवा अपरान्ह में ३॥ बजे जब वह एक ऊंचे मंच पर विराज कर लोगों को दर्शन देते थे। उस अवसर पर हमें ऐसा लगता था, मानों जिनेन्द्र भगवान का समवसरण हो रहा हो। मैंने चार दिन तक इस अद्भुत दर्शन का लाभ उठाया। इच्छा तो बहुत थी और भी कुछ दिन वहां रहकर जीवन को सार्थक करने की, परन्तु परिवार साथ था, कुन्थलगिरि में वर्षा और स्थान-संकोच के कारण बड़ी परेशानी थी, इस कारण वह इच्छा पूरी नहीं हो सकी।

आचार्य श्री के कितने ही स्निग्ध, मधुर संस्मरण मेरे हृदय पर अंकित हैं। सरलता की मूर्ति, कृपानिधान आचार्य श्री की पुनीत एवं प्रेरणाप्रद स्मृति में भक्ति-विह्वल हो, श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

आध्यात्मिक गुरु

श्री गुरुभक्त सेठ चन्दूलाल जी सराफ बारामती लिखते हैं :—

परम पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के चरणों में सेवा करने का परम सौभाग्य एवं पुण्य लाभ मुझे कई वर्ष से प्राप्त था। मुझ जैसे अकिंचन के प्रति उनका अनुग्रहपूर्ण स्नेह अवर्णनीय था। वह चमत्कारी प्रभाव के आध्यात्मिक गुरु थे। जिनवाणी का प्रचार करने तथा जैन धर्म का पुनरुद्धार करने में उनकी सेवा अतुलनीय थी। भक्ति विह्वल हृदय के साथ मैं उनके पुनीत श्रीचरणों में नतमस्तक होकर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

तपश्चर्या की प्रभा

आचार्य महाराज का दर्शन एवं उनके वचनामृत का श्रवण मैंने कई बार किया है। ऐतिहासिक सल्लेखना के समय उनके निकट रह कर उनकी महान तपश्चर्या की प्रभा को आंख भर देखने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ। वह प्रेरणादायक अनुभव मेरे मन पर सदा के लिये अमिट रूप से अंकित हो गया है। उस पावनस्मृति में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं अपने को धन्य मानता हूँ।

रावजी देवचंद शाह, शोलापुर

अन्तिम आशीर्वाद

श्री ब्र० पं० सुमतिबाई जी शहा, शोलापुर लिखती हैं :—

परमपूज्य आचार्य महाराज ने ३६ दिन की सल्लेखना ग्रहण करके दुनिया के सामने यह आदर्श उपस्थित कर दिया है कि दि० जैन साधु कितनी निर्भीकता के साथ मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार रहता है।

आचार्य श्री की सल्लेखना के समय मुझे भी उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने अंतिम आशीर्वाद देते हुए यह कहा था कि श्री धवल, जय धवल, महाधवल का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद करके महिलाओं को पढ़ने के लिये इस ओर प्रेरणा करनी चाहिये और उनकी प्रतियां छपाकर उनमें वितरित करनी चाहिये। आचार्य श्री के आदेशानुसार यह कार्य प्रारम्भ हो गया है। मैं उनके चरणों में शतशः श्रद्धांजलि समर्पित करती हूँ।

—आचार्य महाराज की सेवा में अनेकों वार जाकर उनकी चरण-रज शिरोधार्य करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त था। उनका आत्म बल महान था। जंवू अण्णा आरवाड़े

महान प्रभाव

श्री राजूबाई रावजी शोलापुर लिखती हैं :—

परमपूज्य आचार्य शाँतिसागर जी महाराज के पुण्य दर्शनों का महान लाभ अनेकों वार प्राप्त हुआ। उनकी सौम्य एवं शाँत मुद्रा के दर्शन मात्र से कोई भी प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता था। कैसी भी विकट समस्या क्यों न हो आचार्य श्री से उसका सुलभ हल मिल जाता था। मैं उनके चरणों में विनीत श्रद्धा के सुमन अर्पित करती हूँ।

मानवोद्धारक

मैंने अपने जीवन में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज जैसा कठोर तपस्वी, मानवोद्धारक एवं दृढ़-संयमी यतीन्द्र-अन्य कोई नहीं देखा है। उनकी अमर सल्लेखना के समय कुंथलगिरि में दर्शनार्थियों की मैं जो विनय सेवा कर सका, उसे मैं अपने जीवन का सर्वोत्कृष्ट कार्य मानता हूँ। इन मृत्युंजय महा तपस्वी को शत-शत प्रणाम।

वालचंद लालचंद बार्सी

चारित्र के मूर्तिमान प्रतीक

आचार्य शांतिसागर महाराज के दर्शन करने का मुझे कई वार सौभाग्य प्राप्त हुआ। एवं आहार दान का भी लाभ लिया। श्री शांति के अग्रदूत, ज्ञान के भण्डार, और चारित्र के मूर्तिमान प्रतीक थे। उनके गुणों का वर्णन मुझ जैसे तुच्छ बुद्धि वाले के लिये सभव नहीं। आचार्य श्री ने अन्त समय में यम सल्लेखना ग्रहण कर शास्त्रों की वात को साक्षात कर दिखाया। ऐसे महामुनि के चरणों में कोटिशः प्रणाम। माणिकचंद वीरचंद गाँधी फलटन

आचार्य महाराज का हम प्रतापगढ़ निवासी लोगों के सौभाग्य से चातुर्मास हुआ और उनके उपदेश से महती प्रभावना हुई। आपके उपदेश से प्रभावित होकर प्रतापगढ़ नरेश ने भी अपने राज्य में १० दिन अहिंसा दिवस मनाने की घोषणा की थी। आचार्य श्री महातपस्वी और शांत स्वभावी थे। ऐसे महान साधक के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम। जैन पंचायत प्रतापगढ़

—यद्यपि आचार्य श्री का आसाम में विहार नहीं हुआ, तथापि हम लोगों को उन भव्यात्मा के दर्शन का सौभाग्य कई वार प्राप्त हुआ। तपस्या की मूर्ति एवं अपरिग्रह के अवतार आचार्य महाराज के दिव्य-चरणों में हमारी विनम्र श्रद्धांजलि। दि० जैन पंचायत नलवाड़ी, आसाम

संस्कृति के प्रतीक

श्री रा० सा० सेठ मटरूमल जी बैनाड़ा, आगरा लिखते हैं :—

यों तो संसार के सभी धर्मों में वीतराग महात्मा को उच्च स्थान प्राप्त है किन्तु भारतीय संस्कृति में दिगम्बरत्व अथवा वीतरागता की विशेष मान्यता है। आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने पूर्ण दिगम्बरत्व और वीतरागता का जो स्पष्ट आदर्श उपस्थित किया है वह आधुनिक संसार के लिये एक वरदान के समान है।

आज उनका भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं रहा, तो भी उनके गुण और कार्य हमें बराबर एक ज्योतिमय मार्ग का प्रदर्शन कर रहे हैं। उनकी पुण्य स्मृति हमारे हृदय में एक अमर जीवन ज्योति का प्रकाश फैला रही है। जीवन और मृत्यु दोनों का ही उद्देश्य है कर्मों पर विजय। कर्मों से यह विजय युद्ध ही जैन-धर्म या भारतीय दर्शनों का प्रमुख ध्येय है जिसके मूर्तिमान प्रकाशमान प्रतीक आचार्य शांतिसागर जी थे, हैं और सदा रहेंगे।

अमर वरदान

श्री सेठ भगवानदास जी शोभालाल जी, सागर, लिखते हैं :—

श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराज की कठोर तपश्चर्या ने विश्व को आश्चर्य चकित कर जैन धर्म को प्रकाशमान बनाया था। आपके समस्त कार्य जैन संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए अमर वरदान सिद्ध हुए हैं। मैं अपने पवित्र हृदय से पूज्यपाद १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के चरणों में श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

तेजस्वी साधु

श्री सेठ सुमेरचंद जी पाटनी, लखनऊ, लिखते हैं :—

यों तो दिगम्बर जैन मुनियों की परम्परा चतुर्थकाल से चली आ रही है, किन्तु इधर चार पांच सौ वर्षों में दिगम्बर जैनाचार्य पूज्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज के समान अन्य महान तेजस्वी एवं तपोनिष्ठ साधु नहीं हुए, जिन्होंने अपने धर्म की प्रभावना जैन धर्म के अनुयायियों के साथ साथ दूसरे धर्म पर भी प्रकट करने में इतनी महान् सफलता प्राप्त की हो। आचार्य श्री ने जिस श्रद्धा, त्याग, तप एवं निष्ठा की अमर ज्योति जगाई है, वह आने-वाले युगों तक मानव समाज के पथ को प्रदर्शित करती रहेगी। अविनाशी सुख के अधिकारी परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज के पूज्य चरणों में मैं पुनः पुनः अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

लोकोत्तर साधना

श्री सेठ राजाराम जी, अध्यक्ष, सिद्ध क्षेत्र सोनागिर संरक्षणी कमेटी, शिवपुरी, लिखते हैं :—

आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज हमारे देश के उन महान् सन्तों में से एक थे, जिनका जन्म इस देश-जाति एवं धर्म के उत्थान के लिये हुआ था। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण अध्यात्म चिन्तन में व्यतीत होता रहा है। उनकी पवित्र लोकोत्तर साधना आज के भौतिक वादी जगत की जड़ों को हिला देने वाली सिद्ध हुई है।

ऐसे महान् सन्त के चरणों में मेरा सिर श्रद्धा से झुक कर नमस्कार करता हुआ एक दो शब्द रूप श्रद्धा के सुमन चरणों में अर्पण करके मैं अपना जीवन सफल मानता हूं।

—आचार्य श्री ने समाज की जो बहुमुखी सेवा और उपकार किया है, उसका आभार चुकाना सम्भव नहीं। ऐसे साधु पुंगव के चरणों में शत बार नमोस्तु।

गुलाबचन्द जैन सोनकच्छ

मोही प्राणियों के लिये महान् आदर्श

श्री सेठ कुंदनलाल जी गंगवाल लखनऊ लिखते हैं:—

मुनिपुङ्गव श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने स्वयं भेद विज्ञान से न केवल स्वात्म कल्याण किया किन्तु संसार के मोही प्राणियों के लिये एक ज्वलंत उदाहरण उपस्थित कर दिया है। साथ ही यह भी बता दिया कि एक दिगम्बर साधु मृत्यु का कितनी निर्भीकता के साथ आलिंगन करता है। आचार्य श्री के पुनीत चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मुझे महान हर्ष होता है।

—इस युग के मानतुंग जिनकी चरम तपस्या में धर्म पर आई हुई राज्य बेड़ियाँ स्वयं चकनाचूर होकर धर्ममार्ग निर्बाध हुआ उन आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित है।

स० सि० रतनचन्द जैन, बामौरकलां.

चारित्र्य पुंज

श्रीमान् रा० सा० सेठ मोतीलाल जी ब्यावर लिखते हैं :—

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का सन् १९३३ में हम लोगों के सौभाग्य से ससंघ चातुर्मास हुआ था। उस समय भी वैयावृत्ति करने एवं आहारदान आदि का सौभाग्य मुझे मिला था। वैसे और भी कई वार उनके दर्शनों का लाभ लिया। आचार्य श्री शान्ति के भंडार और चरित्र के अद्वितीय पुंज थे। जब जब भी मैंने उनके दर्शन किये अपूर्व आनन्द के साथ नई आभा, नई स्फूर्ति मुझे मिली। मैं उनके चरणों में विनीत श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

कोटिशः श्रद्धांजलि

श्री रा०ब० सेठ लालचन्दजीसेठी, उज्जैन लिखते हैं:--

आज भारत भर में और विदेशों में भी, जैन धर्म की शुभ यशः पताका जो फहरा रही है, उसका मुख्य श्रेय आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की तपश्चर्या एवं धर्म-प्रभावना को ही है। उन महापुरुष की पुण्य-स्मृति में कोटिशः श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

परमोपकारक सन्त

देहली के प्रसिद्ध जौहरी श्री हीरालाल जी कपूरचंद जी लिखते हैं —

जब जैन समाज अन्धेरे में भटक रहा था और अपने पृथक अस्तित्व तक को गंवाने की स्थितिमें था तब आचार्य श्री सूर्य की भांति उदित हुये और धर्म प्रभावना की ज्योति छिटकायी। उन्हींका पुण्य प्रभाव है कि आज जैन समाज सुसंगठित एवं धर्म निष्ठ हो सका है। इन परमोपकारक श्रेष्ठ सन्त की स्मृति में शतशः प्रणाम।

ज्ञान - रवि

उनके दर्शन से धर्म-निष्ठा की प्रेरणा मिलती थी। उनके सरल सुबोध शब्दों में गूढ़ तत्वार्थ भरे रहते थे। वह ज्ञान-रवि एवं तपस्या के भंडार थे। उनकी स्मृति में मेरी विनम्र श्रद्धांजलि। पन्नालाल जैनी आदर्स देहली

—जब मैं सोचती हूँ कि यदि आचार्य श्री न होते तो क्या होता, तब मन कृतज्ञता से भर जाता है। उन परमोपकारक को शतशः श्रद्धांजलि।

ब्र. कस्तूरबाई नवाई

धर्म की गंगा का प्रवाह

श्री पं० अमोलकचन्द जी उडेसरीय स० महामंत्री महासभा इन्दौर लिखते हैं:—

परमपूज्य आचार्य श्री के दर्शन करने का मुझे कई वार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य श्री एक महान तपस्वी, महान साधक और दृढ़ व्रती थे। जैन धर्म, संस्कृति और जैन मन्दिरों की धार्मिक मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये आचार्य श्री ने महान् त्याग किया।

भा० दि० जैन महासभा पर उनकी महती कृपा रही है और इसीलिये सल्लेखना के दिनों में महासभा को सदैव की भाँति धर्म पर दृढ़ रहने का आदेश दिया। आपकी ही कृपा का फल है कि आज हम सबको मुनिदर्शन सुलभ है। आचार्य श्री ने दक्षिण से उत्तर तक करीब ३५००० मील की पैदल यात्रा करके धर्म की जो गंगा प्रवाहित की वह सदैव जन-जन के हृदय में अंकित रहेगी। ऐसे महान तपस्वी के पुनीत चरणों में मैं अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

महा तपस्वी

श्री सेठ बिर्धीचन्द जी गंगवाल जयपुर लिखते हैं :–

आचार्य श्री का सन १९३२ में जयपुर में चातुर्मास हुआ था। वैसे चातुर्मास के अतिरिक्त भी मैंने आचार्य श्री के दर्शनों का लाभ किया है। आचार्य श्री महान तपस्वी थे। अन्तिम दिनों में सल्लेखना ग्रहण कर उन्होंने शास्त्रों की बात को प्रत्यक्ष कर दिखाया। ऐसे महायोगी के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये महान हर्ष होता है।

यथा नाम तथा गुण

श्री सेठ सुगनचंद जी बगड़ा सुजानगढ़ लिखते हैं :–

आचार्य श्री ने दक्षिण भारत में जन्म लेकर न केवल दक्षिण को कृतकृत्य किया बल्कि भारत में सर्वत्र विहार कर अपने चरणों से सभी प्रांतों को पवित्र किया। आचार्य श्री यथानाम तथा गुणवाले थे। उनके पुनीत दर्शन लाभ से मैं अपने को धन्य मानता हूँ।

—आचार्य श्री ने भारत में सर्वत्र बे रोकटोक विहार कर मुनि मार्ग को प्रशस्त बनाते हुये धर्म की जो पावन गंगा बहाई वह चिरस्मरणीय रहेगी। उनके चरणों में मैं श्रद्धावनत हूँ। जयप्रसाद जैन जगाधरी

अमर ज्योति

भारतवर्ष में ३५००० हजार मील पैदल यात्रा कर आचार्य श्री ने अहिंसा धर्म की अमर ज्योति जगाई और मानव जाति को सतपथ का मार्ग बताया। चारित्र चक्रवर्ती का जीवन प्रारम्भ से सच्चरित्र और आदर्श रहा और तपस्या, त्याग और साधना से ही आपका आत्म बल उच्च कोटि का हो गया। जिससे भयानक सिंह, विषधर सर्प, चिवटियां आदि के वड़े वड़े उपसर्ग कष्ट आने पर भी मेरू पर्वत के समान दृढ रहे, विचलित न हुये। धन्य है आपकी साधना को! मैं पूज्य श्री के चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

डूंगरमल सबलावत जैन डेह

महान उपकारक

श्री सेठ कन्हैयालाल कस्तूरचन्दजी सेठी, कूच बिहार, लिखते हैं :—

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने जैन समाज को अपने उपदेश द्वारा आत्म कल्याण का मार्ग प्रदर्शित कर महान उपकार किया है। आपने अन्त समय में यम सल्लेखना धारण कर संसार के समक्ष उच्च आदर्श उपस्थित कर वर्तमान के त्यागी वर्ग एवं श्रावकों के लिए पथ-प्रदर्शन कर दिया है। हम पूज्य गुरु के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं!

—आचार्य श्री ने जैन धर्म, जैन संस्कृति और जैन मन्दिरों की धार्मिक मर्यादा को अक्षुण्ण वनाये रहने के लिये हम लोगों का जो मार्गदर्शन किया वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके चरणों में कोटि कोटि प्रणाम।

नथमल सेठी कलकत्ता

—आचार्य श्री ने अपने इंगिनी-मरण द्वारा यह दिखला दिया कि जैन मुनियों की तपो महिमा का सूर्य इस पंचम काल में भी अस्त नहीं हो गया।

चंपालाल भूमरमल तिनसुकिया

—तपस्या के कठिन पथ पर चलकर आचार्य श्री स्वयं स्वर्गारोहण कर गये और साथ साथ समाज को भी मोक्ष-मार्ग आलोकित कर गये।

कुंदनलाल भंवरलाल लुहाड्या पाडली

—जिन महा तपस्वी ने अपनी सल्लेखना द्वारा मरण पर विजय पाकर अमरत्व प्राप्त कर लिया उन अध्यात्म संत को शतशः प्रणाम। हरकचंद सेठी तिनसुकिया

उत्कृष्ट तपश्चर्या

श्री लक्ष्मीचन्द्र रूपचन्द्र जी छावड़ा, नलवाड़ी, आसाम, लिखते हैं :—

प्रातः स्मरणीय, परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराज की उत्कृष्ट तपश्चर्या के वल से असंख्य जीवों की आत्मा चारित्र के सम्मुख होकर पवित्र हुई। ऐसी व्यापक धर्म-प्रभावना इससे पूर्व की कई शताब्दियों में शायद ही कभी देखने में आयी हो। अपने इस सुदीर्घ तपोयज्ञ में सल्लेखना के रूप में आचार्य श्री ने जो पूर्णाहुति दी, वह तो धर्म-विमुख जीवों को भी धर्म निरत करने की प्रेरणा देनेवाली अद्भुत घटना थी। ऐसे आचार्य परमेष्ठी को कोटिशः प्रणामांजलि अर्पित करते हैं।

—आचार्य श्री ने जहां समस्त मानव समाज को सत्य का पथ प्रदर्शित किया, वहां महिला समाज को उन्होंने धर्म-निष्ठ एवं निर्भीकता का महान वरदान दिया। विशेषकर जैन महिला समाज उनके निकट चिर-ऋणी रहेगी।

महिला समाज पलासवाड़ी

—लाखों आत्माओं को मुक्ति का सच्चा मार्ग वतलाकर स्वयं अपनी ज्ञान-ज्योति में अन्तिम क्षण तक संलग्न तथा सावधान रहने वाले पूज्य आचार्य श्री के पुनीत चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

फूलचन्द जैन, वम्बई

—जिनका पावन उपदेश मुमुक्षु जगत का पथ प्रदर्शन करता रहेगा ऐसे गुरुदेव को श्रद्धा से नत होकर श्रद्धांजलि समर्पित है। पं. भैया शास्त्री, शिवपुरी।

—आचार्य श्री की तपोमहिमा ऐसी थी कि विरोधी भी उनके भक्त वन जाते थे। उन अद्वितीय महापुरुष को विनम्र श्रद्धांजलि। सुमतिचन्द्र जैन मोरेना

—आचार्य श्री का इंगिनी-मरण अद्भुत प्रभावोत्पादक रहा। उनके पुनीत चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि।

कन्हैयालाल नारे नांदगाँव

—पथ भ्रष्ट प्राणियों के मार्ग दर्शक आचार्य शान्तिसागर महाराज के श्री चरणों में भक्ति पूर्वक मेरी श्रद्धांजलि प्रस्तुत है। पं० शान्तिदेवी जैन, शिवपुरी

—आचार्य श्री के समाधि-मरण से जग को महान प्रेरणा मिली है। शिवकरण जैन लाडनूं

संस्कृति के महान् रक्षक

श्री सेठ निरंजनलालजी, बम्बई, लिखते हैं :—

धर्म एवं धर्मायतनों पर आये हुये संकटों को अपनी दृढ़ तपश्चर्या तथा आत्मबल द्वारा परिहार करने वाले एवं अपनी दिव्य अमृतमयी वाणी द्वारा आचार भ्रष्ट मानवों का सतत कल्याण कर धर्म की सच्ची प्रभावना तथा संस्कृति की पूर्ण रक्षा करने वाले विश्ववंद्य आचार्य श्री के चरणों में मैं हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

श्री भीकमचन्दजी शाह पाटनी मेसर्स जैन ब्रादर्स कानपुर लिखते हैं :—

इस युग में जबकि हिंसा और ईर्षा का बोलबाला था तब आचार्य श्री ने संसार के सामने यह आदर्श रखा कि यदि मानवजीवन को सफल बनाना है तो इस अहिंसा द्वारा ही बनाया जा सकता है। यदि हम आचार्यश्री के प्रति निष्ठा रखते हैं तो हमें चाहिये कि उनके आचरण और उपदेशों को अपने जीवन में उतारें।

—कई शताब्दियों के बाद इस युग के सर्व श्रेष्ठ आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने भारत में सर्वत्र विहार कर अनेकों भव्यों को कल्याण के मार्ग पर लगाया और अन्तमें सल्लेखना का उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। ऐसे दृढ़ तपस्वी विश्वोद्धारक आचार्य श्री के पावन चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि। **सुजानमल सोनी अजमेर**

—यह मेरा अहोभाग्य है कि आचार्य श्री के पावन चरणों में स्वयं शीस नवाने तथा लक्ष्मी पुत्रों एवं सरस्वती-पुत्रोंको उनकी चरण-वन्दना करते देखकर मुग्ध होने के मुझे कई सुअवसर प्राप्त हुए। उनकी पुण्य स्मृति में मेरी विनम्र श्रद्धांजलि। हीराचन्द बोहरा अजमेर

—गत सातसौ वर्षों में अहिंसा और अपरिग्रह की निर्मल सरिता बहाने वाला आचार्य श्री सदृश युग पुरुष विश्व ने नहीं देखा। आचार्य श्री धर्म के स्तंभ, ज्ञान के प्रखर सूर्य और चारित्र के महान आदर्श थे। उनके चरणों में हमारी विनीत श्रद्धांजलि।

तेजपाल काला स० संपादक जैन दर्शन नांदगांव

—मैंने सन ५३ में बाहुबली के महामस्तकाभिषेक जाते हुये बार्सी में आचार्य श्री के दर्शन किये थे। वह एक महान् आत्मा थी। उन जैसा तपस्वी गत ७०० वर्षों में न हुआ और न होगा। मैं उनके चरणों में शतशः श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। **सुखलाल जैन सखावतपुर (आगरा)**

चरित्रबल के प्रतिनिधि

श्री गणेशीलाल जैन अध्यापक—श्री महावीर दि० जैन कालेज, आगरा लिखते हैं :—

पूज्य आचार्य श्री सभी प्रकार के भौतिक वाद के विरुद्ध आध्यात्मिक सचाई और शांति की आधार शिला पर खड़े थे। चरित्र विकास को ही सब प्रकार की उन्नति का साधन मानते थे। इस सत्य को उन्होंने शब्दों से नहीं किन्तु अपने दिगम्बर चरित्र बल से दिग्दिगन्त में व्याप्त कर दिया। विश्व शांति के लिये ऐसे चरित्रबल के प्रतिनिधि महात्मा सदा जयवन्त रहें।

—महाराज ने यम-सल्लेखना पूर्वक अपने पार्थिव शरीर का जो त्याग किया, वह दृश्य प्रत्येक दर्शक के मानसपटल पर टंकोत्कीर्ण है। उनका चरण-सान्निध्य हमको भी शीघ्र प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना करते हुए हम उनके पुनीत चरणों में यह विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

—पं० तनसुखलाल काला, जालना।

—आचार्य श्री अपने विशिष्ट चारित्र के कारण चारित्र चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित थे। आचार्य श्री ने अपना साराजीवन जैन संस्कृति को दृढ़ एवं संगठित करने में बिताया। ऐसे आचार्य श्री के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित कर मैं अपने को गौरवान्वित समझता हूँ।

—सागरमल पांड्या गिरीडीह

—जैनधर्म, जैन संस्कृति और जैन मंदिरों की धार्मिक मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने में आचार्य श्री ने महान तपस्या की और जिसी के प्रभाव से धर्म की रक्षा हुई। वह महान आत्मा थी। उनके बताये मार्ग का अनुसरण करना ही उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना है।

—जमनालाल स्वरूपचंद धूलियान

—धर्म पर आये संकटों को आचार्य श्री ने अपनी तपो महिमा से दूर किया। उनके श्री चरणों में श्रद्धांजलि।

मोहनीदेवी मनीपुर

—कर्म विजेता, पवित्रात्मा, नरपुंगव आचार्य श्री इस युग के सबसे बड़े तपस्वी महापुरुष थे। उनके दर्शनों का मुझे कई बार सौभाग्य हुआ। ललितपुर चातुर्मास के समय आहार दानकाभी लाभ लिया। ऐसे महायोगी के चरणों में सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये महान हर्ष होता है।

पं० मुन्नालाल समगोरया सागर

जैन जगत का गौरव

श्री मदनलाल जी पाटनी, मंत्री, श्री दिगम्बर जैन चन्द्रसागर सम्मेलन, सुजानगढ़, लिखते हैं :—

इस विकट कलिकाल में जबकि धर्म के प्रति लोगों की उपेक्षाकृत भावनाएं बढ़ रही हैं आचार्य श्री का होना जैन जगत का गौरव था। परम पूज्य आचार्य महाराज द्वारा दीक्षित त्यागी व्रतियों की विनय पूर्वक सेवा, वैयावृत्य करना एवं चारित्र सम्राट के बताये हुए पथ का अनुसरण कर धर्म प्रभावना करते हुए आत्म कल्याण करना ही आचार्य श्री के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धांजलि अर्पित करना है।

—उनकी निष्कलंक दिव्य जीवनचर्या हमारे जीवन को सन्मार्ग-प्रदर्शन करेगी। जैन समाज डिब्रूगढ़

—आचार्य श्री ने जैन धर्म की ममता एवं गौरव को ऊंचा उठाया है। उस यम विजेता-मुनि-पुंगव के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि। इन्द्रचंद कौशल छिंदवाड़ा

—यदि हम आचार्य श्री के प्रति निष्ठा रखते हैं तो हमें उनके आदर्श एवं उपदेशों को स्व जीवन में अपनाना चाहिये और अपनी प्रवृत्ति को धर्ममय बनाना चाहिये।

मिश्रीलाल पुसराज पाटनी जोरहाट

—पिछले करीब आठ सौ वर्षों में आचार्य श्री सरीखे कोई दूसरे साधु नहीं हुए। सहस्रवार उनके चरणों में श्रद्धांजलि। अपा साहिब जंबूराव विराज चिकोड़ी

—समाधि-साधना के समर में विजय प्राप्त कर आचार्य श्री ने इस भूमि और अमरलोक को पवित्र बनाया है। गुणमालादेवी पाटनी मनीपुर

—आचार्य श्री की परम तपोमय प्रभावक मुखाकृति सदा के लिये मेरे चित्त पर अंकित हो गयी है। उन पुरुष पुंगव को लाखों प्रणाम। त्रिलोकचन्द गोदीका जयपुर

—आचार्य श्री जैसा धर्म की गंगा बहाने वाला, जैन संस्कृति का रक्षक साधु गत ५०० वर्षों में न हुआ और न निकट भविष्य में होने की सम्भावना है। आचार्य श्री ने शास्त्रों की बातों को अपने जीवन में उतारकर जो मार्ग हमारे लिये प्रशस्त किया वह सभी के लिये अनुकरणीय है। मैं उनके पुनीत चरणों में श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए अपने को कृतार्थ मानता हूँ।

कुंदनमल चंपालाल पांड्या सुजानगढ़

नव चेतना की ज्योति

सबसे पहले मैंने आचार्य श्रीकेदर्शन २७ वर्ष पहले तब किये थे जब आचार्य श्री ने सन १९२९ में ललितपुर में चातुर्मास किया था। उन दिनों मेरी उमर करीब १०-११ वर्ष की थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि क्षेत्रपाल में रक्षाबन्धन के दिन बहुतों ने यज्ञोपवीत ग्रहण किया था अनेकों ने विभिन्न नियम लिये थे। मैंने भी अष्टमूलगुण धारण किये थे। इन १४वर्षों में तो महासभा में कार्य करनेके नाते कईबार आचार्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन १९५२ में फाल्गुन में आचार्य महाराज की हीरक जयन्ती मनाई गई उसकी स्वीकारता लेने जाने का भी मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय आचार्य श्री दहीगांव में विराजमान थे। आचार्य श्री के जब जब भी मैंने दर्शन किये मुझे नई स्फूर्ति, नव चेतना और नई प्रकाश की किरणें प्राप्त हुईं जिनसे मेरा हृदय आलोकित हुआ। वे सब बातें आचार्य श्री की स्मृति आते ही साक्षात दृष्टि में घूमने लगती हैं। आचार्य श्री द्वारा जैन अजैन सभी जनता का कल्याण हुआ, वे मानवमात्र के उद्धारक थे। उन जैसा तपस्वी, दूरदर्शी, आचार्य गत ७०० वर्षों में न हुआ और न आगे होने की सम्भावना है मैं ऐसे मुनिपुंगव के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करने में मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। बाबूलाल जैन शास्त्री

—परमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने दक्षिण में जन्म लेकर न केवल दक्षिण को कृतकृत्य किया किन्तु भारत में सर्वत्र विहार कर समस्त भारत को अपनी चरण रज से पवित्र किया। मुझे भी उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आचार्य श्री वास्तव में चारित्र के चक्रवर्ती थे। उनके पुनीत चरणों में मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित है।

—चांदमल पांड्या गोहाटी

आचार्य श्री ने भारत में सर्वत्र विहार करके धर्म की पावन गंगा का जो प्रवाह बहाया, वह सदैव जन-जन के हृदय पर अंकित रहेगा। आपकी शांत मुद्रा को देख कर क्रूर से क्रूर प्राणी भी अपनी क्रूरता छोड़ देते थे। ऐसे महान उपसर्ग विजयी अहिंसा और अपरिग्रह की मूर्ति के चरणों में बारबार श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

—केशरीमल जीतमल सबलावत डेह

—परम पूज्य आचार्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य मुझे अनेक बार प्राप्त हुआ है एवं आहार दान का लाभ भी। आचार्य श्री के वचनों में वह ताकत थी, जो वे कहा करते थे वही होकर रहता था। उनके वचनों में महान सिद्धि थी। ऐसे आचार्य के समकालीन होने का मुझे गौरव है। मैं उनके पुनीत चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

भगवानदास पाटनी, देहली

—आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने दुनिया के सामने अहिंसा और अपरिग्रह की जो अमिट छाप लगाई है वह सदा स्मरणीय रहेगी। आचार्य श्री के दर्शनों का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं उनके चरणों में शतशः श्रद्धाँजलि अर्पित करता हूं।

रूपचंद जैन कागजी, देहली।

—आचार्य श्री के पुनीत दर्शनों का लाभ कर मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूं। इन जैसा तपस्वी गत ७०० वर्षों में नहीं हुआ। उनके अमिट कार्य जन-जन के हृदय को सदा आलोकित करते रहेंगे। मै उनके चरणों में श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हुए अपने को धन्य मानता हूँ।

चौ० गुट्टनलाल जैन, वैदवाड़ा देहली

—परम पूज्य आचार्य महाराज ने अन्तिम समय में यम सल्लेखना द्वारा मृत्यु का आलिंगनकर दुनिया के सामने जो आदर्श उपस्थित किया वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। वे महा तपस्वी थे। उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने को कृतकृत्य मानता हूँ।

चंद्रभान जैन, वैदवाड़ा देहली।

—आचार्य श्री शांतिसागर शान्ति एवं ज्ञान के आगार थे। अच्छे अच्छे विद्वान भी तत्वचर्चा में उनका लोहा मानते थे। ऐसे सन्त के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये हृदय गद्‌गद हो जाता है।

फूलचन्द अजमेरा, वैदवाड़ा देहली

—आचार्य श्री का सन १९३१ में देहली में चातुर्मास हुआ था। उस समय उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी निर्भीकता की अमिट छाप हृदय पर सदा अंकित रहेगी। उनके चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

कालूराम मारवाड़ी, देहली

—आचार्य श्री के गुणों का वर्णन करना सूरज को दीपक दिखाना है। उनकी स्मृतिमें भक्तिमय श्रद्धांजलि।

ज्ञानवती देवी धर्मपुरा देहली

—आचार्य श्री के मैंने सन् १९३१ में देहली में हुये चातुर्मास के समय दर्शनों का लाभ लिया था। उनकी शांत मुद्रा के दर्शन से मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा वह किन शब्दों में लिखूं। उनके द्वारा जो धर्म की प्रभावना हुई वह स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये अपने को धन्य मानता हूँ।

—जयनारायन वर्तन वाले, पहाड़ी धीरज देहली

—दिल्ली चातुर्मास के समय सन १९३१ में मैंने आचार्य श्री के दर्शन किये थे और आहारदान का भी लाभ किया था उनके आत्मिक तेज की छटा मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। उनके पुनीत चरणों में श्रद्धा से नतमस्तक होता हूँ।

बंगालीदास खेमचंद जैन गली मुलियां, देहली

—आचार्य श्री के द्वारा मुनि धर्म का उद्योत हुआ, सर्वत्र निर्बाध विहार हुआ एवं धर्म की पावन गंगा का जो प्रवाह बहाया गया वह अपनी शानी नहीं रखता। ऐसी योगी के चरणोंमें मैं अपनी विनीत श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। —हरिचंद जैन कूचा उस्ता हीरा देहली

—पूज्य आचार्य प्रवर का ही प्रताप है कि भारत में मुनि मार्ग इस काल में प्रसिद्ध हुआ। उनके चरणारविन्दों में श्री पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैन पंचायत देहली की विनम्र श्रद्धांजलि। भोलानाथ जैन, प्रधान मन्त्री

—इस समय दिगम्बर जैन धर्म की जो व्यापक प्रभावना हो रही है उसका श्रेय आचार्य श्री को ही है।

नन्नूमल जैन, मंत्री ऋषभ जैन समिति, देहली

—सन् १९३० में आचार्य श्री के पुनीत चरणों से हमारा गाँव धन्य हो गया। आचार्य श्री चारित्र और ज्ञान में अपनी शानी नहीं रखते थे। मैं उनके चरणों में श्रद्धा से मस्तक झुकाता हूँ।

नानकचंद गुलाबचंद अग्रवाल कोसीकलां

—श्रवणबेलगोला महामस्तकाभिषेक के समय मैंने आचार्य श्री के पुण्य दर्शन किये। उनकी शांति मुद्रा से कोई भी प्रभावित हुये विना नहीं रह सकता। मैं उनके चरणों में हृदय से नमस्कार करता हूँ।

माणिकचन्द जैन अवागढ़

—मोक्ष मार्ग के महान साधक आचार्य परमेष्ठी की पवित्र स्मृति में मेरी तुच्छ श्रद्धांजलि।—

महेन्द्रकुमार "महेश" प्रतापगढ़

सच्चे स्मारक

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने भारत में सर्वत्र निर्वाध विहार कर धर्म का जो पावन स्रोत बहाया वह स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। आचार्य श्री के उपदेश से प्रभावित होकर कई शहरों और ग्रामों में पाठशाला, विद्यालय, अनाथालय, औषधालय आदि खोले गये। कई जगह आचार्य श्री के ही नाम से संस्थायें स्थापित हुई हैं उनकी नामावली जितनी प्राप्त हो सकी वह यहां दी जा रही है।

नाम संस्था	स्थान
शांतिसागर पाठशाला	कुंभोज
शांतिसागर मुफ्त वाचनालय	धामनगांव
शांतिसागर पाठशाला	शोलापुर
शांतिसागर दि० जैन अनाथ छात्राश्रम	दहीगांव
शांतिसागर बोर्डिंग	बारामती
शांतिसागर अनाथालय	शेडवाल
शांतिसागर प्राणी संरक्षणी संस्था	अक्कलकोट
शांतिसागर पाठशाला	रीवां
शांतिसागर पाठशाला	जखोरा म० प्र०
शांतिसागर पाठशाला	कटनी
शांतिसागर पाठशाला	सब्जी मंडी देहली
शांतिसागर कन्या पाठशाला	वैदवाडा देहली
शांतिसागर औषधालय	जयपुर
शांतिसागर पाठशाला	बेलगांव
शांतिसागर पाठशाला	शाहपुर
शांतिसागर विद्यालय	बडनगर
शांतिसागर पाठशाला	फलटन
शांतिसागर पाठशाला	होसूर
शांतिसागर कन्या पाठशाला	ऋषभदेव
शांतिसागर विद्यालय	टोडारायसिंह
शांतिसागर कन्या पाठशाला	टोडारायसिंह
आचार्य शांतिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था	बम्बई

आचार्य श्री की हीरक जयन्ती के समय फलटन में कई दिन तक दर्शन का सौभाग्य मिला था। चारित्र चक्रवर्ती की वह शांति-मूर्ति अब तक हृदय पटल पर अंकित है। उन्होंने इस भौतिक युग में अपनी साधना द्वारा महान आध्यात्मिक आदर्श उपस्थित किया है। उनके पावन चरणों में मेरी विनीत श्रद्धांजलि अर्पित है।

हीरालाल 'कौशल' साहित्यरत्न, शास्त्री न्यायतीर्थ, देहली।

आचार्य महाराज सबके हृदयों में अपने लिये अमर स्थान बना गये हैं। उनके पुनीत चरणों में श्रद्धांजलि।

बालकिशनदास कागजी आगरा

—जिनके पावन दर्शनों से इस तुच्छ प्राणी का जीवन आलोकित हुआ है, उन जगद्वन्द्य आचार्य चरणों में श्रद्धांजलि।

रामप्रसाद जैन, शास्त्री लाडनूं

—अविनश्वर सुख के पथिक उन महात्मा के चरणों में मेरा शतबार वन्दन है। मांगीलाल छावड़ा बम्बई

—आचार्य श्री इस युग के धार्मिक क्रान्तिकारी थे।

मानकचन्द छावड़ा बम्बई

अपरिग्रह के अवतार श्री आचार्य शान्तिसागर

[श्री पं० अजितकुमार जी शास्त्री]

भगवान महावीर का अनुगामी श्रमण वर्ग तथा गृहस्थ-वर्ग अन्तिम श्रुतकेवली, सम्राट चन्द्रगुप्त के गुरु श्री भद्रबाहु आचार्य तक एक ही रूप में चलता रहा। दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोला की चन्द्रगिरि पहाड़ी पर भद्रबाहु आचार्य का समाधिमरण हुआ। तदनन्तर जैन श्रमण संघ दुर्भिक्ष के कारण दिगम्बर, श्वेताम्बर रूप दो भागों में विभक्त हो गया।

श्री कुन्द कुन्द आचार्य प्राचीन जैन श्रमण परम्परा के प्रख्यात आचार्य हुए हैं। श्रीगुणधर आचार्य ने कषाय पाहुड़, श्री पुष्पदन्त भूतबली ने षट् खण्डआगम की रचना करके जैन साहित्य-निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। यह समय विक्रम संवत के प्रारम्भ का है। श्री कुन्द-कुन्द आचार्य ने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों की रचना की। तदनन्तर श्री समन्तभद्र, अकलंक, वीरसेन आदि विद्वान दिगम्बर आचार्यों ने महत्वपूर्ण जैन साहित्यरचना-प्रारम्भ रखी। विक्रम की छठी शताब्दी (वीर सं० ९८०) में देवर्द्धिगणी क्षमा-श्रमण ने श्वेताम्बरीय आगमों की रचना की, जिनके नाम आचारांग आदि रखे।

साहित्य निर्माण के सिवाय श्री समन्तभद्र, अकलंक देव आदि विद्वान आचार्यों ने अपने अपने समय में जैनेतर विद्वानों के साथ महान शास्त्रार्थ करके जैन धर्म का प्रभाव जनसाधारण में फैलाया। श्री समन्तभद्राचार्य ने बंगाल बिहार, मालवा, सिन्ध, कर्णाटक, पन्जाब, मध्यभारत आदि प्रांतों में पैदल विहार करके शास्त्रार्थ किये और सर्वत्र विजय प्राप्त करके जैन धर्म का प्रभावपूर्ण प्रचार किया।

यह प्रभावशालिनी दिगम्बर मुनि परम्परा विक्रम संवत की १२ वीं शताब्दी तक निर्बाध चलती रही।

तदनन्तर १३ वीं शताब्दी में भारतीय शासकों के पारस्परिक वैमनस्य का लाभ उठाकर यवन आक्रान्ताओं ने भारत में मुसलमानी शासन की नींव डाली, तब से मुसलमानों की धार्मिक ईर्ष्या के कारण भारतीय संस्कृति छिन्न भिन्न होकर रूप पलटने लगी। मुसलमान बादशाहों की संकुचित तथा द्वेषमयी मनोवृत्ति के कारण जैन संस्कृति को भी बहुत ठेस पहुँची। दिगम्बर जैन ऋषियों के निर्बाध विहार पर कड़ा प्रतिबन्ध लग गया जिससे नग्न साधु-चर्या समाप्त प्राय: हो गई। दक्षिण प्रान्त में दिगम्बर मुनि होते रहे, किन्तु विरले।

भारत का साम्राज्य जब अंग्रेजों के हाथ आया, तो तत्कालीन सत्ताध्यक्षा श्री राजराजेश्वरी विक्टोरिया की घोषणा के अनुसार भारत के सभी धर्मों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई; तब सुप्त जैन श्रमण संस्कृति ने अङ्गड़ाई ली, करवट बदला और उठकर खड़ी हो गई।

धीरे धीरे सुना जाने लगा कि 'दक्षिण प्रान्त में दिगम्बर जैन मुनि विद्यमान हैं।' उत्तर प्रान्त-वासिनी धार्मिक दिगम्बर जैन जनता अपने दिगम्बर गुरु के दर्शनों के लिये इतनी लालायित थी जितना कि चन्द्र-दर्शन के लिये चातक लालायित रहता है। उनकी लालसा आंशिक रूपमें तब कुछ तृप्त हुई जबकि स्व० श्री १०८ मुनि अनन्तकीर्ति जी सम्मेदशिखर को यात्रा के लिये दक्षिण प्रान्त से उत्तर प्रान्त में पधारे।

तीर्थराज की वन्दना करके जब वे जैन सिद्धांत ग्रन्थ का अध्ययन करने के लिये मुरेना-विद्यालय में पधारे तब उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि के हजारों स्त्री, पुरुषों ने मुरेना आकर उनके दर्शन किये। दुर्भाग्यवश मुरेना में ही कुछ दिन बाद उनका निधन हो गया। अत: लाखों दर्शनार्थी स्त्री, पुरुष दिगम्बर मुनि के दर्शन किये विना अतृप्त ही रह गये।

उत्तर प्रान्तीय दि० जैन नरनारियों के हृदय की आकांक्षा तथा नेत्रों की पिपासा तब तृप्त हुई जबकि पूज्य चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने चतुर्विध संघ के साथ उत्तर प्रान्त के प्रायः सभी प्रान्तों में आठ वर्ष तक विहार किया। इस तरह का चतुर्विध सघीय दीर्घकालीन लम्बा पदविहार अन्य किसी आचार्य का नहीं हुआ, इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी हैं।

आचार्य श्री का उदय भोजग्राम (कोल्हापुर) के श्री भीमगौडा पाटील की सहधर्मिणी श्री सत्यवती की कुक्षि से आषाढ़ वदी ६ वि० सं० १९२९ को हुआ। आपका जन्मकालीन प्रियनाम सातगौडा था। शैशवकाल से ही आप धार्मिक प्रकृति के थे। धर्मचर्या तथा धर्मचर्चा में आप की बहुत रुचि थी। यों तो उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार ९ वर्ष की आयु में ही आपका पाणिग्रहण एक ६ वर्ष की बच्ची के साथ कर दिया गया जो कि ६ माह पीछे ही अपने पितृगृह में स्वर्ग यात्रा कर गई। यह विवाह क्या था एक तरह की बालक्रीड़ा थी, जिसमें कि वर वधु को पता भी न था कि विवाह क्या चीज़ है। तदनन्तर यौवनवय में अनेक बार माता, पिता, सम्बन्धी, मित्र परिकर की विवाह करने की तीव्र प्रेरणा मिली कि चरित्र नायक सातगौडा ने विवाह बन्धन स्वीकार न किया और बार-बार की इस चर्चा से पीछा छुड़ाने के लिये सातगौडा ने श्री १०८ मुनि सिद्धसागर जी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। इस तरह आपका जीवन बाल-ब्रह्मचारी ही कहा जा सकता है।

वैसे तो आप कपड़े का व्यवसाय करते रहे परन्तु आपकी रुचि आध्यात्मिक व्यापार में ही रही। आप घर परिवार से मोह ममता तोड़ कर गृहत्यागी विरागी बनना चाहते थे परन्तु पिता के आदेश से पिता के जीवन काल तक सातगौडा ने अपनी इच्छा का संवरण किया।

पिता के स्वर्गारोहण के बाद सं० १९७० में ४१ वर्ष की आयु में आपने श्री १०८ मुनि सिद्धसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की।

७ वर्ष पीछे सं० १९७७ में फागुन सुदी १३ को मुनि श्री सिद्धसागर जी से आपने मुनि दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा गुरु ने आपका श्रुतिमधुर सुन्दर नाम "शांतिसागर" रखा। आपने आजन्म इस नाम को अपने उच्च चारित्र से महाव्रती मुनि बनकर आपका आत्मतेज चमचमाने लगा। निर्मल चर्या से ही प्रभावित होकर मुमुक्षुओं ने आपसे मुनिदीक्षा लेकर आपकी शिष्यवृत्ति स्वीकार की, अनेकों ऐलक क्षुल्लक ब्रह्मचारी आदि बनकर आपके संघ में रहने लगे। अनेक विरक्त महिलाओं ने आपसे आर्यिका क्षुल्लिका ब्रह्मचारिणी की दीक्षा ली। आपके चतुर्विध संघ ने आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। बड़ी भारी एकत्रित सभा में आपको 'चारित्र चक्रवर्ती' की महत्व सूचक पदवी प्रदान की गई।

आतापन योग

ग्रीष्म ऋतु में खुले पर्वत पर असह्य सूर्य ताप सहन करते हुए अचल आसन से ध्यान करना आतापन योग है। आतापन योग महान पराक्रमी, महान साहसी और महान वीर बली मुनि किया करते हैं। इस बलहीन शरीर वाले युग में आतापन योग करना असंभव-सा है। परन्तु आचार्य श्री ने प्रायश्चित के रूप में एनापुर में ८ दिन तक आतापन योग करके अपने अतुल पराक्रम की परीक्षा दी।

अहिंसा का अतिशय

सिंह और सर्प स्वभावतः क्रूर और हिंसक प्राणी हैं। किन्तु उनकी हिंस्र भावना और क्रूरता कोटि के अहिंसा व्रती महात्मा के समीप में विलीन हो जाती है। जैसा कि समवसरण में देखा जाता है। इस युग में वह चतुर्थ कालीन दृश्य आचार्य श्री के समीप अनेक बार दिखाई दिया। क्षुल्लक दशा में तथा मुनि दशा में विष धर सर्प आचार्य श्री के ध्यानस्थ शरीर पर विभिन्न स्थानों पर अनेक बार चढ़ता उतरता रहा। शरीर के ऊपर रेंगने पर न तो आचार्य श्री का आत्म ध्यान भंग हुआ, न सर्प ने आचार्य श्री को कुछ शारीरिक हानि पहुँचा कर अपनी क्रूरता का परिचय दिया। इसी प्रकार अनेक बार विभिन्न स्थानों पर वनराजसिंह भी आचार्य श्री के समीप आया और शान्त भाव से चुपचाप चला गया। द्रोणगिरि पर तो आचार्य महाराज जब रात्रि को शयन कर रहे थे तब एक सिंह आया और चुपचाप उनके पास बैठ गया। ब्राह्ममुहूर्त में आचार्य श्री नींद से उठे और सामायिक (आत्मध्यान) में बैठ गये, सिंह चुपचाप शान्त भाव से समीप ही बैठा रहा। जब सूर्य का उदय होने लगा तब वह उठ कर वन में चला गया।

शिष्य-परम्परा

आपके अनुरूप आपकी शिष्य परम्परा में अनेक अच्छे प्रभावक संयमी साधु हैं, जिनमें से अनेक राजाओं के सम्माननीय गुरु आचार्य कुन्थसागर जी, प्रसिद्ध वक्ता आचार्य चन्द्रसागर जी, संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान आचार्य सुधर्मसागर जी स्वर्गारोहण कर चुके हैं; और आपके पट्टाधीश तथा आपके आद्य दीक्षित मुनि शिष्य आचार्य वीरसागर जी, कठोर तपस्वी आ० नमिसागर जी, प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य पायसागर जी, मुनि नेमिसागर जी, मौनसेवी अनेक शिक्षा संस्थाओं के सम्पादक एवं संचालक मुनि श्री समन्तभद्र जी, आचार्य महाराज के ज्येष्ठ भ्राता (९४ वर्षीय) मुनि श्री वर्द्धमान सागर जी आदि इस समय भी विद्यमान हैं। महाव्रती मुनियों के सिवाय अन्य आचार्य महाराज के शिष्यों—ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी आदि व्रतियों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रशिष्यों की संख्या तो और भी अधिक है।

ऐतिहासिक विहार

आपके जीवन की सब से महत्वपूर्ण घटना आपका भारत के अधिकांश प्रान्तों में पैदल विहार है।

सं० १९८३ में वाहुवली (कोल्हापुर) चातुर्मास के बाद आचार्य महाराज ने प्रतापगढ़ निवासी श्री घासीलाल जी पूनमचन्द्र जी बम्बई के प्रवन्ध में चतुर्विध (मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका) संघ सहित मगसिर वदी १ को बहुत समारोह के साथ उत्साही वातावरण में सम्मेद शिखर के लिये विहार किया।

इस विहार के समय संघ में आचार्य महाराज के सिवाय ३ मुनि, ३ ऐलक, २ क्षुलक, ३ क्षुल्लिका, ८ ब्रह्मचारी, १ ब्रह्मचारिणी, सेठ जी का समस्त परिवार तथा अन्य अनेक परिवार थे, साथ में समवसरण भी चलता था। संघ महाराष्ट्रीय नगरों तथा राज्यों, हैदरावाद राज्य के नगरों से होता हुआ, मध्यप्रदेश के मार्गवर्ती अनेक नगरों में होता हुआ तथा विहार प्रान्त के कई नगरों में ठहरता हुआ फागुन सुदी ३ को सम्मेदशिखर पहुंचा। मार्ग में २३ बड़े नगरों तथा वीसियों कसबों और सैंकड़ों गांवों में संघ के कारण बहुत भारी धर्म प्रभावना हुई।

सम्मेदशिखर पर अभूतपूर्व समारोह में १२ दिन तक मेला हुआ, जिसके लिये रेलवे को विभिन्न स्थानों के लिये लगभग कई स्पेशल ट्रेनें छोड़नी पड़ीं, अनेक संस्थाओं के अधिवेशन हुए। इतनी अधिक जनता पहले कभी सम्मेद शिखर पर एकत्र नहीं हुई थी। इसका विशेषकारण यह था कि उत्तर प्रान्तीय जनता ने कभी दिगम्वर मुनियों के दर्शन नहीं किये थे, इस कारण तीर्थवन्दना के साथ दिगम्वर गुरु वन्दना का दुहरा वल्कि अनेक गुणा लाभ था।

सम्मेदशिखर से संघ उसी तरह समारोह के साथ दिल्ली की ओर रवाना हुआ। सम्मेद शिखर के निकटवर्ती क्षेत्रों की वन्दना करता हुआ मार्गवर्ती नगर ग्रामों में धर्म प्रचार करता हुआ संघ इलाहाबाद पहुंचा वहां से कटनी की ओर मुड़ गया। सं० १९८४ का चातुर्मास कटनी में हुआ फिर कमश: सं०१९८५—१९८६ आदि में ललितपुर, मथुरा, दिल्ली, जयपुर, व्यावर, उदयपुर में स० १९९१ चातुर्मास किया। उदयपुर से संघ दक्षिण की ओर लौट गया।

इस तरह ८ वर्ष के पैदल विहार में महाराष्ट्र, हैदरावाद मध्यप्रदेश, विहार, उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड, विन्ध्यप्रदेश, दिल्ली प्रान्त, पंजाव प्रान्त, ग्वालियर, धोलपुर, भरतपुर, राजस्थान, गुजरात, काठियावाड़ प्रान्तों के मार्गवर्ती नगरों ग्रामों में उल्लेखनीय धार्मिक प्रचार हुआ। अनेक संस्थाओं का उद्घाटन, अनेकों जीर्ण मंदिरों का उद्धार अनेकों अणुव्रती बने और अनेकों महाव्रती बने, हजारों जैनेतर व्यक्तियों ने भी मांस भक्षण तथा मदिरा पान का त्याग किया।

सब से बड़ा कार्य इस दीर्घ कालीन पैदल विहार से यह हुआ कि दिगम्बर जैन मुनियों का विहार भारत में सर्वत्र निर्वाध होगया, मुस्लिम रियासत तथा अन्य देशी राज्यों में भी, जिनमें कि साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण जब जैन मुनि का विहार असंभव सा था, आचार्य महाराज की संघ सहित प्रभावशाली पदयात्रा के कारण स्वतंत्र बेरोक टोक हो गया।

आदर्श सल्लेखना

आचार्य महाराज ने जिस प्रकार अपने जीवन के क्षणों में अपनी कठोर तपश्चर्या और पवित्र मुनिचर्या द्वारा दिगम्वर जैन श्रमण संस्कृति को पुनरुज्जीवित करके भारी प्रभावना की, उसी प्रकार वल्कि अनेक अंशों में

उससे भी बढ़कर जन श्रमणचर्या का तथा जैन धर्म का मस्तक उन्नत किया।

वैसे तो आचार्य महाराज ने गजपन्था तीर्थ पर सन् १९५० से द्वादशवर्षीय सल्लेखना ग्रहण की हुई थी, तदनुसार आप यम सल्लेखना जीवन भर शरीर को भोजन द्वारा पोषण और कषाय भाव के त्याग) के लिये अपने आप को तयार कर रहे थे, किन्तु इस वर्ष जब आप बारामती में थे उस समय बारामती के जैनबन्धु आपका चातुर्मास योग बारामती में कराना चाहते थे, किन्तु अपने आपके भविष्य द्रष्टा आचार्य श्री के मृत्युक्षण निकट आते हुए प्रतीत हुए । इस कारण आपने बारामती के भाइयों के विनम्र आग्रह की अपेक्षा अपनी पुनीत भावना को विशेषता दी और कुन्थलगिरि की ओर प्रस्थान कर दिया।

आपका वृद्ध शरीर ८३ वर्ष समाप्त करके ८४ वें वर्ष में प्रविष्ट हो रहा था, परन्तु आपका उत्साह पहले की तरह तरुण था अतएव आपकी मुनिचर्या में लेशमात्र भी कमी न आने पाई थी।

आप बारामती से पैदल विहार करके जब कुन्थलगिरि क्षेत्र पर पहुँचे तब आपने अपने भाषण में अपनी भावना प्रगट करते हुए कहा कि 'मैं यहां पर एक विशेष उद्देश से आया हूँ। जब तक मेरा शरीर मेरे संयम में रहेगा तब तक मैं इसको चलाने के लिए भोजन देता रहूँगा जब यह मेरे संयम आचरण में सहायक न रहेगा तब मैं भी इसकी उपेक्षा करके अपनी शुद्धि में योग दूंगा। मेरा एक नेत्र ठीक कार्य नहीं देता दूसरा नेत्र ईर्या समिति (देख भाल कर जीव जन्तु की रक्षा के साथ चलने फिरने) तथा एषणा समिति (देख भाल कर शुद्ध भोजन करने) में काम देगा तब तक मैं आहार पान ग्रहण करता रहूँगा, जिस समय मेरे दूसरे नेत्र की ज्योति भी ईर्या तथा एषणा समिति के योग्य न रहेगी, तब मैं अपने संयम में बाधा आ जाने के कारण आना जाना तथा आहार पान बन्द कर दूंगा, आत्मशुद्धि के लिये अपना समस्त समय आत्मचिन्तन में लगा दूंगा।'

आचार्य महाराज की पुनीत भावना सुनकर विचारशील व्यक्तियों का हृदय चौंक गया था कि आचार्य महाराज का यह चातुर्मास कहीं अंतिम चातुर्मास न हो। आचार्य महाराज की वाणी और आचार्य महाराज के भक्तों का अनुमान सत्य प्रमाणित हुआ जब कि आचार्य महाराज ने २ अगस्त से केवल दो कौर भोजन लेना प्रारम्भ किया। तदनन्तर १० अगस्त से केवल बादामों का जल लेना प्रारम्भ किया। १४ अगस्त से बादाम का जल लेना भी त्याग कर दिया, नियम सल्लेखना ग्रहण की, तदनुसार ६ दिन तक केवल जल ग्रहण करके सातवें दिन बादाम का जल लेने का नियम लिया। १७ अगस्त से आचार्य श्री ने केवल जल ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करके यम सल्लेखना ग्रहण की। तदनुसार २०, २३, २५, २६, २७, २८ अगस्त और २-३-४ सितम्बर को जल ग्रहण किया। ४ सितम्बर के बाद जल लेना भी बन्द कर दिया। और १८ सितम्बर, द्वि० भाद्रपद सुदी २ रविवार को प्रातः ६-५० पर भौतिक शरीर का परित्याग किया।

आचार्य महाराज का शरीर वृद्ध अवस्था के कारण निर्बल तो था ही किन्तु बाल ब्रह्मचर्य के प्रभाव से पूर्ण स्वस्थ था। परन्तु आचार्य श्री अपना एक क्षण भी तप त्याग संयम के बिना व्यतीत न करना चाहते थे, अतएव उन्होंने निर्दोष संयम को अपने भौतिक शरीर की अपेक्षा विशेषता दी और शान्ति के साथ आत्म चिन्तन करते हुए भौतिक शरीर छोड़ा।

जिस मृत्यु से मोही संसार भय खाता है, उस मृत्यु से आचार्य श्री भयभीत न हुए। इस तरह मृत्युञ्जयी आचार्य श्री ने अपना अन्तिम श्वास भी सिंहवृत्ति के साथ तोड़ा। आचार्य श्री ने इस दशा में जो पथ प्रदर्शन किया है वह अभिनन्दनीय, चिरस्मरणीय और अनुकरणीय है।

उन्होंने अपने जीवन काल में संसारी जनता को आदर्श जीवन का पाठ पढ़ाया और अन्तिम समय आदर्श मृत्यु का पाठ पढ़ाया। इस प्रकार विक्रम सं० की १३ वीं शताब्दी से अब तक ८०० वर्ष के दीर्घ समय में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी के समान प्रभावक दिगम्बर जैन आचार्य अन्य कोई नहीं हुआ। आचार्य श्री निःसन्देह निकट भविष्य में अजर अमर पद प्राप्त करेंगे।

महातपस्वी के पावन व्रत

[जैनधर्म में तप दो प्रकार का बताया है अंतरंग और बाह्य। अंतरंग और बाह्य के छह छह भेद होने से तप बारह प्रकार का बताया गया है। आचार्यों के छत्तीस मूलगुणों में ये तप अंतर्हित हैं। बाह्य तप के छह भेद इस प्रकार हैं—१, अनशन २. अवमौदर्य ३ वृत्त परिसंख्यान ४ रसपरित्याग ५ विविक्त शय्यासन और ६ काय क्लेश। इनमें से यहां हम नीचे अनशन तप की तालिका दे रहे हैं जिससे कोई भी व्यक्ति आचार्य की तपस्या का अनुमान लगा सकता है।]

आचार्य शांतिसागर महाराज ने वि० सं० १९७६ फागुन सुदी १३ सन १९२० ई० को निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ली। उस समय से लेकर १८ सितम्बर, १९५५ तक के करीब पैंतीस वर्षों में उन्होंने कुल मिलाकर ९३३८ दिन उपवास किया। अर्थात उनके मुनि जीवन के २५ वर्ष एवं ७ मास अनशन में बीते हैं।

इस बात की कल्पना मात्र से दिमाग चकरा जाता है। पैंतीस वर्षों में २५॥ वर्ष बिना खान-पान के कोई बिताये; यह कोई साधारण बात थोड़े ही है? इन उपवासों के अलावा भी कितने ही अन्य व्रत—अन्न त्याग आदि के—आचार्य श्री प्रायः रक्खा करते थे। मुनि दीक्षा लेने के पूर्व भी, वास्तव में त्यागी जीवन अपनाने से पहले से ही महाराज अनेक व्रतों-नियमों का निरंतर पालन किया करते थे। घी का त्याग तो क्षुल्लक होने से बहुत पहले से था मुनि दीक्षा लेने के बाद चार साल तक उन्होंने केवल चावल और दूध लिया। अन्य कोई वस्तु नहीं लेते थे। कठोर से कठोर तपों द्वारा उन्होंने अपने शरीर को तपाया और कर्मों की निर्जरा के सन्मुख हुए। उनकी सल्लेखना व्रतों की इसी लम्बी शृंखला की अंतिम कड़ी थी।

आचार्य श्री ने जिन विभिन्न व्रतों द्वारा अपने शरीर को तपस्या की अग्नि में तपाया और आत्मा को उन्नति-पथ पर अग्रसर किया उनकी झांकी इस प्रकार है :—

नाम व्रत		उपवासों की संख्या
१. चारित्र शुद्धि व्रत		१२३४
२. तीसचौबीसी व्रत	(३०)	७२०
३. कर्म दहन व्रत	(तीन बार)	४६८
४. सिंह-निष्क्रीडित व्रत	(तीन बार)	५७०
५. सोलह कारण व्रत	(१६×१६)	२५६
६. श्रुत-पञ्चमी व्रत		३६
७. विहरमान व्रत		२०
८. दश लक्षण-पर्व		१०
९. सिद्धों के व्रत	(८)	८
१०. अष्टाहिका व्रत		८
११. गण-धरों के व्रत		२००

नोटः—गणधरों के १४५२ उपवास होते हैं उनमें से आचार्य श्री २०० उपवास ही कर पाये

अतिरिक्त व्रत ६३७२

———

९६०२

卐 आचार्य श्री के प्रमुख शिष्य 卐

अपने छत्तीस वर्ष की मुनिचर्या में आचार्य श्री ने कितने ही त्यागियों को दीक्षा दी थी। इनमें ब्रह्मचारियों, क्षुल्लकों-ऐलकों की तो संख्या इतनी विशाल है कि उन सबके नाम गिनाना स्थान संकोच के कारण यहां सम्भव नहीं होगा। महाराज ने कुल १८ त्यागियों को निर्ग्रन्थ मुनि-दीक्षा दी। महाराज के हाथों दीक्षित होने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले उन मुनि-पुंगवों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. श्री १०८ वीरसागर जी महाराज
२. ,, १०८ नेमिसागर जी महाराज
३. ,, १०८ वर्द्धमानसागर जी महाराज
४. ,, १०८ देवसागर जी महाराज
५. ,, १०८ पायसागर जी महाराज
६. ,, १०८ चन्द्रसागर जी महाराज
७. ,, १०८ नमिसागर जी महाराज
८. ,, १०८ पद्मसागर जी महाराज
९. ,, १०८ आदिसागर जी महाराज
१०. श्री १०८ श्रुतसागर जी महाराज
११. ,, १०८ कुन्थुसागर जी महाराज
१२. ,, १०८ सुधर्मसागर जी महाराज
१३. ,, १०८ नेमिसागर जी (पुत्तूरकर)
१४. ,, १०८ धर्मसागर जी महाराज
१५. ,, १०८ अनन्तकीर्ति जी महाराज
१६. ,, १०८ पार्श्वकीर्ति जी महाराज
१७. ,, १०८ चंद्रसागर जी महाराज (पुत्तूरकर)
१८ ,, १०८ समंतभद्र जी महाराज

स्मरण होगा, आचार्य श्री ने श्री १०८ वीरसागर जी महाराज को अपने बाद आचार्य पद पर २२ अगस्त ५५ को नियुक्त किया था।

इसमें आचार्य श्री की ऐतिहासिक सल्लेखना के ३६ दिन का उपवास सम्मिलित नहीं है।

लगातार महाराज कई कई दिन उपवास रक्खा करते थे। सल्लेखना के समय ३६ दिन तक उनका लगातार का उपवास तो प्रसिद्ध है ही। अन्य व्रतों की सूची इस प्रकार है :—

उपवासों की संख्या			कितने बार किये
लगातार १६ दिन का उपवास	...	...	१ बार
,, १० ,, ,, ,,	....	...	१ बार
,, ९ ,, ,, ,,	...	...	६ बार
,, ८ ,, ,, ,,	...	...	७ बार
,, ७ ,, ,, ,,	...	...	६ बार
,, ६ ,, ,, ,,	...	...	६ बार
,, ५ ,, ,, ,,	...	...	६ बार
,, ४ ,, ,, ,,	...	...	६ बार

लगातार ३ या कम दिनों का उपवास तो महाराज ने सैंकड़ों बार रक्खा।

इनके अलावा चान्द्रायण जैसे अनेकों व्रत तो वह रखते ही थे।

इन व्रतों के सम्बन्ध में याद रखने की बात यह है कि आचार्य श्री उपवास रखते हुए भी दैनन्दिन के अनुष्ठानों-नियमों में तनिक भी अन्तर नहीं आने देते थे। चाहे आहार लें या न लें, उनकी दैनिक चर्या निर्बाध गति से चलती थी। यही उनकी तपस्या की महती विशेषता थी।

श्री आचार्य शान्ति सागर महाराज की चित्रमय जीवन झांकी

संकलनकर्ताः-पं० बाबूलाल शास्त्री
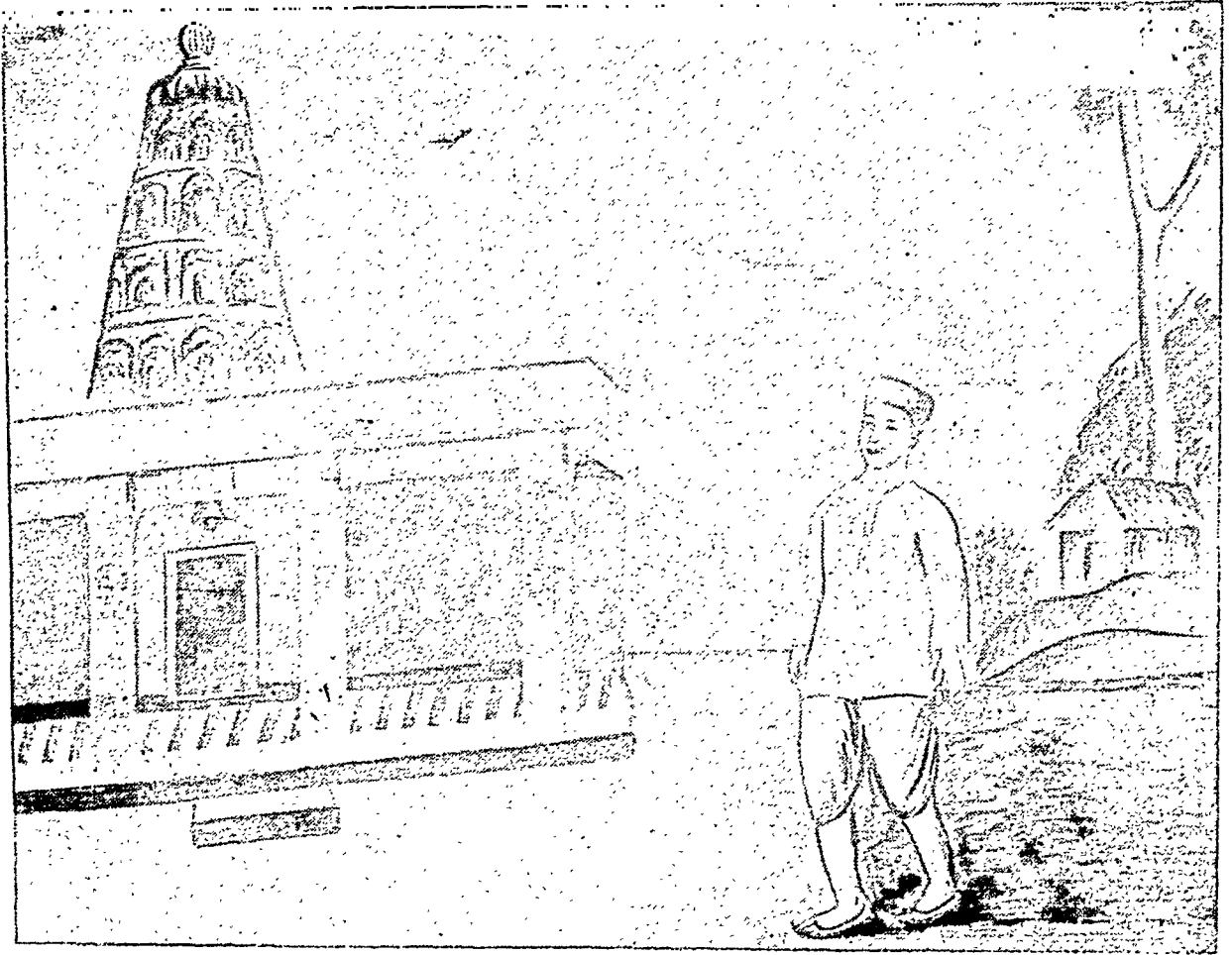
बालक सातगौंडा पाटील (आचार्य श्री का जन्म-नाम) छोटी आयु से ही धार्मिक प्रवृत्ति का था और प्रतिदिन अपने गाँव भोज गाँव के मन्दिर में जाकर पूजन आराधना किया करता था। (चित्र में) बालक सातगौंडा मन्दिर जाते हुए
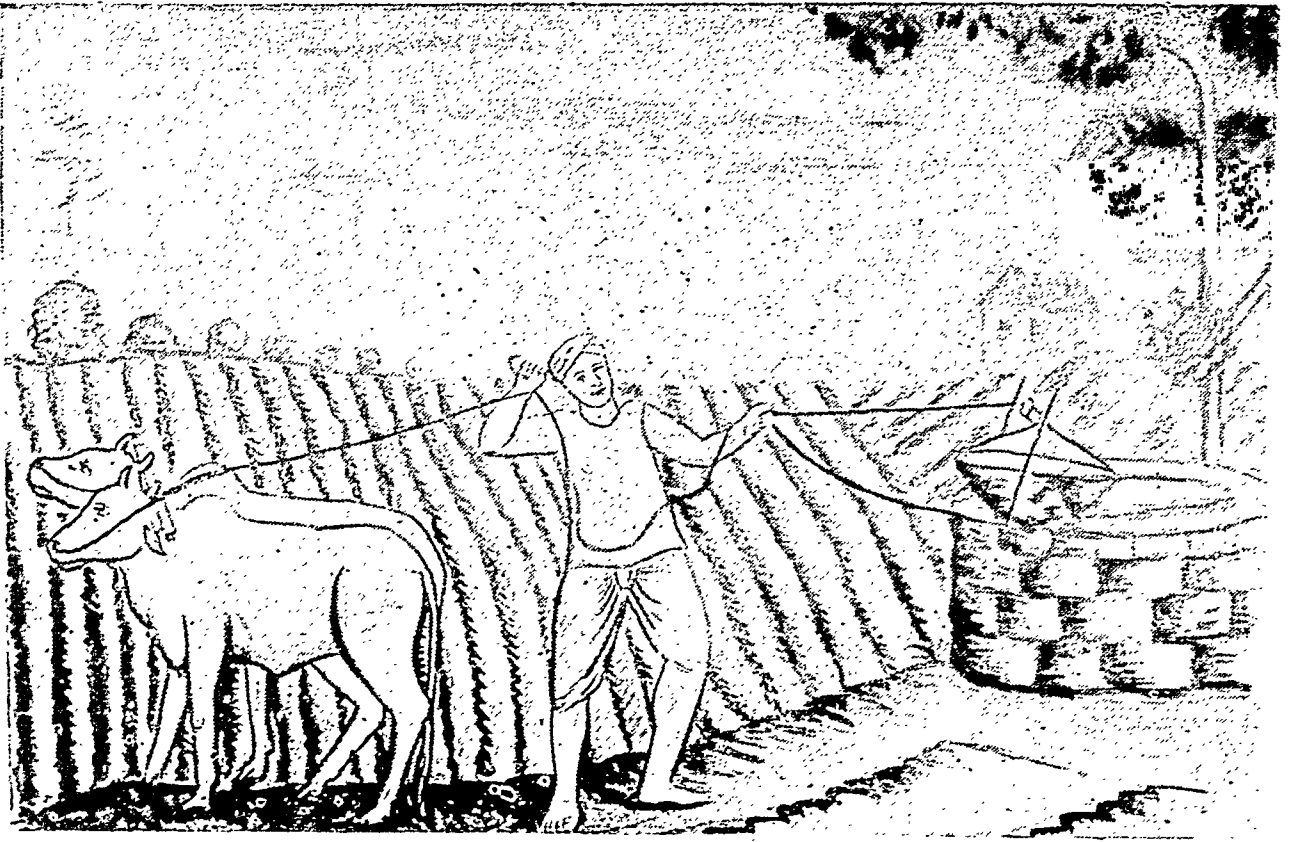
बलिष्ट युवक सातगौड़ा, अपनी शक्ति का परीक्षण करने के लिए बैलों और जलभरे मोट को दोनों हाथों से एक साथ खींच रहा है।
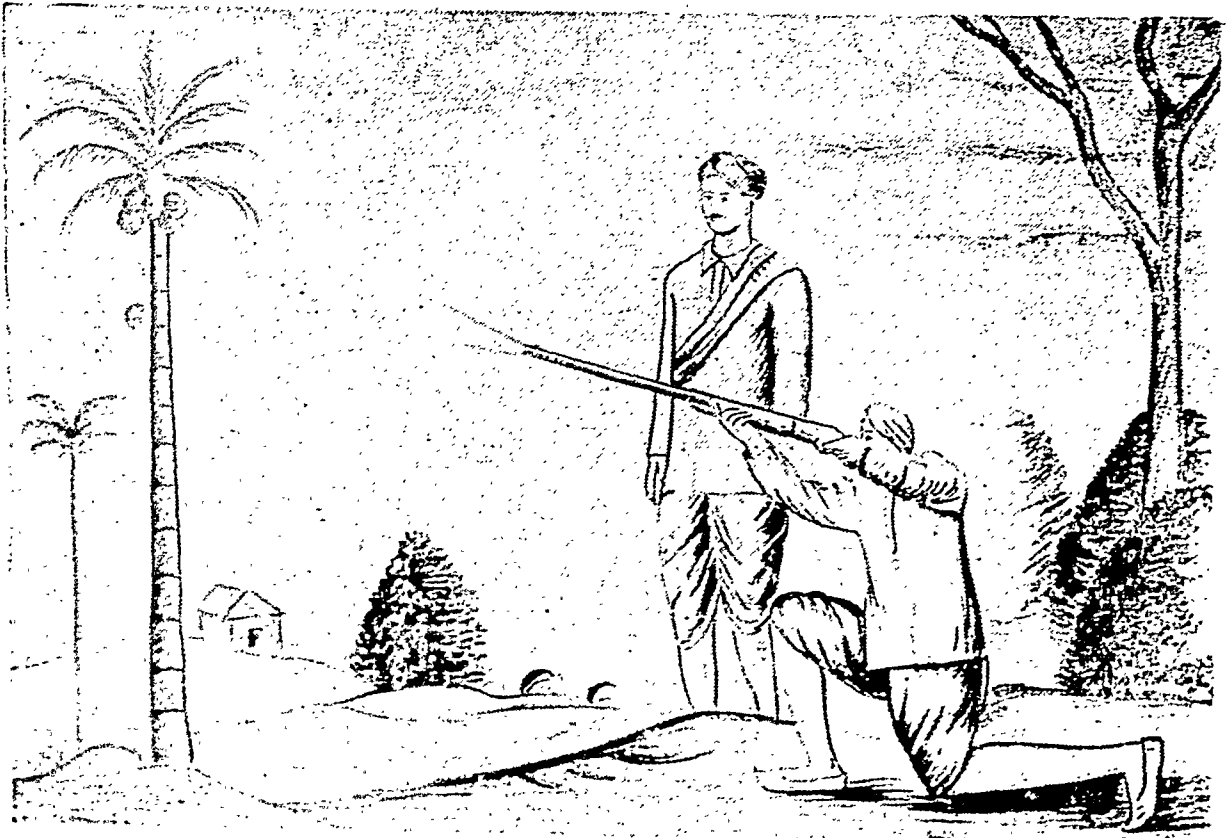
अपने चचेरे भाई के कहने पर युवक सातगौड़ा, अनभ्यस्त होते हुए भी बन्दूक तानकर एक ही गोली से नारियल गिरा रहा है।

त्यागी जीवन का आरम्भ

धर्म-निरत एवं वैराग्य वृत्ति में लीन सातगौड़ा का विवाह करने की उनके पिता श्री भीमगौड़ा की बड़ी अभिलाषा थी। पिता की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण सातगौड़ा अनमने मन से उसके लिए सहमत भी हुआ परन्तु भाग्य उनके साथ था। फलतः सगाई के बाद ही मंगेतर लड़की का देहान्त हो गया। तब भी श्री भीमगौड़ा ने पुत्र से यह वचन ले लिया कि मेरे देहावसान के बाद ही तुम सन्यास ग्रहण कर सकते हो।

पिताजी के देहावसान के बाद, ४१ वर्ष की आयु में सातगौड़ा ने क्षुल्लक दीक्षा ली। तभी से उनका दीक्षा नाम शान्ति सागर पड़ा। ऊपर उनकी क्षुल्लकावस्था के एक पुराने चित्र की सरल रेखानुकृति दी गयी है।

यती जीवन का द्वितीय सोपान
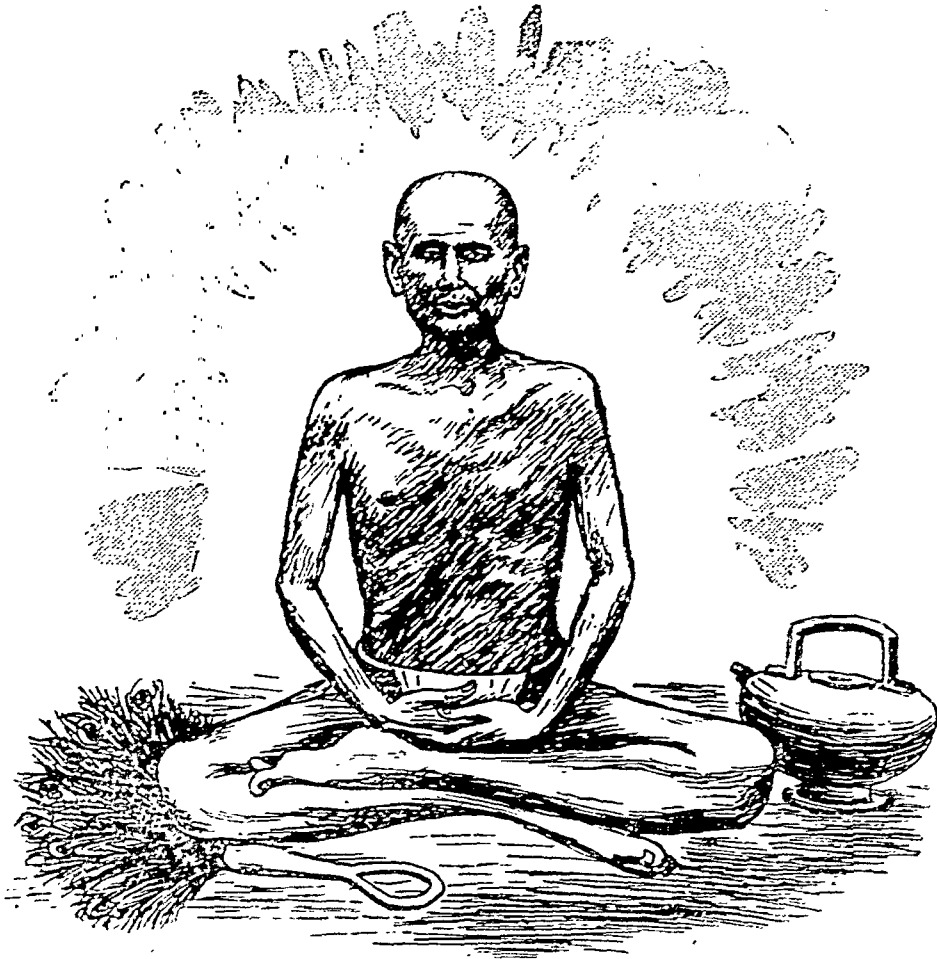
कुछ समय क्षुल्लक जीवन व्यतीत करने के बाद गिरनार पर श्री शान्तिसागर महाराज ने ऐलक दीक्षा ग्रहण की। इस बीच में ही उनके निर्मल चारित्र एवं कठोर तपस्यावृत्ति का यश दूर-दूर फैलने लग गया था। ऊपर उनके उस समय के एक चित्र की रेखा-नुकृति दी गयी है।

सन् १६२० में श्री शान्तिनसागर ने मुनिदीक्षा ग्रहण की। उनका प्रथम चातुर्मास कागनौली में हुआ। बायें का चित्र उसी समय का है।

मुनि श्री शान्तिसागर महाराज का दूसरा चातु-र्मास नसलापुर में सन् १६२१ में हुआ था। उस समय का चित्र ऊपर दिया गया है।

मुनिवर श्री शान्तिसागर महाराज का जो चित्र दायीं ओर दिया है, वह सन् १६२२ में उनके ऐना-पुर चातुर्मास के समय का है। उनकी तपश्चर्या का प्रभाव समाज पर तभी आश्चर्य जनक व्यापकता प्राप्त कर चुका था।

सन् १९२३। कोन्नूर चातुर्मास के समय मुनिराज।

पाँचवाँ चातुर्मास सन् १९२४ में समडोली में सम्पन्न हुआ। यहीं पर चतुर्विध संघ ने मुनिराज को 'आचार्य' पद से विभूषित किया।

सर्प का उपसर्ग

आचार्य श्री सर्प का उपसर्ग सहते हुए। यह घटना सन् १९२३ में कोन्नूर चातुर्मास के अवसर पर घटी थी

कुंभोज में मुनिसंघ

सन् १९२५ के अक्टूबर मास में लिया गया यह चित्र मुनीन्द्र के कुंभोज चातुर्मास के समय का है। मुनि शान्तिसागर जी मध्य में उच्चासन पर विराजमान हैं और उनका शिष्य संघ साथ में है।
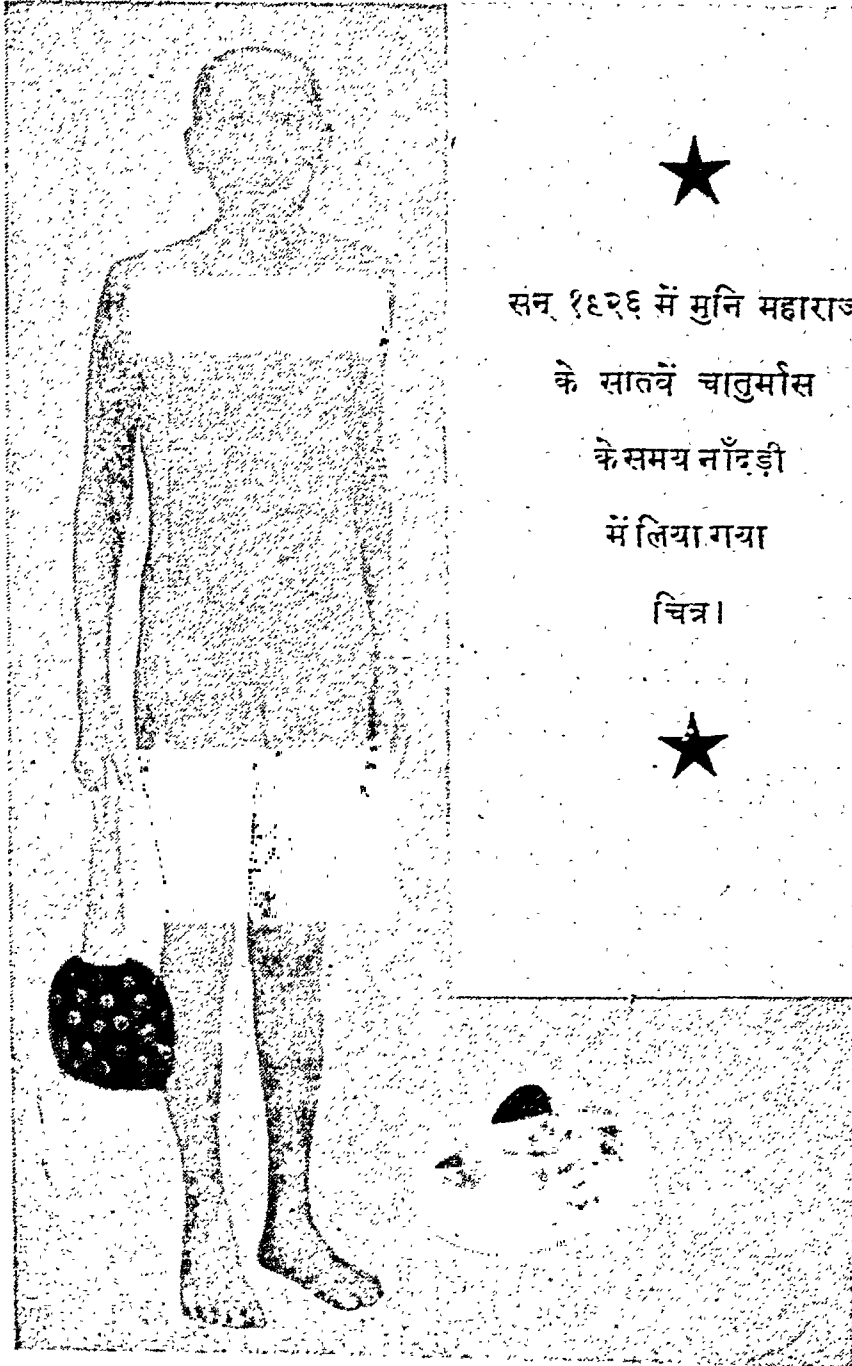
सन् १९२६ में मुनि महाराज के सातवें चातुर्मास के समय नाँदड़ी में लिया गया चित्र।

सन् १९२७। बाहुवली डोंगर में ८ वें चातुर्मास के समय मुनिसंघ
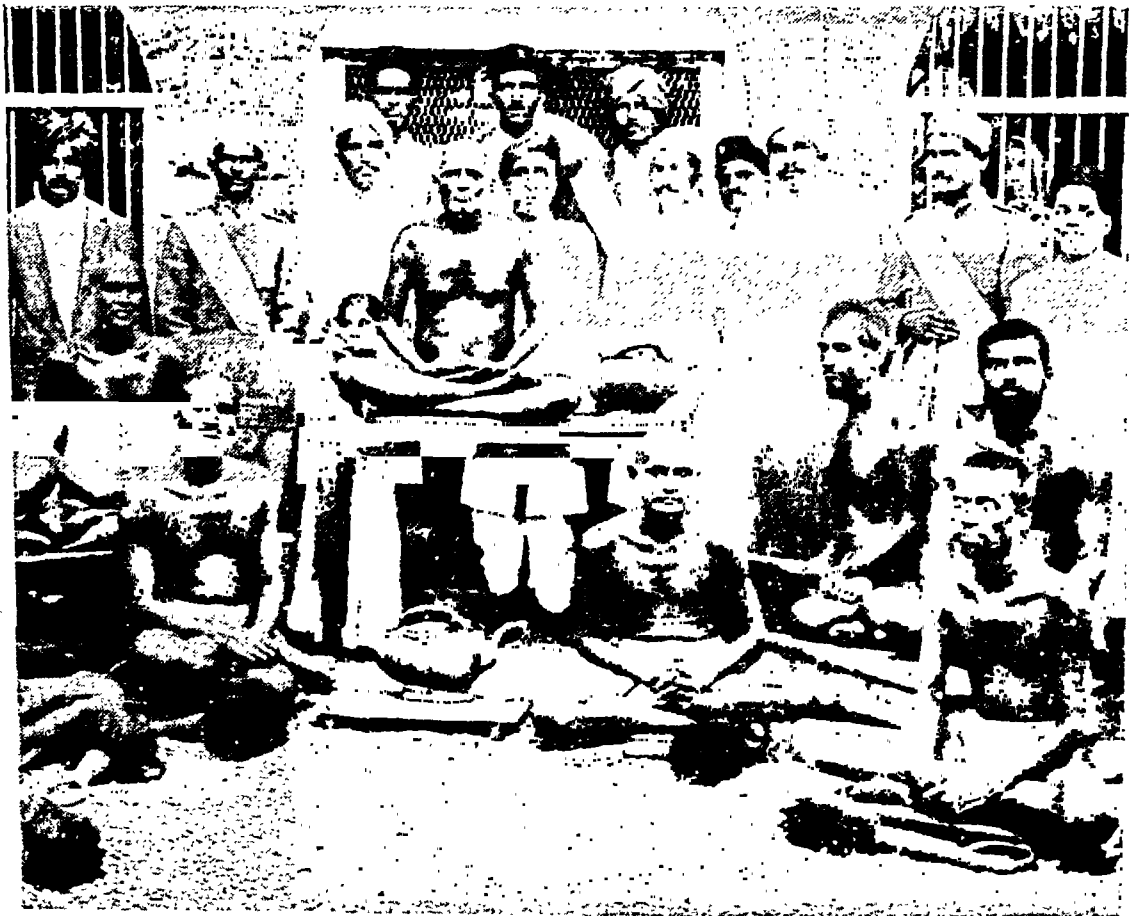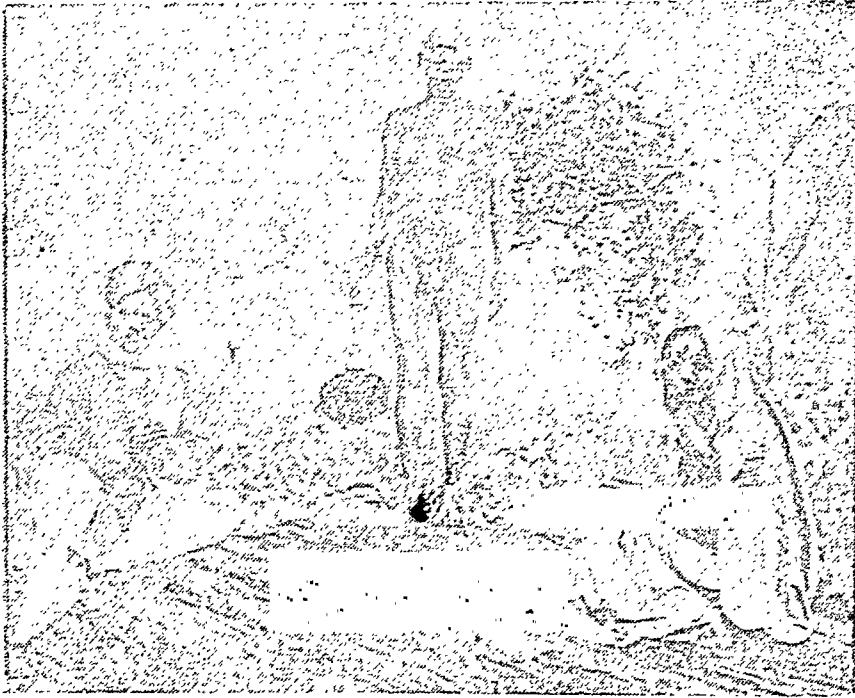
सम्मेदशिखर पर आचार्य श्री। पास में धर्मवीर संघपति सेठ राव जी सखाराम जी और उनकी धर्मपत्नी
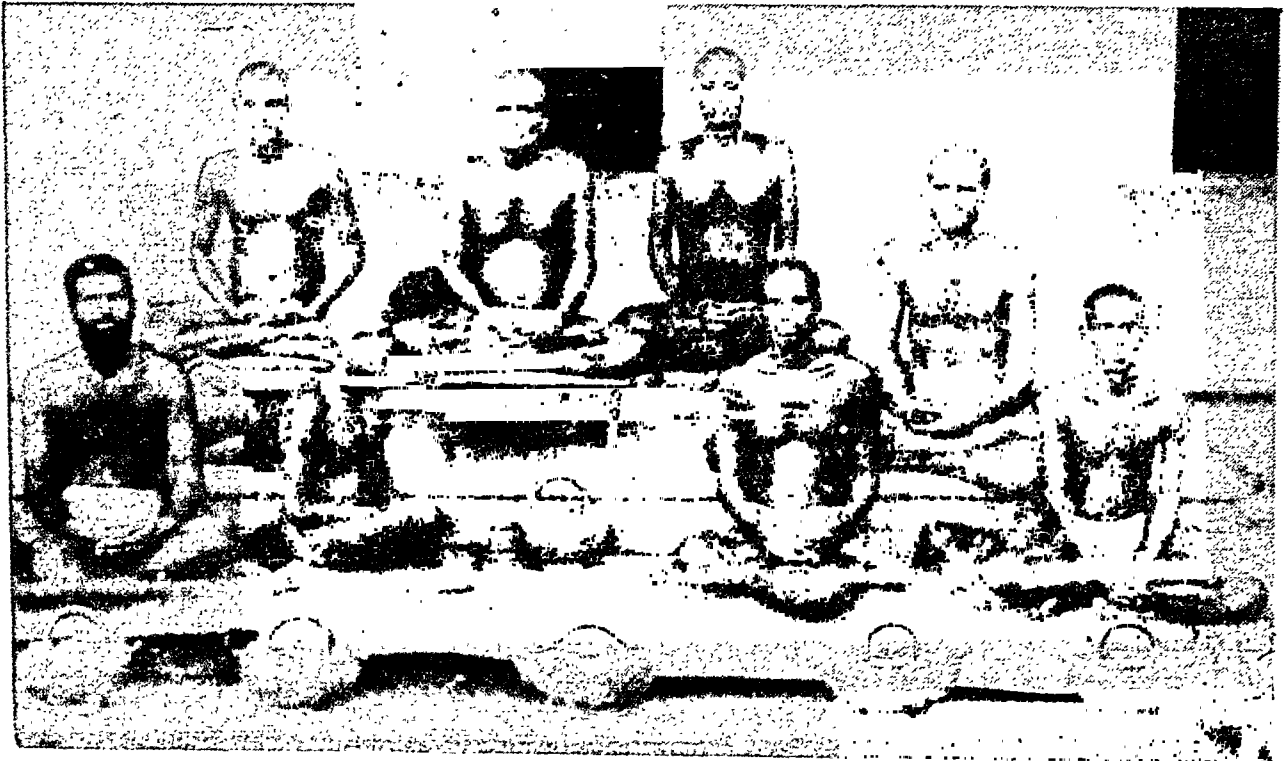
सन १९२८। कटनी में ९ वाँ चातुर्मास के समय आचार्य श्री का संघ
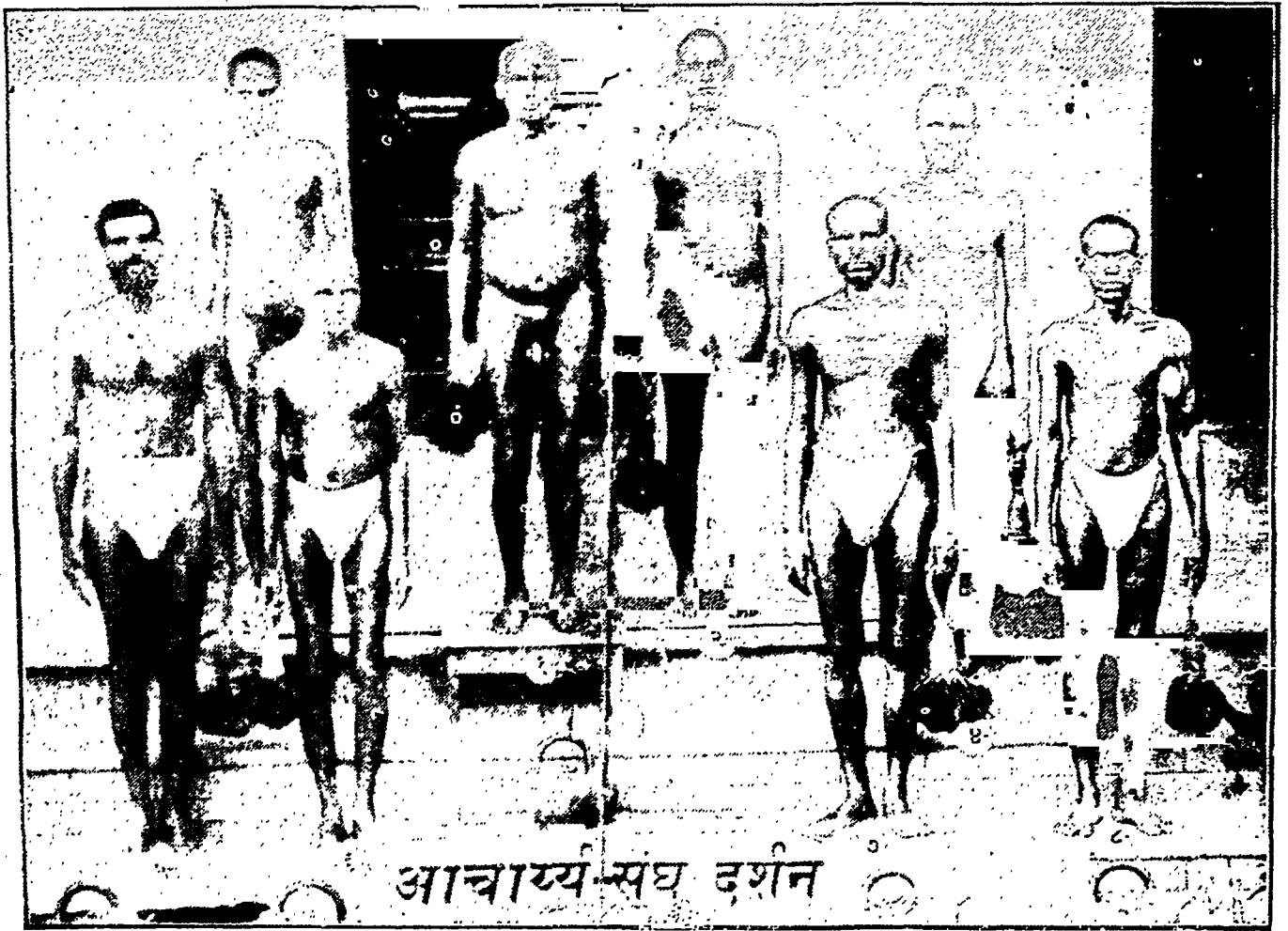
आचार्य्य-संघ दर्शन

सन् १९२९। ललितपुर चातुर्मास में मुनिसंघ।

सन १९३१। बारहवाँ चातुर्मास दिल्ली में, आचार्य संघ भक्त समूह के साथ।

सन् १९३२। जयपुर में १३ वें चातुर्मास के समय आचार्य श्री आत्म ध्यान करते हुए।
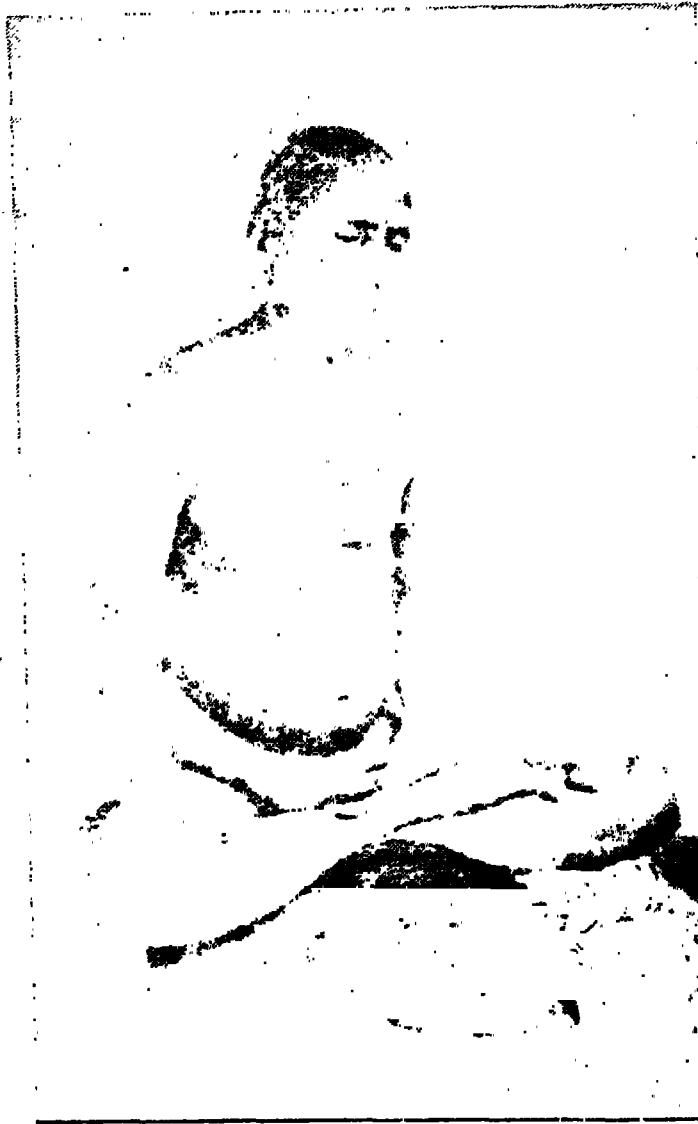
सन् १९३३ में आचार्य
हाराज का चातुर्मास
ावर में सम्पन्न हुआ। नीचे
ा चित्र उसी समय का है।
ाचार्य संघ और प्रमुख
ावकगण चित्र में विद्यमान
।
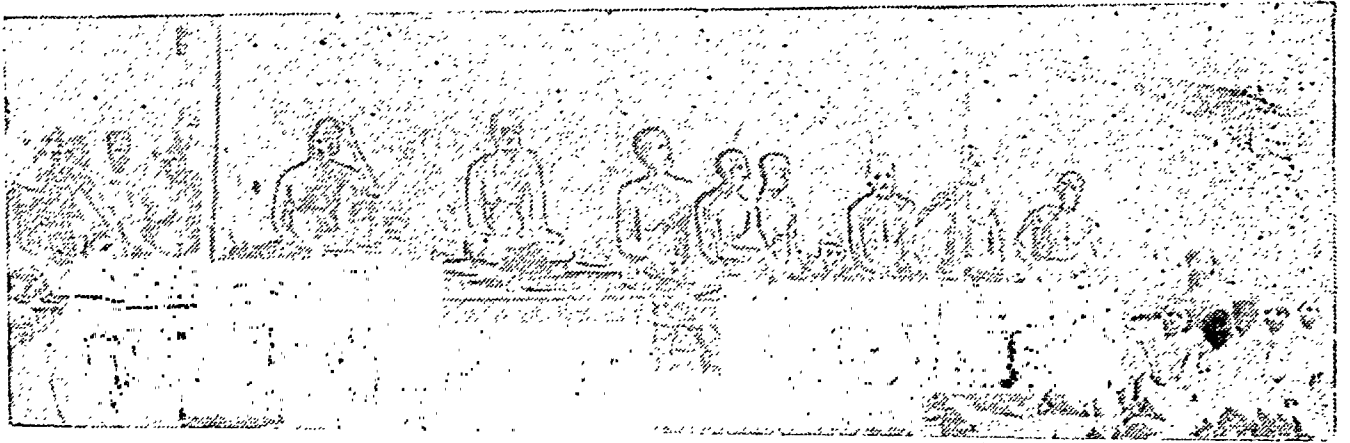
सन् १९३४ । उदयपुर के १५ वें चातुर्मास के समय आचार्यसंघ केशलोंच करते हुए ।
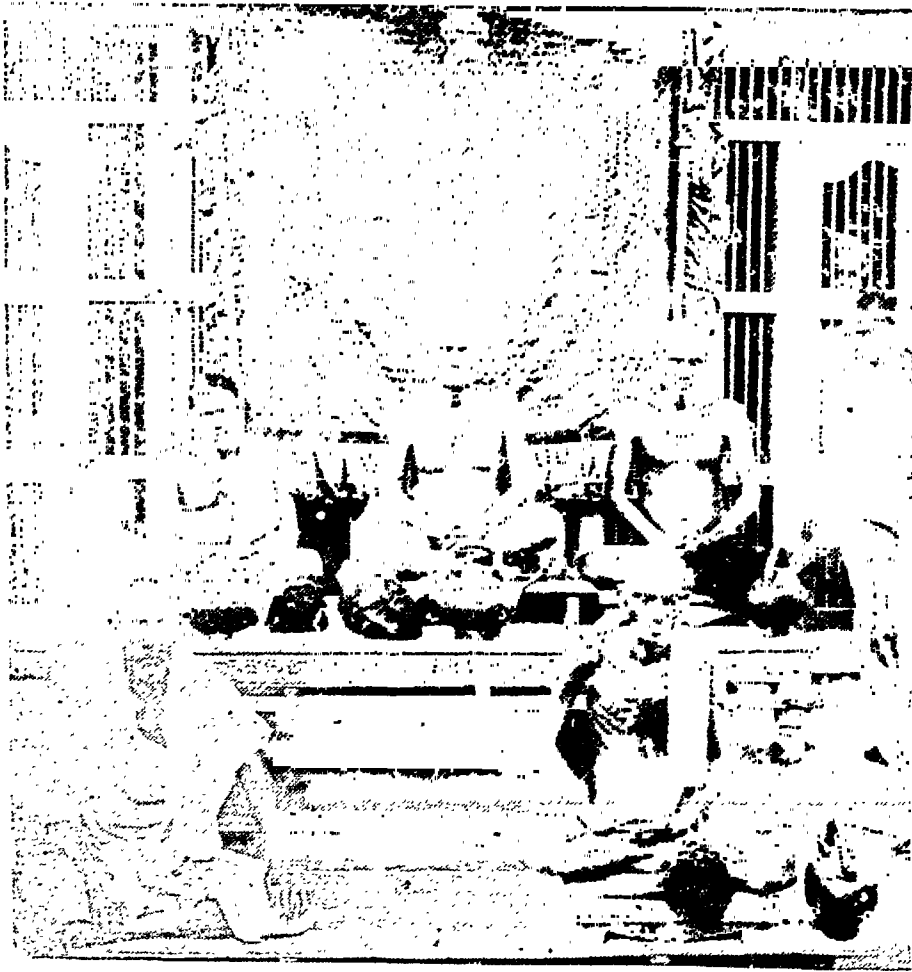
सन् १९३५ । गोरल चातुर्मास के समय आचार्य संघ ।
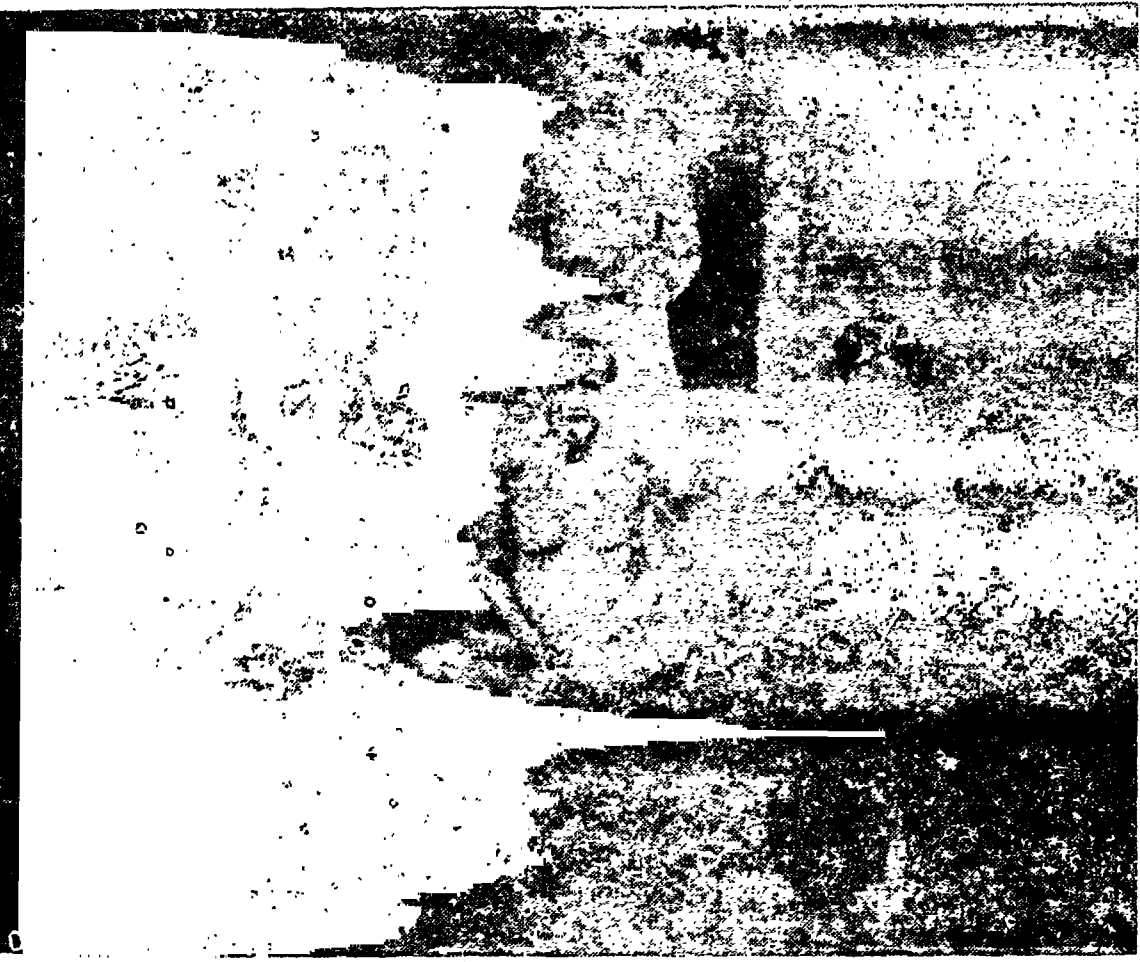
सन् १९३६ ।
प्रतापगढ़ में १७ वें चातुर्मास के समय आचार्य संघ ।

सन् १९३७ ।
१८ वें चातुर्मास के समय गजपंथा में ।
चातुर्मास में आचार्य संघ केशलोंच करते हुऐ ।

सन् १९३८ । वारामती में १६ वें चातुर्मास के समय आचार्य श्री ने अपने वडे भाई श्री वर्द्धमान सागर जी को मुनि दीक्षा दी उस समय का चित्र

सन १९३९ । पावागढ़ चातुर्मास के समय आचार्य श्री ।

सन् १९४० । गोरल चातुर्मास में आचार्य श्री ।
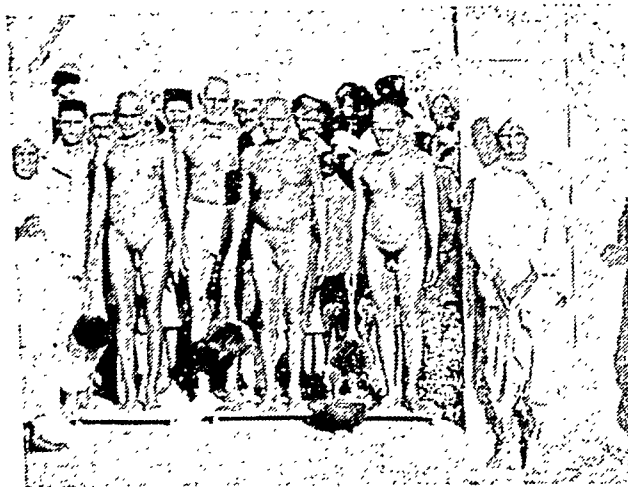
सन् १९४१ । अकलूज चातुर्मास में आचार्य श्री ।

सन् १६४२। कोरोची में २३ वें चातुर्मास के समय आचार्य श्री ध्यान मग्न मुद्रा में।

सन १६४३। डिग्रज में २४ वें चातुर्मास का एक चित्र।

सन् १९५५। कुन्थलगिरि में २५ वें चातुर्मास के समय दीर्घ चिन्तन में मग्न आचार्य श्री का एक भव्य चित्र।

महाराज विहार करते हुए। श्रावकगण भी साथ हैं।
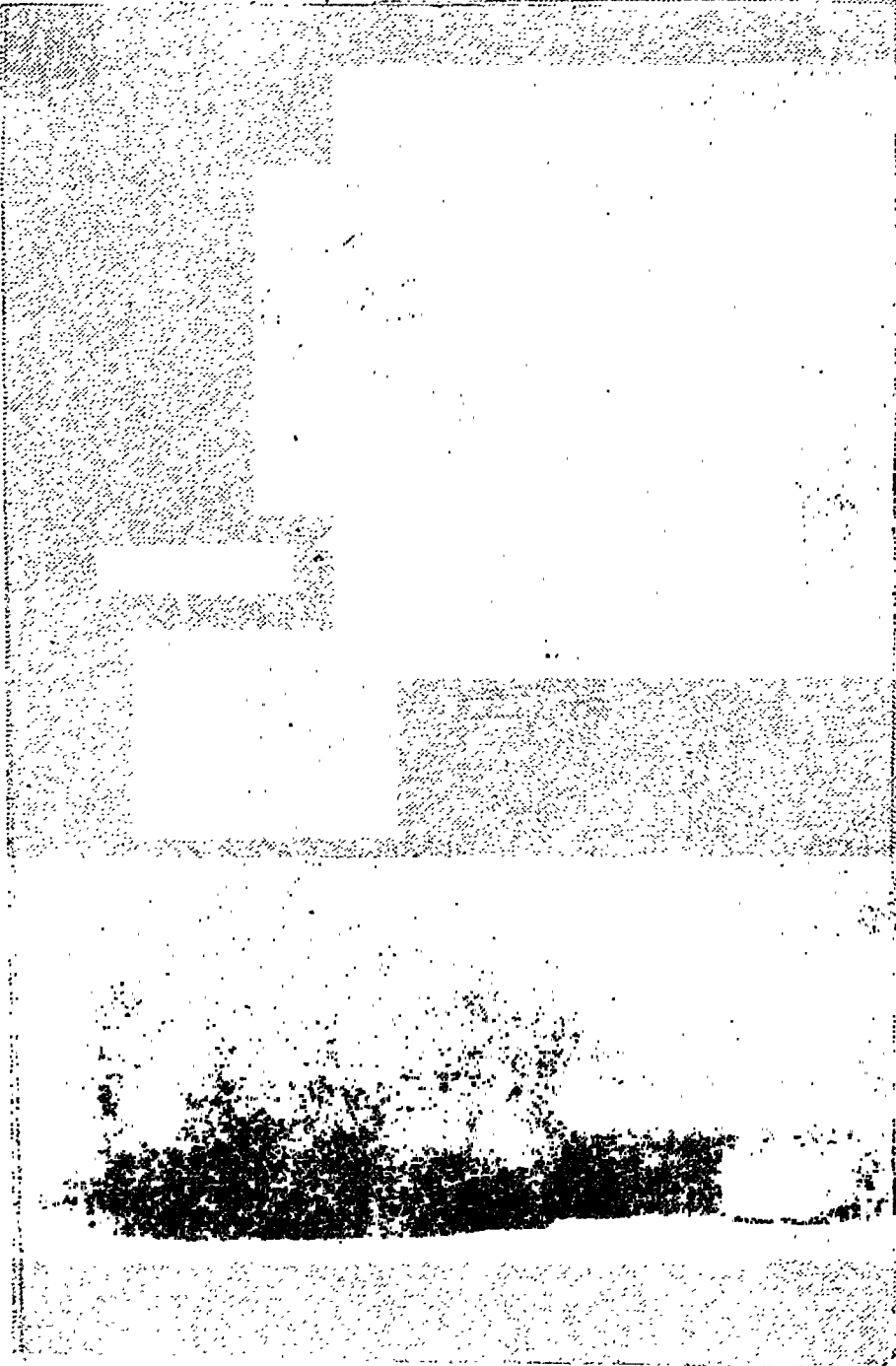
सन् १९४५ । फलटन में २६ वें चातुर्मास के समय आचार्य महाराज का एक भव्य चित्र ।

सन. १९४६। २१ सितम्बर को कवलाना में
पूज्य आचाय श्री खड़े हैं।

सन. १९४७। सोलापुर चातुर्मास के समय आचार्य संघ। श्री नेमिसागर महाराज
आचार्य श्री के बाईं ओर विराजमान हैं।

सन्. १६४८ । फलटन चातुर्मास के समय आचार्य महाराज

सन्. १६४६ । कवलाना में ३० वें चातुर्मास के समय लिया गया आचार्य श्री का चित्र ।

सन्. १९५० । गजपन्था में ३१ वें चातुर्मास के समय का
आचार्य श्री का चित्र ।

सन्. १९५१ । ३२ वाँ चातुर्मास बारामती में । आचार्य संघ केशलोंच करते हुए ।

सन. १९५१। लगातार तीन वर्ष बारह दिन के बाद रक्षा बन्धन के दिन बारामती में प्रथम बार आचार्य श्री द्वारा अन्न ग्रहण।

सन १९५२। फलटन में आचार्य श्री के ८१ वें जन्म दिवस पर उनकी हीरक जयंती मनायी गयी। (चित्र में) ८१ दीपकों की आरती

सन्. १९५२। लोनंद में ३३ वें चातुर्मास के समय का आचार्य श्री का चित्र।

*

*

सन. १९५३। ३४ वाँ चातुर्मास कुंथलगिरि में।

सन् १९५४ । फलटन में ३५ वें चातुर्मास के समय का चित्र ।
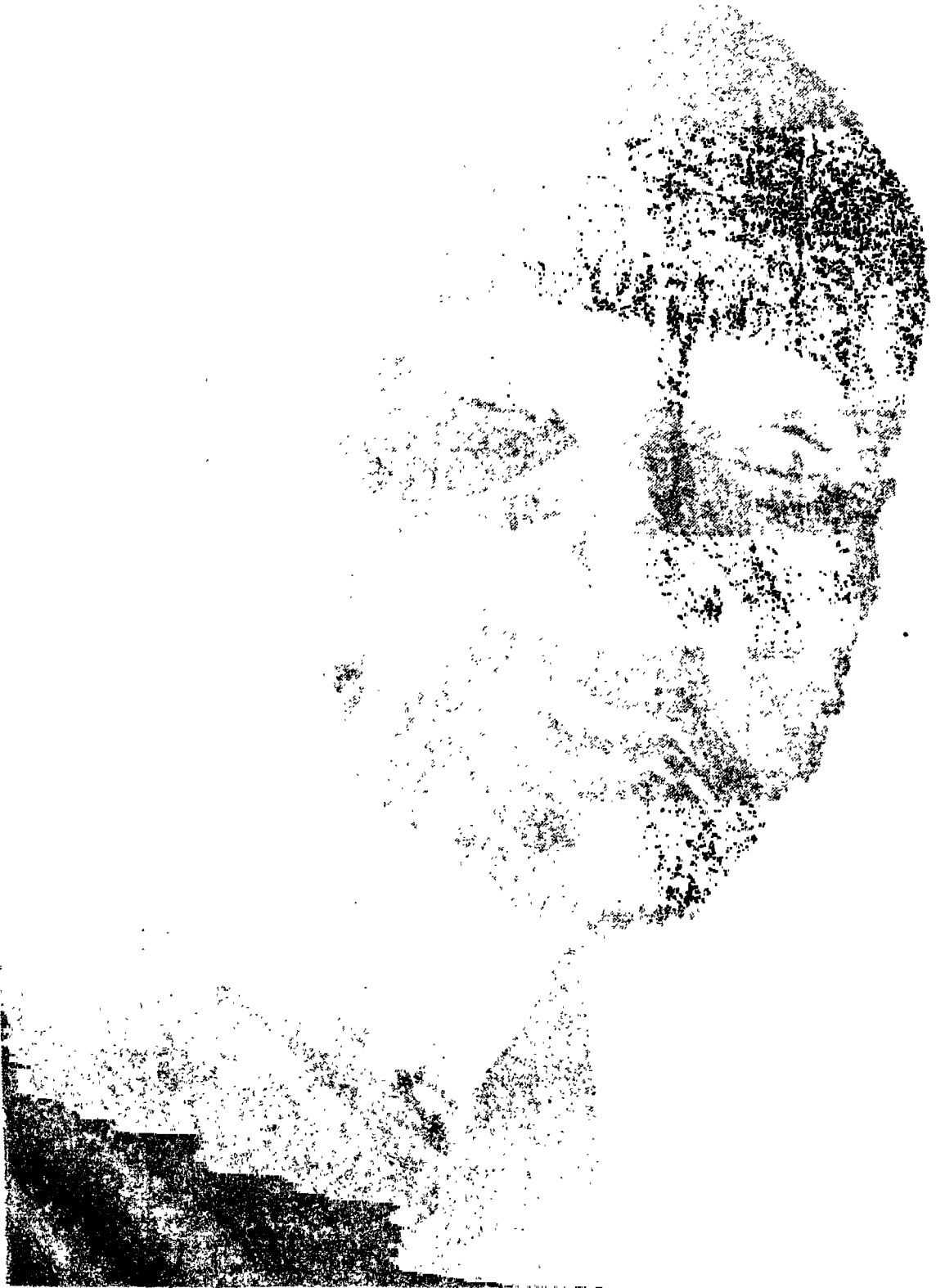
सन् १९५५। कुन्थलगिरि में ३६ वें चातुर्मास के समय का चित्र।
यही आचार्य श्री का अन्तिम चातुर्मास था।

भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन आचार्यश्री के प्रति श्रद्धाँजलि अर्पित कर रहे हैं।

जलूस का एक और दृश्य

दिल्ली में श्रद्धांजलि समारोह

१८ सितम्बर, १९५५ को दिल्ली में विशाल जलूस निकाला गया और गाँधी ग्राऊंड में उप राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा हुई इसी अवसर के कुछ दृश्य।
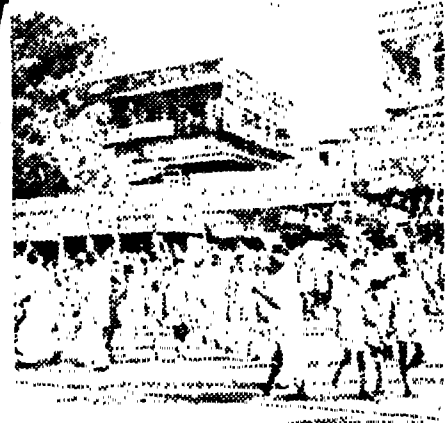
विशाल जलूस का एक दृश्य

केन्द्रीय खाद्यमन्त्री श्री अजित प्रसाद जैन सभा में भाषण कर रहे हैं।
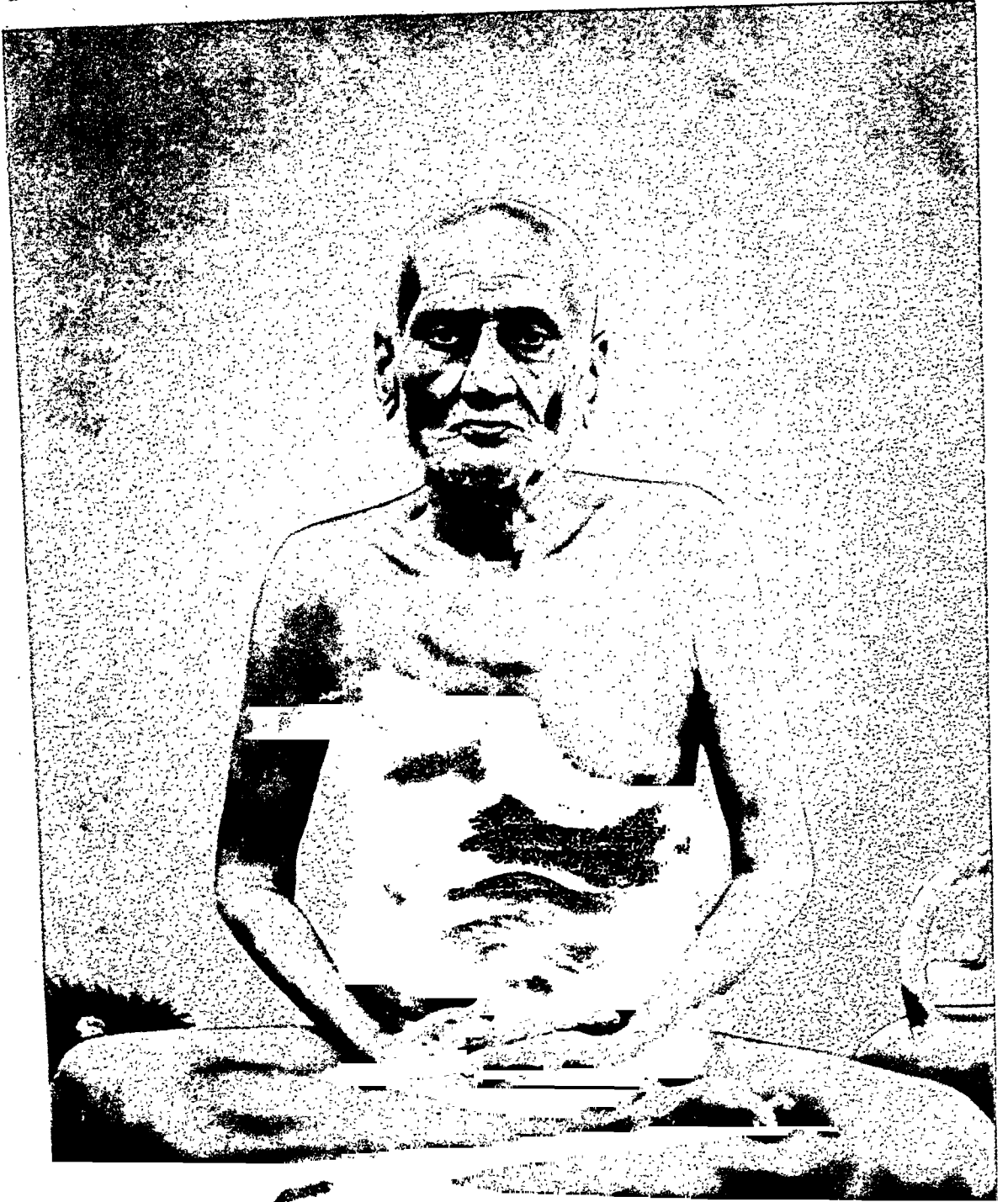
आध्यात्मिक संत आचार्य श्री भावपूर्ण मुद्रा में

Onward to Heaven
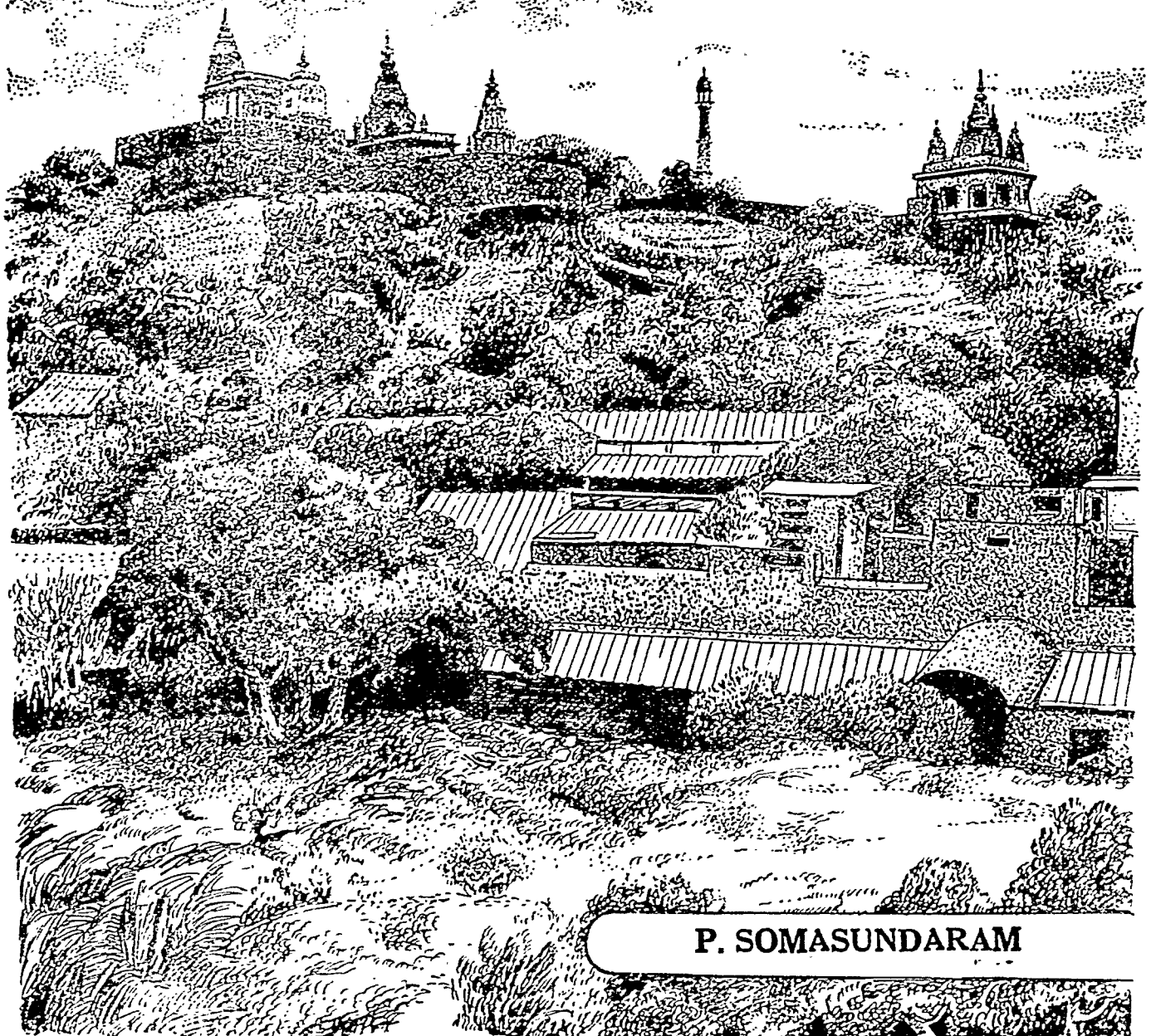
P. SOMASUNDARAM

'अपरिग्गहो अणिच्छो
भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं
अपरिग्गहो दु असणस्स
जाणगो तेण सो होदि ॥'

Non-possession is said
to be non-attachment.
For that reason
known does the
not desire food.
Thus being free
from attachment for
food, he thereby
becomes merely the
Knower (of food).

Onward To Heaven

By : P. SOMASUNDARAM

The last days of Acharya Shanti Sagar Maharaj have been faithfully recaptured in this article by the author, who travelled widely and met a number of persons in order to gather material for this extremely interesting narration.

"What have you done, Maharaj? Whom shall we look to for spiritual guidance when you will leave us? All these days you have been the support and source of strength to our society. When you go, who will be our friend, philosopher and guide? Where shall we seek spiritual solace?" Pandit Jagmohan Lal's voice trembled as he laid bare his heart thus before Acharya Shanti Sagar Maharaj during the latter's last great fast.

"Hold fast to Dharma," replied the Saint in a firm voice. "Seek solace and support in Dharma as I have been doing all these days, and you will not be let down. True faith in Dharma is the only force that sustains the world. Hold firmly to it, you will have nothing to fear."

That was Acharya Shanti Sagar in a nutshell. Dharma was the breath of his life. It was his only mission in life. No task was too great for him if it was in defence of Dharma. Nothing, least of all his body, was too dear to him if it were a hindrance to the strict observance of Dharma. No sacrifice was too great if the cause of Dharma could be upheld by it. This unflinching faith in Dharma was the secret of his greatness and spiritual power. This again was the secret behind his supreme sacrifice, which has few parallels in the recent spiritual history of mankind.

It was on the 13th of August that the Acharya disclosed his decision to observe Sallekhana or Soul-purifying fast unto death, to a choice group of followers headed by Sanghapati Gendanmal Ji of Bombay. Gendanmal Ji and others had come to the picturesque hill of Kunthalgiri, a hallowed place of pilgrimage for the Jains, after hearing about certain hints given out by the Acharya indicating his momentous decision. They had come specifically to plead with the Saint against any such decison. Devout followers of the Acharya, they gratefully remembered the invaluable service rendered by him to the cause of Digambar Jain Creed. They shuddered even to think of a world without his ennobling presence. They were aware of the incalculable loss that will be inflicted on society if the Acharya laid down his life.

When all their pleading, persuation, entreaty and prayers failed to shake the iron resolve of the Acharya, these good men begged him atleast to defer his decision until representatives of the Digambar Jain Society from various parts of India could assemble at Kunthalgiri.

'Maharaj, please listen to me,' pleaded Gendanmalji. "Your devotees are scattered in far off places. All of them would be eager to see and serve you. Atleast allow us time to inform them and get them all here. After proper consultations with them you can make the final decison. Please accede to this humble prayer of mine."

Acharya Shanti Sagar smiled and said in a sweet, but firm voice, "You should remember, friends, that I am undertaking this vow for my own good. It concerns none but me. Then where is the need for consulting others? The spirit wanders from body to body all alone. Whatever he does binds him alone. During

his embodied state, the spirit has to strive for his emancipation all by himself and, when the end comes, he leaves the body and wanders through the aeons of time all alone, accompanied by none but the effects of his own deeds. So, friends, why should he wait for others ?"

"But Maharaj, the devotees will certainly be benefited by your inspiring presence. All these years you have been striving for the eman cipation of your fellowmen. Could you deny them now, the elevating experience of paying homage to you and hearing your message ?" Gendanmal Ji pleaded in a tearful voice.

Soulful Words

"Each one gets an opportunity for his soul's emancipation according to his deeds. Who am I to decide the fate of others ?" said the Acharya, with sincere conviction. " I am responsible for my own deeds. I have right only over myself. My inner voice prompts me to undertake the vow of Sallekhana now. In the face of this inner guidance, how can I attach any importance to other's advice ?"

As he uttered these soulful words, the Acharya's mellowed face shone with a devine glow before which even the sun-bathed hillock of Kunthalgiri looked pale. The spacious green meadows surrounding the hill seemed thrilled at the grandeur of the soul-force emanating from this wonderful old man.

Not Unexpected

Though he disclosed it in precise terms only on the 13th of August, 1955, the Acharya's resolve to undertake a fast unto death was not a sudden one, nor was it fully unexpected. It has been enjoined on the Digambar Jain ascetics that when they find they could not take food strictly in accordance with the rules laid down in the scriptures, or when their body becomes too aged or week to observe these rules, they must undertake a fast unto death *for the preservation of Dharma*. The last clause is very important. It is no sudden whim or a burst of desperate anger or despair that prompts the Digambar Jain ascetic to fast unto death. It is for the sake of Dharma that he undertakes this fast. It is expected of him to be in full possession of his senses throughout his fast. He must maintain his equanamity, compassion and humility till the end of his mortal life. It is in order to help him in this that he is allowed to take water during his fast, though he can do so only once a day at the most.

Acharya Shanti Sagar, whose entire life has been an illustrious example of spiritual and moral conduct as laid down in the Digambar Jain scriptures, knew the moment he was ordained as an ascetic that the end of his moral life can come only through such a self-imposed fast. Hence, he was preparing himself for the last great test, this veritable ordeal, since a fong time. The long list of various types of tasts and pendances he observed from time to time is quite imposing and awe-inspiring.

Not that he was obsessed with a sort of suicidal mania as some ! thoughtless persons might rashly conclude. He was obsessed, if one might call it an obsession, with no other thought than that of Dharma. He was not eager to lay down his mortal coil while it was capable of observing the rules of Dharma. On the other hand, he refused to be goaded into undertaking Salkekhana twelve years ago, when a young doctor tried to persuade him to do so.

Twelve Years Ago

When devotees at Kunthalgiri pleaded with him not to undertake the vow or at least postpone it, the Acharya himself related the story of the young doctor by way of illustration.

Twelve years ago, said the Acharya, he was slightly indisposed. The young son of one of his rich devotees, came to him then to pay

his respects. This young man was a newly graduated doctor and had returned just then from the United States after completing a special course in medical science. With the over-enthusiasm of a newly graduated medical student, he examined the ascetic's body and solemnly declared that the Acharya was suffering from cancer of the throat. He said that the cancer could not be removed because of its advanced state and hence the Acharya would have to suffer a slow death. "Why don't you take the vow of Sallekhana and end your life gloriously rather than succumb to this ignoble disease?" queried the young man. He strongly recommended Sallekhana as the only noble course left to the ascetic.

"I was pleased at his earnestness and blessed him for his frankness," said the Acharya, "but I told him with equal frankness that his diagnosis was wrong. I told him I was not suffering from cancer or any other incurable disease. And for his suggestion regarding Sallekhana, I told him it was not proper for him to advise me on something which was beyond his province. Emancipation of my soul was nobody's concern but my own and I knew what was good for my soul better than he did. Sallekhana could not be undertaken at will, I pointed out, and assured him that when the proper time came, my inner-voice would prompt me to undertake the great vow and I would certainly abide by it."

Acharya Shanti Sagar said that the young physician realized his mistake and took leave apologetically.

"The young man wanted me to undertake this fast twelve years ago when the time was not ripe, whereas now, when circumstances have compelled me to decide upon this course, you people want me to rescind my decision. Isn't it strange?" chuckled the Acharya.

The devotees saw the Acharya's point, but couldn't understand how anyone could prepare for his death so light-heartedly. It was, indeed, difficult for anyone to enter into the spirit of the Acharya and look at life as he saw it.

To Kunthalgiri

Why, then, did the Acharya consider this particular time quite appropriate for undertaking his last great fast?

Acharya Shanti Sagar was at Baramati, a small town near Phaltan, Bombay State, in the month of May, 1955. It was generally understood that he would spend his *Chaturmas* or the four months of the rainy season, at Baramati itself. So, when on the 30th of May the Acharya suddenly announced that he would leave for Kunthalgiri, it came as a surprise and a shock to his adoring followers. Even his closest disciples did not have any inkling that he was going to spend his Chaturmas at Kunthalgiri and that was going to be his last Chaturmas on this earth. Sanghapati Seth Chandu Lal Saraf, a devout follower of the Acharya, begged him earnestly to stay on at Baramati. The people of Baramati were reluctant to bid farewell to the ascetic.
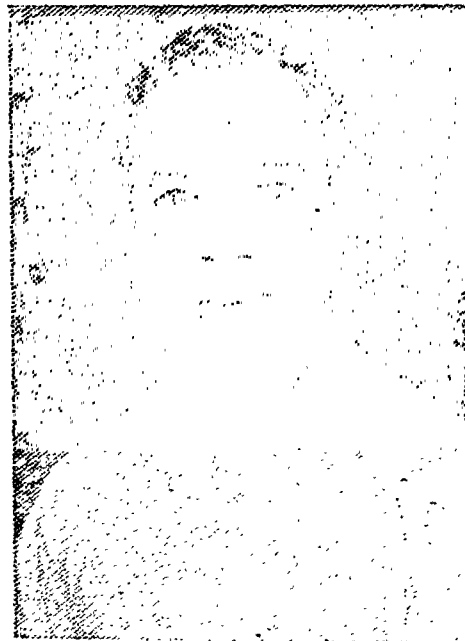
But their entreaties were in vain. "I take every step according to the promptings of my inner voice. Don't stand in my way. Don't

be carried away by sentiments and try to hamper my progress'' said the frail old man in a firm voice. And, on the same day, he started for Kunthalgiri on foot as usual.

He was past eightyfour years then. His tall body was lean and slightly stooping as a result of a succession of fasts, penance and diverse austerities. Yet, his iron will was such that he walked eight to nine miles every day with ease. Walking at this pace, he arrived at Kunthalgiri on the 12th of June, 1955.

As if to herald the saint's arrival and to welcome him, the heavens poured life-giving rains and washed the entire vicinity clean. Remarked the quick-witted Acharya humorously, 'The rains have washed the holy place clean of all the dust and dirt that had accumulated all these months. With our arrival, the holy precincts have become tidy and spotless. Isn't it a good augury ?'

These words of the Acharya had an inner meaning. According to the Jain scriptures, the spirit is washed clean of the good and bad effects of Karma just before its elevation to heaven. This is termed as Karma-Nirjaran or the washing away of karmas. The Acharya had come to Kunthalgiri with the sole purpose of cleansing his spirit of all karmas by undertaking Sallekhana. So, he saw a symbolic approval of his intention in the welcoming down-pour. Hence his remark.

First Indication.

The next day, i. e. 13th June was the ascetic's 85th birthday. People at Kunthalgiri celebrated the occasion with due solemnity. After the speeches of many learned men and representatives of society, the Acharya spoke. A thrill passed through the assembly at the very first words the saint uttered.

'I have come to Kunthalgiri,' said he in a soft tone, 'with the sole purpose of performing Sallekhana as my eyesight is failing. If I fail to regain clarity of eyesight during my stay here, I will fast unto death as laid down in the scriptures. The intervening period will be devoted to self-meditation.'

After this solemn announcement complete silence prevailed for a long time. Every one in the audience prayed from the bottom of his heart that the Acharya's eyesight be improved so that he need not undertake the Great Vow.

Ahimsa or non-injury to any living being is the sheet anchor of Jainism. In the case of a Jain ascetic, this principle assumes an all-embracing proportion. A Digambar Jain ascetic *should not cause the least injury conciously or unconciously to any living being however small or insignificant it might be.* He must see that the food offered to him is clean and no living being has suffered injury in its preparation. Even the slightest shadow of doubt is enough for the ascetic to forego his meals for the day. Similarly, while walking or sitting, the Jain ascetic should see that no creature is injured or trampled upon by him. With the bunch of peacock-feathers, called the 'Peechee' he sweeps his path clean of living beings and brushes his place of sitting lest he should cause injury to creatures unwittingly.

The observance of this rigid rule requires constant vigil and a clear eyesight is the first prerequisite for this vigil. Failing eyesight means breaking the law as the Digambar Jain ascetic sees it. Preservation of the law or Dharma is the very purpose of a Jain ascetic's life. The body he considers to be an instrument in the fulfilment of this purpose. The moment the body becomes incapable of observing the law, it becomes useless to the ascetic. Nay, it becomes an impediment to the spiritual progress of the soul. Under these circumstances, to preserve the body becomes tantamount

to getting the soul entangled in the meshes of karma more and more. To stop nourishing the body becomes the only way of escape from committing and accumulating sins. That is why the Digambar Jain ascetic undertakes the vow of Sallekhana or fast unto death as the last resort.

Understanding of this basic concept of life as propounded in the Jain Scriptures is necessary to appreciate Acharya Shanti Sagar's supreme sacrifice. It was a deleberate step taken with the noble motive of observing the Jain precepts unwaveringly to the last.

This explains the feeling of joy exuded by the Acharya during the days preceding and following his undertaking the great vow. His feeling of elation could be compared to that of a person about to leave his old dilapidated shack for a palatial abode.

Spiritual Glow.

'The intervening period will be devoted more and more to *Atmadhyana* or self-meditation' the Acharya had declared on his 85th birthday. Even prior to that most of his time was spent in meditation on the nature of the Self. For, as the great Acharya Kundakunda declares in his 'Samaya Sara,' *'He who perceives the self as not bound, not touched, not other than self, steady and without any difference, understands the whole Jain doctrine which is the kernal of the Scripture.'*

"जो पस्सदि अप्पाणं
अबद्धपुट्ठं अणण्ण मविसेसम् ।
अपदेस सुत्त मज्झं
पस्सदि जिणसासणं सव्वम् ॥"

Since the day he arrived at Kunthalgiri, the Acharya withdrew more and more into himself. Whenever he emerged from this deep meditation and spoke to his follwers, his words seemed to have assumed a new vigour and depth. Renowned for his lucid exposition of even the most intricate details of doctrine, he now spoke with even greater clarity and force. One could easily discern the spiritual glow that was shedding its light on any topic he touched.

Inspired Sayings

One day, while preaching on the value of controlling one's desires, the Acharya said: 'Even in government service, one has to retire after thirty years. Even if one wanted to, he is not allowed to be in service after that period. When you are relieved of your services after a certain period, can't you relieve your self after hankering after various types of desires and lust for so long ? What do you gain, after all, by getting entangled in the meshes of desires ?

'By your relentless pursuit you might, some day, accumulate wealth. But this thing which you call wealth, has no value in the eyes of a really virtuous person. Wealth can never be a source of real pleasure. To the virtuous person, his inner self is the perennial source of pleasure. Then why do you engage in sinful pursuits thinking you would make him happy ?'

Another day, during his discourse on the emancipation of the soul, the Acharya discerned a sort of despair on the faces of some of his hearers, It seemed as though they were feeling diffident about their own capacity to climb up the heights of spiritual emancipation. The compassionate Acharya, continuing his discourse, said :

'To strive on for ever, must be the motto of every man. To lose heart or to get discouraged is not proper. Incessant effort brings success. As fire comes out of a piece of wood after constant friction, real self reveals itself to one who unceasingly strives for it.

'It is not proper for any one to think low of himself. Each one has got that power in him which can blossom out into the limitless power of the liberated Soul. Have faith in this great truth. Consider every living being

as a potential Siddha or one who has attained liberation. No living being should be thought low of, least of all one's self.'

Real Devotion

On the 21st of June, the Acharya was discoursing on Bhakti or devotion. He said, 'If you think the gods can grant liberation as a reward for your devotion, you are mistaken. For, liberation cannot be granted by one to the other; it is attained by everyone by his own efforts. Prayer, obeisance and such like are all virtues, the purpose of which is to purify the soul.

'To follow the path shown by Jinendra with complete understanding and unflinching faith is alone real devotion. Through this type of Bhakti one can attain liberation in the end.'

The Next Step

The Acharya was thus progressing step by step towards his final goal in this life. On the 5th of July, after morning prayers the Acharya said, "My eyesight has grown weaker after my arrival here. Two years ago my eyesight improved in this same place. But this time it has not been so. I have to depend upon others for support while walking. This dependence and the possibility of breaking the vow (of non-violence) is becoming more and more unbearable to me. My only desire now is to retire to some solitary place like the revered Acharya Bhadrabahu, and there lay down the mortal remains through Sallekhana".

In fact, the saint was awaiting the command of his inner voice before launching upon his final march towards the goal. In the meantime, he was gradually preparing his followers and disciples for it lest they should feel shocked.

On the 7th of July the saint fasted and observed complete silence throughout the day, when some of his closest associates submitted before him that to undertake fast so suddenly might prove harmful. They also pleaded with him not to observe silence.

The next day, Acharya Shanti Sagar broke his silence and said, 'Let me follow my course according to my will. Please don't interfere in it. I have decided upon this course after long and deep contemplation. I shall follow whatever course is agreeable to me and suits my capacity. Pray, let me be.'

From the 18th of July, the ascetic drastically reduced his daily intake of food to a handful or so. He fasted also at various intervals. Before this he was thinking of undertaking Sallekhana prior to Deepawali Festival, i. e. before the second week of November. But now he gave out indications that he proposed to start his last great fast before the second week of August.

On the 4th of August, doctors Mule and Aroskar came from Sholapur. After examining the Acharya's eyes, they declared, "It cannot be cured now. Even the most powerful spectacles will be of no use."

This clinched the issue for the Acharya. His eyes of the flesh were weak, but the eyes of his mind saw the path covered with glory distinctly before them.

This detailed description of the working of the Acharya's mind prior to his great fast is worth pondering over. His condition was like a just king, who explores all avenues of peace before launching upon war. For Sallekhana could be undertaken as a last resort only when the body becomes incapable of observing the laws of Dharma owing to some incurable malady of some organ. The noble vow of Sallekhana would be reduced to a thinly veiled attempt at suicide, if there remained even the remotest possibility of setting right the incapacitated organ. This was the reason why the Acharya refrained from taking any hasty step towards his final goal.

It must be remembered that barring the weak eyesight, the Acharya was enjoying perfect health at this time. He was past eighty four, but hailing from a family of centenarians, the Acharya could confidently look forward to another decade of earthly life. His strong-limbed body, combined with his iron will, could have stood him in good stead, if his eyesight had not failed him. His own elder brother, whom he had initiated into the order of Jain ascetics some twenty years ago, was still going strong at the age of ninety four. Considering all these facts, the Acharya would have been accused of undue haste if he had not made sure of the incurability of his defective eyes, before launching upon the final course of action.

"The Last Lunch"

Even so, the Saint proceeded gradually. On the 10th of August he declared that from hence forward he would not take solid food. He took only the juice of dried grapes and almonds. This continued for three days when on the 13th of August the Acharya announced before a group of representatives of society including Sanghapati Gendanmal Ji and Moti Lal Ji that he had finally decided to undertake Sallekhana. He did not fix the date even then.

14th of August was the last day when this illustrious Saint took nourishment for his body. Even this consisted of almond and grape juice and that too only a few ounces. The rare privilege of being host to this great saint on his last "lunch" fell to the lot of Shri Chandu Lal Saraf of Baramati, a devout follower of the Acharya and a deeply religious person.

On the 15th of August, when India was celebrating her Independence Day, the Acharya made the solemn announcement that he would undertake a fast for eight days during which period he would take only pure water once a day if he felt the need. This type of fast is called Niyam Sallekhana by the Jains.

By post, telegram and phone, this news spread throughout the length and breadth of the country. Everyone who heard or read the news, especially the Jains, were shocked. Before they had time to assimilate the deep implications of the news another more severe shock came. The Acharya had declared that he would continue the fast until his death.

"I Will Go Up"

This last announcement was made by the Acharya quite dramatically. At the end of his routine discourse in the morning of 17th August, the ascetic quite unobtrusively announced, "I have finally made up my mind to undertake Yam-Sallekhana (fast unto death). I shall take only pure water once a day, if I felt the need during this fast."

And, before the devout audience could recover from the stunning impact of this sweetly uttered pronouncement, the Acharya said, "I shall go up to-day itself."

Till that day the Acharya was staying in the room at the foot of the hill, though he used to ascend the hundred and odd steps to pray at the main temple on top of the hill. On the day he made the momentous announcement, he said he would go up and stay at the artificial cave built near the main temple.

"But Mahraj, to-day is newmoon day. It is not an auspicious day for going up", said Bhattarak Jina Sen, a well-known Jain ascetic of the Bhattarak Order.×"

"How do you say so ?" retorted the Acharya with a humorous twinkle in his eyes. "Don't you remember that our twenty fourth Tirthan-

× *Bhattaraks are heads of Jain monasteries. These monasteries have done invaluable service to literature by preserving ancient books on various subjects by Jain authors.*

kar Mahavir went up (i. e. attained Nirvana) on a new moon day? When even Mahavira did so, why not I go up today?"

The implied meaning of this quip thrilled the hearers. The Acharya, by undertaking Sallekhana, was "going up" nearer heaven. It, indeed, was an uphill task. To give this spiritual experience a physical symbol, he decided to go uphill and stay there from that day.

The Acharya informed the authorities of the temple committee immediately and, without a moment's hesitation, ascended the steps of the great hill. Since that day, he spent most of his time in meditation either in the main temple or in the built-in cave near b y.

Great Crowds

Meanwhile, news of the saint's momentous fast spread like wild fire all over the country. Whoever heard of it was thrilled and distressed at the same time. Thrilled, because he was witnessing an event the like of which he had only read about in books and stories. Distressed, because the saint who was mainly responsible for the religious and spiritual awakening of not only Digambar Jains, but millions of others also, was leaving them all for good.

The Acharya sincerely desired to fulfil his great vow in complete solitude. That was one of the reasons why he chose Kunthalgiri, a place not easy of access to outsiders, for this purpose. But the people were not so ungrateful as to allow him to do so. From far and near came young and old, men,women and children, in their thousands to pay homage to this greatest saint of their time.

Within a week, the vast plains surrounding this solitary hill-temple were sprinkled with a number of tents erected by the Temple-Committee to accommodate the thousands of devotees arriving from far and wide, to have a glimpse of the Acharya and pay him homage. The temple authorities were faced with a number of unforeseen problems, to solve which they had to seek the help of the government and had to organize a disciplined volunteer corps. In a place, where hardly a hundred persons usually lived, arrangements had to be made for more than twenty thousand people of all ages and both the sexes. People were coming and going in large numbers. A conservative estimate places the total number of people visiting the place during the 36 days' fast at two hundred thousand. The floating population was nearly twenty thousand for a full month. But for the unbelievable self-denial of the pilgrims, vigilance of the volunteers and the commendable co-operation of the state administration and transport authorities, the situation could have gone out of control.

The vast multitude of pilgrims consisted of persons from all walks of life and of different social status. There were a number of ascetics including Bhattarak Lakshmi Sen Ji, Bhattarak Jina Sen Ji, Kshullak Parshwakirti Ji and others. There was also the well-known Digambar Muni shri Pihitasrav Ji. Then there were many reputed scholars and theologians of the Digambar Jain Sect, including Pandit Makhan Lal Ji of Morena and Pandit Sumer Chand Diwakar of Seoni. There were multi-millionaire industrialists and captains of commerce like Seth Bhagchand Ji Soni of Ajmer, Kunwar Rajkumar Ji, Seth Hira Lal Ji, Seth Gendan Malji and a number of others. There were politicians like Shri Mishri Lal Gangwal, Deputy Chief-Minister, Madhya Bharat. Also, there were a great number of men and women of all classes.

The vast crowd, the roar of the people who kept shouting "Jai Ho, Acharya Shanti Sagar Maharaj Ki' (Victory to Acharya Shanti Sagar Maharaj) and the constant bustle of the workers around him might have exhausted even a man in the prime of his youth. But,

this remarkable old man past eighty four, this ascetic who was observing a fast and awaiting death, was not at all disturbed by this hustle and bustle around him. Concentrating his thought on the true nature and glory of the self, the saint remained serenely untouched by his physical discomfort. His only anxiety, whenever he spoke of it, was that the people should not be put to suffering on his account. That was why he wanted to fulfil his vow in a solitary place, unobserved by his loving followers.

Complete Detachment

One has read about saints and ascetics who had no attachment to their body. It is said of St. Francis of Assissee, that he used to call his body "his brother ass". In these days of scepticism, one naturally had some doubts as to the possibility of any one's being able so completely to detatch himself from the pleasures and pains experienced by his body.

The great Jain teacher, Acharya Kundakunda, described this perfect detachment of a saintly person in this beautilul verse :—

"अहमेक्को खलु सुद्धो
दंसणणाणमइओ सदारुवी ।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि
अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥"

Absolutely pure, having the nature of perception and knowledge, always non-corporeal, I am indeed unique. Hence not even an atom of alien things whatsoever (whether living or non-living) is related to me as mine.

But such inspired sayings sound too idealistic to be practicable. It is true that in moments of clear vision, every thinking man realizes that the spirit can have no relationship to matter in any shape or form. Yet, to be completely rid of attachment to mundane things is not possible for ordinary mortals.

The bird which flies away from its nest may forget for ever its nest, but ordinary human being shudders even to visualize the truth that the moment the spirit leaves his bodily abode, the latter loses all its significance and meaning and hence, to have any attachment to one's corporeal body is devoid of any sense. Such detachment is possible for only those rare saints who can rise above the limitations of the senses and face the truth in its naked glory.

It is said of the great Tamil Saint and poet Tiruvalluvar whose maxims on life are famous all over the world, that he asked his friends to drag his body after his death to some uninhabited jungle and leave it there without any pompous honours. Reading the stories of such unique persons, one naturally concluded that this sort of detachment could not be possible these days.

After Acharya Shanti Sagar Maharaj had undertaken Sallekhana his close followers started worrying about the final rites of his noble body. Shri Manik Chand Vir Chand and Shri Bal Chand approached the Acharya hesitantlyand said, "We are eager to hear your instructions as to everything."

The Acharya smiled and said, "I understand what you mean. But the point is, will you fulfil my desire if I express it ?"

"Certainly, Maharaj. What doubt is there ?"

"Think over it fully. You should not go back on your words afterwards," said the Acharya.

"We would consider it a rare privilege to be instrumental in fulfilling your desire, Maharaj,'' said the devotees.

''Listen to my wish then", said the Acharya and proceeded, "I want my body to be thrown away at some uninhabited spot, such as the

peak of a hill or the bank of a river not frequented by people.'

The devotees were shocked to hear this. Shivering with emotion they pleaded, 'But, Maharaj, this type of disposal of a fellow ascetic's body has been ordained only for ascetics. How can it apply to house-holders like us ?'

The Acharya looked at them intently for some moments. He realized how painful his words had been to them. Their distress made him compassionate.

'If that is how you feel about it,' he said gently, 'then have your own way. But take care of two things : my body will be cremated without any pomp at some such place where no creature or plant will suffer injury by that ; secondly, no memorial will be erected for me.'

He was facing certain death. Yet he had no attachment for his body. But when he saw he was causing pain to his followers' feelings by his indifference towards his body, he immediately relented. Here was a saint, in the fullest sense of the term.

Iron Will.

During the great fast, what amazed even those close associates who had been with the Acharya for a number of years, was the perfect mastery of his spirit over his body. He was fasting since 15th August itself. During the long spell of thirtysix days' fast, he took water only eight times in all. His body was growing weaker every day, but his spirit remained unaffected by this physical weakness. It seemed as if his ebullient spirit was soaring higher and higher as the fast proceeded. His control over his starving body was remarkable.

He was not a stranger to such austerities and penances. But this was the greatest and the toughest ordeal of his life. It was his indomitable spirit and iron will that saw him emerge out of it with flying colours.

Despite his continuous fast, the Acharya regularly ascended the thirty odd steps every morning to make obeisance at the main temple of Deshbhushan and Kulbhushan, two earlier Tirthankaras or prophets of the Jain religion. After worshipping there, he used to sit outside the temple for some time in order to allow his adoring follwers to have his 'darshan.' Occasionally. he used to hold discourses also on various spiritual matters. This routine he kept up till the 10th of September, i. e., just eleven days before he laid down his body.

A remarkable feature of these discourses was the aroma of elation the Acharya seemed to exude. His fine sense of humour shone more brilliantly than ever. At such times, it was difficult to realize that he was fasting for many days.

Followers, coming from far off places had a pleasant surprise to find him in such a happy mood. Some skeptical moderners who came to see the ascetic glumly suffering, received a rude shock when they found him in this ecstatic mood.

The Lawyer's Plight.

During these discourses, the Acharya used to cut jokes at the expense of some of his close associates by way of illustration. One day, while explaining the extraordinary hold of *moha* or the lure of mundane things, the Acharya's dim eyes alighted on a lawyer-disciple sitting nearby. With a humorous twinkle in his eyes, the Acharya said, "There goes on a constant fight between *moha* and wisdom in every thinking mn's maind. If his will is weaker, then moha always wins, for however wise he might be. Take for instance, my lawyer friend here. He is a learned man, and a very pious one, too. His sons and nephews are also practising lawyers. Wisdom tells him he must now renounce worldly attachments and take to asceticism. Every time he comes to me, he tells me, 'Maharaj,

I shall take to the life of an ascetic the moment such-and-such case is over.' I tell him, 'Why not entrust it to your sons or nephews and join the ascetic fold now itself ?' 'But Maharaj,' says he, 'they might spoil the case. It wont take long. As soon as it is over, I shall run to you to be ordained as an ascetic.' I tell him 'unless you rise above this *moha*, this lure of your profession, you will never be freed from wordly bondages. Before this case is over, you will take up another case, then another and so on unendingly. You must overcome this moha once for all' He agrees with me. Wisdom sees the light.. But his will is not strong enough to follow the path shown by that light. Such is the power of moha".

The entire gathering had a hearty laugh while the embarrassed lawyer was heard mumbling that he would renounce the world as soon as a serious case, pending in a court, was disposed off.

Many such jokes of the Acharya are cherished by those who were with him these days.

"At My Own Home"

During this historic fast, Pandit Sumer Chand Diwakar, a well-known scholar and theologian, once asked the Acharya, "I hope you are not having any trouble, Maharaj ?"

"Trouble ? Why should I have any trouble when I am sitting at my own home ?" replied the Acharya, with a mystical note in his voice.

Then, elucidating his point, the Acharya continued, "I keep constantly contemplating on the Self. During this meditation, I do not stay here. I travel to the world of many *Siddhas* (Liberated Souls) on the wings of my thought and meditate in the dreams of the those countless *Siddhas*.

"But, don't think I meditate on them. No. I concentrate my mind on my own pure self. During this meditation, I feel I am at my own home. So I don't feel any sort of pain or difficulty."

Considering the great ordeal the Acharya was undergoing, his devoted followers were distressed and pained. But the ascetic, who was in constant communion with his pure Self was actually in a state of beatitude. His spirit was untouched by the suffering of his body. It is by dint of this equanimity and pure wisdom that the aged Acharya succeeded in maintaining a rigid control over his body, mind and tongue till his last breath.

The Successor

During his life-time, the Acharya's position and status among Digambar Jain ascetics was unrivalled. Though the title of Acharya was bestowed upon him by a grateful society voluntarily, he did not consider it wise to leave the place vacant to be filledin after his demise. Such a course could give rise to undue rivalries, he feared. So, he thought over it long and announced on 24th August that Muni Vir Sagar Maharaj, who was the first to be ordained by the Acharya as a Nirgrantha Muni (nude ascetic), would be his successor. This important aunouncement was received with great acclaim by every well-wisher of Digambar Jain Creed.

Humility

Never for once did the Acharya consider himself superior to any of his fellow men. On the other hand, he often proclaimed that every living being had that essence in him that could, in course of time and with due effort, blossom forth, into a fully liberated soul or Siddha. That was why, on the 26th of August, at the end of his usual discourse in the afternoon, he declared that he had forgiven all and requested all to forgive him. It was a soul-stirring sight to see that great saint who had risen above all sorts of desires and passions, begging the forgiveness of simple folk, with such sincere humility. Few were the eyes in that vast audience which were not tearful at this noble sight.

Message To The Mahasabha

The Acharya was famous, like Mahatma Gandhi, for his pithy remarks. His unique genius for brevity shone brighter during his great fast, than ever before. His simple words, like the maxims of ancient *rishis*, contained an ocean of meaning.

For instance, the general secretary of the All India Digambar Jain Mahasabha, Lala Parsadi Lal Patni arrived at Kunthalgiri from Delhi on the 26th August. He could not go there earlier owing to unavoidable circumstances. At the sight of him the Acharya smiled and remarked in a tender voice, '*Bahut lambe se aye.*'

This simple Hindi sentence meant literally, 'You came from a long distance.' It could also be interpreted as, 'You came after a long time." The sentence could be taken as meaning that Shri Patni's devoutness was so great that he did not mind the long distance and came to pay his respects to the saint. It also contained an appreciative note that being the general secretary of the representative organization of Digambar Jain Society, Shri Patni's sense of duty in coming all the way from Delhi was commendable. It also sounded as if the Acharya was expecting him and was happy at his arrival.

No wonder Shri Patni's heart melted at these kind words and his eyes filled with grateful tears.

As an organization working for the preservation of Digambar Jain religion and for safeguarding the interests of the Digambar Jains, the Acharya's blessings were always there with the Mahasabha. So, when Shri Patni requested him for a message for the Mahasabha, the Acharya said :

"I want the Mahasabha to be vigilant as it has always been, in preserving Dharma; to remember always the true essence of Dharma and never do anything that is contrary to Dharma."

The deep meaning of this message is quite obvious. Without having a clear idea as to what the true essence of religion is one cannot work for its preservation. One might fight for the shadows while sacrifising the substance inadvertantly. That is why the Acharya wanted the Mahasabha to always keep in mind the true essence of Dharma and work for its preservation. It is a message worth cherishing by every devout follower of any religion.

A Signal Service

When a historic event takes place, few can correctly estimate its far-reaching significance. Fewer, still, are those who could devise ways and means to take full advantage of it.

Acharya Shanti Sagar Maharaj's great fast was a historic event the like of which it is hard to come across in recent spiritual history of mankind. Fortunately, the last days of the Acharya were successfully filmed by an enterprising photographer, and thus the various activities of the Acharya and the great crowds that thronged the lonely spot of Kunthalgiri in those days have been preserved for future generations. But it did not strike anyone in the beginning to record the voice of the great saint, the voice that had kept preaching the great precepts of Digambar Jain religion for over forty years.

It was only when the fast was approaching its culmination and the Acharya had almost exhausted the hidden reserves of his emaciated body that suddenly some imaginative gentlemen arranged for a recording of his voice.

On the 8th of September, ten days before the Acharya breathed his last, these disciples approached the Acharya and requested him to

give his last message to society. The benign saint readily complied with their request. Sitting in his normal pose, the Acharya addresed a select audience in Marathi, for well over twenty minutes. The message was recorded. This is the only record of the great saint's voice.

It is a unique message. Knowing full well that his days on this earth were literally numbered, the Acharya gave the quintessence of what he considered as true religion. Recorded herein one finds the life-long convictions of a dedicated soul. As one listens to or reads it, one feels that the words of the saint emerge from his innermost heart and go straight into the listener's heart to remain permanently embedded there. (An English rendering of this inspired and inspiring message appears elsewhere in this Number.) Those who were instrumental in preserving the voice and words of this great saint, have done a signal service to mankind.

Soul-Force.

The momentous fast proceeded. As it was nearing its goal, the thronging multitude grew to enormous proportions It became almost a problem to keep the eager people under control. Till the 10th of September, the saint used to appear before the crowds regularly and talk to them a few words. But after that, even the untiring body of that great soul grew too weak to stand erect. Still, in order to pacify the eager crowd, he allowed himself to be carried to a raised platform where he could be seen by the people. On 12th September, at the sight of the Saint, emotion swept the multitude off its feet and a deafening roar of 'Acharya Shanti Sagar Maharaj Ki Jai' (Victory to Acharya Shanti Sagar Maharaj) was repeated again and again. This thoughtless adulation disturbed the peace of mind of the Acharya and he was heard saying, 'It would be better if you leave me at a solitary place where no one will disturb me.'

These words of the Acharya spread from mouth to mouth and instantaneously complete silence fell like a blanket on that seething multitude.

When on 14th September the Acharya was again brought to the platform, the people silently paid their homage to him and dispersed peacefully.

The aged Acharya's starving body was by now so weak that learned doctors and astronomers predicted that he might not survive a day more. But their predictions and diagnosis proved wrong.

On 16th September, the Acharya expressed his wish that his body be placed in lying posture on a mat with his head pillowed on the bunch of peacock- feathers called 'peechee'. The devotees did so.

At this juncture, some of the ascetic disciples of the Acharya asked him whether he wanted any Shastras to be read aloud for him to hear. The Acharya said, no. He wanted to concentrate his entire energy on Self-contemplation.

Truly speaking, it was this constant meditation that sustained the frail body of the Acharya for so long in spite of the great strain put on it. By sheer soul-force, this eightyfour year old ascetic remained in full control of his mind and body to the last.

The Last Day

17th September. Expert physcians had declared that the ascetic's final hour was fast approaching. Outside, the anxiously waiting crowd was shouting for the '*Darshan*' of the saint. The disciples, after holding consultations among themselves, decided to carry the saint to the platform for the people to see. Since the doctors had declared the end was near,

Gendan Mal Ji suggested that the Acharya be seated with the help of props. Others agreed.

The Acharya was in deep meditation when he was made to sit in the Padmasana pose and taken to the raised platform. The extra pain in the limbs caused by this must have disturbed him in his mdeitation. He opened his eyes and said in a low, but distinct voice, "Let me lie down as before. This posture disturbs my mental concentration."

The props were then removed and the body was stretched on the mat, but this painful interlude considerably exhausted the Acharya's dwindling energy. Even then, he remained on the platform lying on one side for ful five hours.

To Heaven

Throughout that night, the ascetics gathered there sat near the Acharya chanting "Namokar Mantra" continuously. One of these ascetics, Kshullak Parshwakirti Ji, told me that the Acharya's lip-movements indicated that he also was chanting that mantra.

Contrary to the doctor's expectation, the Acharya remained alive in the morning of 18th September. What sustained that emaciated old body was really a mystery to all around him.

At about 6 A. M. on 18th September, the sacred water used for abhisheka (ablution of the Deities) was brought by the priests. A close associate told the Acharya, "Maharaj, they have brought the holy water." The Acharya signalled to him to apply the water all over his body. The disciple did so and in the end dipped the Achraya's fingers in to the bowl and applied them to his eyes and forehead.

Gendan Malji, who was witnessing thissight told me later that as the disciple took the Acharaya's hand and. dipping it in the bowl containing holy water, applied it to his forehead and eyes, a sevene smile of satisfaction spread over the face of the Acharya. After a few minutes he started breathing heavily. The pace of breath grew faster and faster for some minutes and then suddenly the process was reversed. Slower and slower went on the breath for some time. Then all of a sudden, there was a jerk-like motion. That was the last breath. It was exactly 6. 50 A. M. at that time.

Thus ascended to heaven that great soul, who gave new life to the Digambar Jain Creed and inculcated new faith in the minds of millions, leaving the mortal coil behind. The inspiring voice that kept preaching the noble precepts of Jainism for well over forty years was silenced. Those untiring feet, that had traversed the vast subcontinent of India from one end to the other more than once, lay inert. The body of a great saint lay there, cold and still.

Unique Saint.

Numerous are the ascetic stars that shone on the firmament of Digambar Jain Society from times immemorial. There may come many in future also. But the position of Acharya Shanti Sagar Maharaj will remain unique among them for all times to come.

He was the personification of Digambar Jain creed in the true sense. The implicit faith and deeply felt reverence he had for the Digambar Jain Scricptures could hardly be equalled or surpassed by any one else. He lived his life as enjoined in the *Agamas* or Scriptures. Whoever contravened the scriptures the Acharya opposed staunchly and relentlessly whatever his social or political status. The preservation and spread of the teaching of the Jina was his mission in life. In fulfilment of this mission he was always willing to face all trials and tribulations however heartbreaking. Himalayan obstructions confronted him more than once, but the unflinching faith he had in justice of his Cause and his indomitable spirit and single-minded devo-

tion were such formidable forces before which mountains melted and oceans dried up. Seated on the pinnacle of spiritual heights, he could view pleasure and pain with equal detachment. This enabled him to perform great feats of self-imposed suffering with easy unconcern. With the clear vision of a Yogi, he perceived spirit and matter as two distinctly seperate entities. His entire life had been a constant assertion of the will of the spirit over the lures of matter. Thus, his Sallekhana, his last great fast, proved a fitting *Finale* to the spiritual song of his noble life.

By his noble example and precepts, he made the almost dried-up fountain of Digambar Jain creed resprout the life-giving stream of faith. It is the result of his great endeavour that during the past forty years there had been such a wide awakening in the Digambar Jain Society as had never been witnessed during many centuries be fore that. In these days of mechanical achievements and spiritual darkness, his life has been a glorious proof of the supremacy of the spirit over matter.

Heart of Gold

The Acharya rigidly observed the ascetic code and in sisted upon other ascetics also to do so. Faith was the sole sustanance and source of strength. But his real greatness lay in the magnanimity of his golden heart. His impeccable asceticism and spiritual achievements did not stand in the way of his great compassion and love for his spiritually weaker fellow human beings. Scholars and illiterates, millionaires and poor folk, virtuous and sinners all had equally easy access to him and were received with equal kindness. No sinner was beyond redemption in his eyes. He perceived the potential Siddha or liberated soul in every being and hence had equal love and regard for all.

Rigid asceticism did not make him dry or joyless. On the other hand, the sweet fragrance of inner joy emanated from him and made his presence an unforgettable experience. He never despaired of anything. Even the most downhearted person felt braced up in his benign presence. While constantly striving for the emancipation of his soul, he did not forget his fellow men and shed light on their path to spritual progress.

The Acharya's discourses were always straight heart-to-heart talks. He had an ascetic's dislike of verbosity and pedantry. He spoke the simple, unadorned language of an ordinary villager, but his simple words spoke volumes. He had the uncanny knack of elucidating difficult philosophical truths by picturesque illustrations and homely similes. His bubbling sense of humour made his discourses things of beauty and joy. Though born a Kannada speaking man, he became a multi-linguist scholar by constant study. He could speak Kannada, Marathi and Hindi with equal ease and grace. His proficency in Sanskrit and Prakrit was also great. Many were the occasions when erudite scholars went to him with great pomp and drum-beating and returned subdued and thoughtfully humble. For these bookish men, the scriptures were mere pegs to hang their pedantry on, while they were the life-breath of the Acharya who approached them with the humility and faith of a true devotee. So, their inner meaning revealed itself to him while it eluded the great scholars.

Ramakrishna Paramahansa once remarked that a man of faith attains liberation with great ease while the man of wisdom struggles ahead with great difficulty. Acharya Shanti Sagar has proved that even to become a man of wisdom in the real sense requires faith and devotion.

This unique saint, this compassionate Master, is no longer with us now. Many plans are being discussed about erecting a fitting memorial to him. But his only true memorial will be his glorious example and teachings which neither time can wither nor death destroy.

May his memory guide us for ever.

His Last Message

On the 26th day of his soul-purifying fast, with death staring him in the face, Acharya Shanti Sagarji recorded the following message in Marathi for the benefit of mankind. Recorded herein we find the life-long convictions of a dedicated soul, uttered in an unadorned, direct language, with heart-warming sincerity. The words seem to emerge from the heart of the great soul and touch the heart of the listener leaving their ever lasting imprint on it. For the benefit of our Western readers, we are giving here a free English rendering of the great Acharya's last message.

After the Preliminary prayer. the Acharya said : "The Jain scriputres consisting of eleven Angas and fourteen Poorva Praman Shastras are like a vast ocean. There are no superhuman Shruta Kevalis to espouse or explain their innermost meaning today. How can humble humans like me shed light on them ? The Shrut Devi, or the inspired utterances emenating from the Jina are an endless ocean. Blessed are those who adhere to the Dharma propounded in them. It is they who enjoy endless bliss and attain salvation or Moksha. This is the Law.

" 'Om' is the basic sound. By holding fast to that one sound 'Om' many have attained salvation. (The story has it that) two monkeys, quarreling among themselves on the peaks of Sammedshikhar, went to heaven (by dint of their devotion to the 'Sound'). The merchant Sudarshan similarly went to heaven. A dog, considered to be a very low class animal, became a god by listening to Jinvndhar Kumar's preaching of the "Namokar Mantra.' Such is the greatness of Jain Dharma, but Jains have today lost faith in their own creed.

"Matter and spirit are two distinct entities. They have remained so since infinite time. Everyone knows this but none gives credence to this knowledge. You are a living being, you are soul, while matter is lifeless, it has no conciousness. Only the concious soul posseses knowledge and sight. Matter has touch, taste, smell and colour. Thus the nature and functions of the spirit and matter are distinctly different.

Lure of Matter

"The spirit gets into harm by hankering after matter. You are a living spirit and this sort of attachment to matter hampers your progress. Whatever is good for the spirit or the soul is deterimental to matter, and vice-versa. The eternal bliss of moksha or liberation can be attained only by the spirit and not by matter. But the world has forgotten this fact. The spirit lies enmeshed in the five sins. The lure of the empirical world has destroyed righteousness. What then, must we do ?

If you want to obtain bliss, destroy this lure of the visible world and adhere to righteousness ; destroy carnal lust and practise austerity ; destroy both kinds of attachments and strive for the emancipation of your soul. This is my sermon unto you. Thus I enjoin on you.

"The spirit wallows in the mire of *Sansara* or embodied state as a result of falsity. Destory that falsity and stick to righteousness. What is this righteousness ? All of the great scriptures like the Samayasar, Niyamsar, Panchasti-

kaya, Ashtapahuda and Gomatasar have described righteousness vividly. But, then, who cares for these scriptures? Only he cares, who is interested in his soul's emancipation. Don't adhere to falsehood. This is my preaching and my injunction to you.

Meditation

"The lure of the visible world can be got rid of only by meditating upon the Self. Only thus can you wash the soul clean of its karmas.

'Charity, prayer and pilgrimage add to one's virtue or *Punya*. Every religious act adds to the sum total of one's virtue. But the accumulated dirt of *karma* is washed off only by self-meditation. Only by meditating on one's self can one attain pure wisdom. The infinite heaps of *karmas* are swept away only by this meditation. This cleansing of the soul pure of all *karmas* is a condition prerequisite to the attainment of *Kevalajnana* or absolute wisdom. And, without attaining absolute wisdom the soul cannot attain *moksha* or liberation. What then is our duty? The scriptures have laid down that self-meditation for three hours a day is best, two hours fair and one hour as below-par. However, one must meditate upon the self for at least fifteen minutes everyday. I would even go to the extent of asking you to meditate just for five minutes everyday. Without self-meditation, righteousness and equanimity cannot be obtained. If righteousness is not obtained, the cycle of births and deaths cannot be got rid of. Firmly established in righteousness, one must practise austerity. Austerity is necessary for getting rid of bondages resulting from emotional or sensul attachments. One need not fear self-abnegation, for it is that that raises the soul to the seventh step on the way to liberation. Even wearing clothes is an impediment to the attainment of the seventh step.

Samadhi

'*Samadhi* or trance is of two types: one, *Nirvikalpa* in which the mind is permanently concentrated upon the self notwithstanding the outward actions of the body and the other, *Savikalpa Samadhi* in which the person concerned concentrates his mind on the self at some appointed time. *Savikalpa Samadhi* is for the house-holder, for *Nirvikalpa Samadhi* is not possible for anyone who is not a a *muni* or ascetic. So if you want to practise Nirvikalpa Samadhi, you must first become a *muni*. Acharya Kundakunda has said that righteousness is obtainable by Nirvikalpa Samadhi. Righteous conduct is not enough, it is only causal to the realization of Self, even as the flower is causal to the fruit. Spiritual equanamity and righteousness flow from the realization of Self.

"Nirvikalpa Samadhi leads the Soul from seventh to the twelvth step towards Salvation. At the next step, so the scriptures say, the soul attains absolute wisdom. Don't be awed at this great height of spiritualism that has to be ascended. Practise self-control. Adhere to righteousness. Without these two, self-emancipation is not possible.

The Lonely Self

"Know and understand this fact clearly that matter and spirit are two distinctly seperate entities. Even by ordinary thinking you might perceive that the relationships of mother, father etc. are caused by matter and the spirit has no connection with them.

"*Dear brothren, the self is lonely, it has no attachments or relationships with anything. The self wanders from birth to birth alone; none keeps it company.*

"Worship of the gods, service to one's guru or master, study of the scriptures, self-control, charity and penance are all religious acts. Vaious types of works are ordained for man, viz.

(*Continued on page 246*)

The Basic Principles Of Jainism

PRO. CHAKRAVARTHY

In this masterly treatise, the scholarly writer presents a lucid exposition on the fundamental principles of Jainism and its concept of divinity. A well-known savant and linguist, Prof. Chakravarty has rendered invaluable service in enlightening the English reading public on the various aspects of Jainism through his many volumtinous books.

The principle of ahimsa or universal love is based upon the recognition of the kinship of all organisms. Of different grades exhibit certain common characteristics peculiar to life.

Jaina thinkers classify all living beings in two different groups according to the sense organs possessed by the living beings. The lowest grade of the organic world consists of the botanical kingdom. The plants and trees are living organisms possessing only one sense, the sense of contact or touch. These one-sensed organisms are not capable of moving from one place to another. Hence they are stationary. Next above this class are placed the organisms of the two senses, touch and taste. These organisms are capapable of movement. Hence they are called *Trasa Jivas* or moving organisms. Insects like earthworms which have two senses, awareness of touch and taste, are brought under this class. Next above this, are placed animals with the three senses: touch, taste and smell. Next above this class come all those animals which are endowed with four senses. They have, in addition to touch, taste and smell, the sense of sight. Next above this class, are placed all those organisms which have five senses: the sense of hearing beside touch, taste, smell and sight. Under this class come all the higher animals. Above this class of five-sensed organisms, come all those beings which have a mind besides these five kinds of sense awareness. Man comes under this class, a five-sensed being with a mind in addition.

This classification is obviously based upon the evolution of the sense organs taken as a criterion of biological development. This classification of the organisms emphsises the ultimate kin-ship of all living beings. This realisation of kinship of all organisms imbue sman with an ethical sense of love and sympathy to all living creatures. Whenever he finds any being in trouble and suffering, he tries to remove the cause of their suffering and to place the matter out of danger. This love and sympathy towards all living creatures is the necessary ethical outcome of the ulitmate philosophical principle, the fundamental unity of living beings.

The Ultimate Ideal of Life

Jainism postulates an ultimate ideal in life which is called moksha or liberation. In this respect, the other Indian systems of thought which came in to existence after the Upanishadic period also agree with it. This concept of liberation naturally implies the precondition of bondage. All living beings are associated with an organic body which in its turn seems to be operated by a non-material principle which is variously called the spirit or the *atma*. The body is generally considered to be the abode of the spirit or soul.

This state of embodied existence is considered by the Jains in its pure nature cannot have an embodied state of existence. Just as a silk worm spins a cocoon round itself of its own activity, so also the spirit after its own karmas

builds up the material nucleus which forms the basis of its organic body.

It is this embodied existence of living organisms that is associated with birth, old age and death. These characteristic changes of appearance and disapperance are the intrinsic characteristics of the ultimate personality of man. Man hopes to have as a spiritual ideal, a life that transcends these changes of birth, old age and death. The state of pure existence which knows no birth or old age or death is the immortal existence of the spirit. Man in his religious life has already aspired to attain that goal from which there is no chance of returning to this organic world of birth, old age and death. This is what the religious philosophers in India have stated as the ultimate goal of life: transcending samsara and reaching the spiritual goal of moksha.

Meaning Of Spiritual Life

Religious life, therefore, means how to escape from samsara and how to reach moksha. In this respect, Jaina thinkers have formulated their own path of spiritual life called Moksha Marga. 'Samyag Darshana Gnyana Charitrana Moksha Marga'; Samyag Darshana, right faith Samyag Gnyana, right Knowledge, and Samyag Charitra, right conduct ; these three together constitute the path of moksha or salvation. This statement represents the fundamental doctrine of Jainism, the doctrine which differentiates it from the other religious systems.

Some religions promise salvation by mere faith. Others postulate knowledge as a condition of salvation. Some others insist on right conduct as the means of salvation. But Jainism insists on the co-operation of all these three: right faith, right knowledge and right conduct, as the necessary elements constituting the path to salvation.

Right Faith

In this description of the path of salvation, the important word is samyak-right-an adjective qualifying all the three elements of faith, knowledge and conduct. Faith cannot be faith in anything. The term right qualifying nataurally excludes some superstitious beliefs which may not be based upon ultimate reality.

Similarly right knowledge naturally excludes all types of erroneous knowledge. Knowledge vitiated by error or illusion cannot be considered as a proper guide to the path of salvation. Similarly, any kind of conduct cannot be consid ered as a necessary equipment to walk the path of salvation. Hence, all the elements must be based upon the ultimate reality and any deviation from this leads man astray.

Conception of Divinity

According to Jainism, divinity is associated with the revelation of this moksha-marga or path of salvation. Aptha or the Lord is the one who reveals the moksha-marga, the path of salvation, for the benefit of mankind. Out of love and mercy for the multitude suffering with samsara, the Lord reveals mksha-moarga or the path of liberation.

What is the nature of the divine personality who is thus actuated by universal love and mercy in revealing the mokha marga? What are his qualifications to adopt this divine mission? He must be an omniscient being; space and time impose no limitations on his knowledge. This infinite knowledge he acquires by an elaborate process of yoga or spiritual discipline. By the practice of yoga and developing dhyana or contemplation on the pure self, he is able to destroy all the bondage due to karmas.

So long as his pure self is hidden by the dense cloud of karmas, its brilliance, its true nature, is completely hidden. When the karmic bondage is broken by tapas bondage of the self

is dispersed. Then the pure self shines forth in all its brilliance which is in the form of infinite knowledge. Then, the divine personality becomes the All Knowing, Sarvagnya. In different periods of the world's history, such divine persons appear on the stage. They revive the Dharma. They reveal the path of salvation to people submerged in samsara who, out of ignorance, revel in sensual pleasures.

The divine personality who, after destroying the karmaic bondage, obtains infinite knowledge, does not quit the world satisfied with his personal achievement. On the other hand, he spends the rest of his life in teaching people the truth which he realised ; he devotes his time and energy going from place to place inspiring people to turn to the right path so that they may save themselves ultimately This period of his life is called dharmaprabhavana, propounding the Dharma to men and women.

Such a divine personality who, after destroying the karmas, obtains omniscience and is engaged in preaching Dharma, leading the people in the path of salvation, is considered Aptha, or the divine Lord, by the Jains. He is worshipped by them as God:

मोक्ष मार्गस्य नेतारम्
भेतारम कर्म भूभृतम
ज्ञातारम् विश्व तत्वानाम्
वन्दे तद्गुण लब्धये ।।

This is the adoration of God expressed by one of the great Jain saints :

"Him who is the leader in the path of salvation,
Him who destroys the huge mountain of karmas,
Him whose knowledge apprehends the whole of reality
I worship with the object of obtaining similar qualities for myself".

Tirthankaras

Such divine personalities are called Tirthankaras by the Jains. After performing the merciful duties of preaching Dharma to the people, this divine person quits the body and becomes pure self or Paramatma. When the self attains its pure nature and is completely liberated from all bonds of karma, he becomes Siddha or the perfect self.

(Courtesy-Diocesan Press, Madras.)

(*Continued from page 243*)

protection by sword, spreading knowledge by writing, agriculture, architectural construction and teaching. All these activities cause bondage, to get rid of which the above religious practices are prescribed. But liberation of the self cannot be attained by them. Only by constant meditation on the Self can one be liberated.

"Have implicit faith in the teachings of the Jinas. Every word of it can lead you to liberation. Believe it, this is the true teaching: everything is possible only by self-meditation and by nothing else.

The Essence of Dharma

"Brothers. Through other means, one can obtain a kingdom, pleasure, wealth and progeny, but attainment of liberation is possible only through self-meditation. Without this one cannot realize salvation.

"This is the essence of what I have said above; mercy is the root of Dharma. The foundation of Jain Dharma is Truth and Ahimsa. People pay lip-service to the principles of Truth and Ahimsa. But can hunger be quenched by just uttering the name of food ? Hunger can be quenched only by eating food. One must practise what one professes. Practise truth and non violence. Other things will automatically follow. Truth is the root of righteousness and Ahimsa of mercy. Don't inflict pain on any living being. This is a thing of mercy. This is a thing without which there can be no emancipation."

Sallekhana Is No Suicide

By A. K. Jain

Shri Akshaykumar Jain, Editor of the leading Hindi Daily 'Nav Bharat Times' clears certain misconceptions about Sallekhana in this straight forward and lucid article. Contrasting Sallekana and suicide, the author clinches they argument by establishing the fact that Sallekhana is 'the best way of meating death like a victor where as suicide is the outcome of defeatism and despair.

There seems to be a misconception about Sallekhana in certain minds. Sometime back when Acharya Shanti Sagar adopted Sallekhana this question came up again for discussion. In fact the true idea behind Sallekhana is that when a human being comes to feel that his physical self has begun to decay and in near future the ultimate end to it may come, he prepares to welcome death like a man and not like a beast who has to succumb to the natural termination of the body.

Everybody who takes birth is to die. When we know this even then we are terrified of the hard fact. Sallekhana is not suicide. It is a pure way to end one's self in readiness and without any fear of death.

When a man thinks of committing suicide he does not find himself courageous enough to face certain realities and facts of life and situation. He wrongly feels that he has no other option but to end his life. He does not remain capable of thinking rationally and does the crime trying to hide it from others. Some people under absolutely wrong notion take only this face into consideration thatin both cases—suicide and Sallekhana—the last result is death of the person. And some go on to say that the man who pursues Sallekhana should be dealt with legally.

In Sallekhana the sagacious person foresees that his eyesight is gone or some of the parts of the body have ceased to perform their duty. Old age is compelling him to take service from others to exist. There is some incurable disease. Or the body which is a means to attain 'Completeness' is not properly functioning. All these are notices and indications of coming death. He does not submit to the situation. Boldly, courageously and knowing that the ultimate aim of life is to attain 'Nirvana' he tries to be self sufficient in the sense that he wil not like to be dependent on others—men and things. He gradually limits the outwardly things and finally stops taking them completely, to live in the most natural manner. He gets ready to change this physical body itself with a new life which awaits Death. Without any fear, passion or sentiment he awaits the next birth to come when he will be in a better position to fulfill his aim of completeness.

Death is only for compounds whose dissolusion is termed as disintegration and death while a living organism is a compiound of sprit and matter. Dying in a proper way without fear or sentiment develops one's will which becomes a great asset for the future life of the Soul.

(*Continued on page 255.*)

'SAMADHI-MARAN'-THE IDEAL DEATH

S. C. DIWAKAR

Shastri, B.A., LL. B., Nyayatirtha, SEONI.

"Life becomes livable only to the extent death is treated as a friend, never as an enemy", wrote Mahatma Gandhi once. The learned author of this brilliant treatise on Sallekhana, proves on unassailable grounds that death by Sallekhana as practised by Jain Saints is, in the fullest sense of the term, conquest over death.

Every individual in this world is acquainted with the ferocious and awe-inspiring death. When the Great Buddha, in dream observed a man in the clutches of death his heart became digusted with temporary pleasures of the world and he renounced royal splendour to embrace the life of a recluse. Not only human or sub-human beings are victims of death, but the gods and goddesses are not exception to this universal law. The Buddhist philosophers point out that all substances are momentary, therefore they die the next moment. All objects are in the jaws of death. Shelley's remarks are note worthy:—

'Death is here and death is there,
Death is busy everywhere,
All around within beneath,
Above is death—and we are death.'

The epicurion suggests us to forget all about death and devote ourselves licentiously to the luxuries of the universe. He admonishes us against the hardships of penance as futile and encourages us to eat drink and be merry. The philosophy of the materialist has been succinctly expressed by the poet thus :—

'While life is yours, live joyously,
None can escape Death's searching eye,
When once this frome of ours they burn,
How shall it e'er again return ?'

Frankly speaking almost all people are obsessed with the above ideal of the materialist and so they are addicted to sensual gratifications.

The Immortal Substance

The spiritualists have stronger and more convincing grounds to hold that the living subs tance is in fact immortal and it goes on its un-ending journey from one body to another from infinity. The soul has to reap the harvests of its noble or evil deeds and in consequence thereof it becomes happy or distressed. As the soiled, rugged and rotten clothing is discarded and is replaced by a better and more decent dress without affecting the identity of the person, similarly the soul sheds away its wornout frail and emaciated mortal coil and puts on a fresh body in accordance with his past activities and mental dispositions. In common parlance this abandonment of the body is deemed as death, which is wrongly interpreted by the ignorant as the distruction of the Self. The

wise comprehend that the soul's existence and immortality remain intact and they are unperturbed by the decay and destruction of the physical frame. The general rule applies to all living substances that what is existent can not be nonexistent. Naturally therefore the decay or death of the body does not effect the inherent nature of soul. The immortality of soul has been thus chanted by Wordsworth:—

'Our birth is but a sleep and forgetting,
The soul that rises with us, our life's star
Hath had elsewhere its setting,
And cometh from afar......'

This grand truth that the soul is in fact immortal and lifeless matter cannot shower any blessing upon the soul nor can it cause any disaster or calamity is not kept in sight by the worldy-wise man, therefore he wastes all time and energy in terrestrial and evanescent materials to placate the body and provide it with all possible luxury and comforts. The hedonists make all endeavours for pleasures of the body and they even put to shame the brutes in their vile and vicious efforts. To achieve their sense-gratification they feel no compunction to kill innumerable fellow beings. In their impossible and futile endeavours to postpone death for their fleeting soul in this mortal coil they undergo all privations and indescribable pangs vainly hoping, that ultimately their desire will be fulfilled, but only disappointment comes to their lot.

Detachment of The Wise

The wise do not live in fool's paradise since they from the very beginning understand that our chase after material comforts and luxurious living is in fact similar to the mad race of a thirsty deer for water in the mirage of a sandy desert. The person equipped with right and scientific vision of the affairs of the world treats the soul's stay in the body as a show of some drama, therefore he develops the attitude of thorough detachment from mundane matters and sincerely exerts to acquire his divinity, immortality and omniscience accompained by everlasting bliss of Nirvana. As long as the soul is immersed in the mire of attachment, anger, aversion, infatuation, greed, vanity and similar other evil inclinations and does not discriminate between his body and soul, there is no hope of any progress on the path of spiritual evolution and unfolding of divine tresury ef godhood and beatitude. He should not be a slave of senses, and animal appetites, but he is required to curb his passions and have complete control over mind and senses.

His outlook undergoes wonderful change in all walks of life. He aspires for liberation from material possessions and passions, which perpetuate Karmic thraldom and bring about his transmigration in this world. He gives up all fear of death. He has learnt a new lesson from Lord Jinendra that Samadhimaran-death with mental peace and equanimity should be aspired for, since it ultimately leads to immortality and bliss. To achieve this object he has to keep his whole life regulated, disciplined and fully controlled. He begins to love death and treats its arrival as the greatest and sublimest festivity of life, whereby he can carve out most glorious future marked with unprecedented development and undreamt of blessings, but he is not entangled in these lovely bounties which are created by auspicious karmas. He acquires that balanced and scientific vision whereby he is not elated by prosperity or dejected by penury or privatians in life. His mental equilibrium remains unperturbed against all odds.

He takes necessary care of his body, nourishes it properly when it is in order, but when it is indisposed he provides it with necessary treatment to acquire its vitality and vigour. When inspite of all care, precaution and fond-

ling the frame goes on taking undesirable turn and rapidly decays giving a definite assurance and intimation that it won't survive any more under all circumstances the wise is admonished not to waste his moment and energy in his hapless and futile efforts to fulfil the freeks of his frantic frame and its comforts bur to vigilantly utilise every precious moment to uplift the soul and guard it against the onslaughts of vicious thoughts and debasing tendencies.

Ignorance And Fear

The thoughtless ignorant soul remains engulfed in stygian chaotic darkness for it foolishly shudders with fear to have a peep into the intrinsic attributes of the pure and perfect soul. If he happens to grasp the basic truth that this material world is not related to the conscious self in any way all joys and sorrows due to success and failures, victory or defeat, prosperity or adversity vanish in no time. He will be soon released from the agonies of the successive births and deaths and enjoy the ambrosia of perpetual bliss and everlasting life of perfection and purity. He should come out of the dark den of attachment for non-soul and realise the fact that the matter is neither the kith nor the kin of the soul. He should muster all courage and take inspiration from the soul which is imbedded with infinite power, concentrate upon his divinity, which has been lost sihgt of due to his absorption in dead and deceiving material eosmic panorama. When he observes that his body is decaying, the senses are not functioning properly, the sharp intelligence is becoming dull and the mind is shrou ded with infatuation and delusion, he vigilantly sees that his soul is not robbed of its sublime virtues by the domination of animal passions.

Soul's Invincibility

The great Jain Yogin Acharya Kundakunda reminds us of the divine sermon that every soul is blessed with infinite knowledge, bliss, conation and power and not even a particle of matter is related to it. Divinity is the birthright of every living being. When the aspirant valiantly wages war against ignoble mental dispositions and spiritual hindrances of ignorance delusion and passions, the terrifying and awe inspiring demon of death disappears. His conviction upon soul's invincibility is not disturbed by Himalyan hardships. The scriptures point out that a person equipped with right faith and scientific attitude of life attains liberation in seven or eight incarnations on this waeful world if he is blessed with Samadhimaran-death with equanimity. This unique type of death ultimately leading to immortality blesses very few fortunate beings—hardly one out of millions. History relates that the great Mourya Emperor Chandragupta, grandfather of Priyadarshi Ashoka had relinquished royal pleasures and embraced the life of a nude Jain anchorite and had the good luck to leave his mortal coil by pious death known as Sallekhana. This fact has been recorded on the Chandragiri hill in the renowned Jain cultural seat of Shravanbelgola (Mysore State). The inscriptions of the said sacred hill also relate that several saintly figures had died with peace and serenity there.

In the Jain sacred literature of remote past we have reference of saints and noble laity, whose progressive and prosperous lives ewer adorcee with this ideal death. Poet Jinaskn points out in his great Sanskrit work Mahapurana that Lord Rishabha Dev the first Jain Tirthankara in his previous incarnation was known as king Mahabala, who attained heaven after his fast unto death for twentytwo days with remarkable peace of mind and serenity.

The Monster of Materialism

In our present world the monster of materialism has caught hold of all nations in the form of mars and mammon that people think

शान्ति की मूर्ति आचार्य श्री

आचार्य महाराज शान्तिमय मुद्रा में
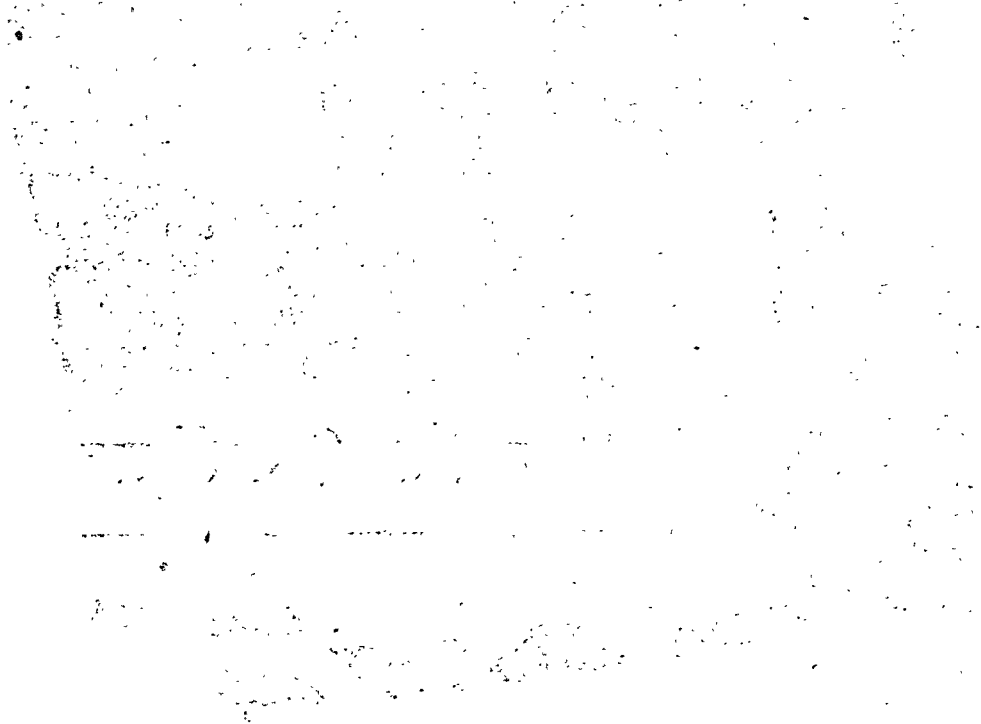
themselves more to be machines than souls blessed with divine attributes. It is surprising to learn that even in this age we had in our midst the great saint His Holiness Charitra Chakravarty Acharya Shantisagar Maharaj, who had taken the great vow of Sallekhana penance at the age of 84. when his body became a hindrance in his ideal observance of the highest type of non-violence, since his sight had become much dimmer. His mighty soul left the mortal coil after 35 days' fast. The saint had given up all food and during the last period of fortnight he had abandoned even water. When I approached the saint and prayed for giving some information about himself of that period of unique penance, His Holiness had said "I do not feel any pang of hunger or thirst nor do I experience any trouble or inconvenience. I feel as if I am sitting in my own castle undisturbed because I am constantly devoted to self-absorption and meditation." I had spent 26 days at the feet of the great sage and I am reminded of John Donne's verse, which appears to give expression to the mental picture of such noble minds who fearlessly face death. The poet sings:—

'Death be not proud, though some have called thee
Mighty and dreadful, for thou art not so,
For those, whom thou think'st thou dost overthrow;
Die not, poor death, nor yet canst thou kill me..
...Death, thou shalt die.'

Westerners like Rice, Stevenson and many an Indian under western sway unable to fathom the real significance of this pious death find fault with it and dub the same as suicide pure and simple.

Baseless Charge

This charge is baseless and erroneous and is the outcome of ignorance of the real state of affairs. The aspirant resorts to fast unto death, when he is sure of the fact that his end is drawing near and that his unavoidable circumstances are such that he cannot faithfully and sincerely fulfil his sacred vow of non-violence-Ahinsa towards all creatures great or small. He as an honest and honourable person has no other alternative but to rejoicingly invite death, rather than pass his time as a miserable, downhearted coward and lead the life of disgrace calumny and sin. Poor and weak souls are unable to understand his commendable stand and invincible courage against the horrors of dreadful death, therefore they cast aspersions against those, whose feet should have been venerated and adored by them with due devotion. In suicide one aims at finishing his life immediately being moved by low passions and evil inclination, but in the case of Sallekhana or Samadhi-Maran the aspirant has not the least desire to bring his end immediately. His aim is to take care of his sacred vows and moral obligations. As he gives top-most priority to that activity which elevates the soul, he has no time or energy at his disposal to lavishly spend it for foul and fifthy frame. In pious death the the saint is inspired by lofty and sublime ideals of purity, peace, compassion, self-control and the like. The sinner condemned by suicide is the victim of evil propensities like anger, lust, greed, pride, disgust, disgrace, infatuation etc. Due to his low morals and mental weakness he is unable to see the world in the face and feels that by the entrance into the den of death, he will improve his lot, therefore he cuts the cord of life by hook or crook without minding the evil consequences in the life hereafter.

The view of the sage on the proximity of death is that of a hero, when he is assailed by hordes of robbers. This spiritual hero crushes evil inclinations and acquires sober and serene attitude. He rivets his attention upon the soul, He neither longs for death nor does he desire

to prolong his life. Being motivated by noble and sublime ideals he shuns all attachment for friends and relations. He believes that the soul has been all alone wandering in this world. The association of friends is similar to the assembling of birds upon a tree in the evening and which fly away in different directions on the arrival of dawn. He gives up all desires for deceptive pleasures of the senses. He detests even the pleasures of the Lord of celestials. He aspires the bliss of beatitude and immortal life. A wise merchant, this pilgrim on the path of liberation, when his ship of body dashes against destructive rocks, shrewdly leaves the ship and cautiously moves to the shore with his valuable treasures. Therefore when the non-violent sage sees that his body is not helping the soul for achieving its inborn and natural attributes, on the other hand it is acting as an impediment to spiritual progresis he pays no heed to the needs of the body, which was rightly called by St. Francis "brother ass". In this respect the remarks of Rai Bahadur Jusice J. L. Jaini are worthy of attention:— "An incurable Jain Saint gives up food because it cannot be got without breach of his vows. He cannot be false to his vows. Even to seae his life he does not want to kill himself. That will be sinful suicide. But he has no attachment for the body and does not want to waste his time in irreligious efforts to prolong it. He gives himself upto the calm of renunciation and thus he meets his end like a self-controlled joyous hero."

The Swan and the Heron

The Samadhi-maran is like a charming innocent swan moving in a pure and calm pond whereas suicide is akin to a heron, which has the beauty of the swan but whose cruel characis soiled with the blood of innumerable small acquatic creatures. The rules framed by our legislators forbidding suicide cannot come in the way of the sage who takes recourse to the greatest penance for spirtual purity and safety against the forces of evil and violence. The self-controlled and highly cultured lives of these monks illumine all humanity like a light-house in the sea. The mental attitude of these heroes has been depicted thus by Poet Dryden :-

"Death has no power the immortal soul to slay,
That when its present body turns to clay,
Seeks a fresh home and with unlessened might,
Inspires another frame with life and light."

The person with firm faith in soul's immortality on the eve of death bids farewell to all world with its blessings, beauties and bounties and gives up all desires. The great Jain Saint Shanti Sagar Maharaj in the course of his Sallekhana penance had told me that he had no desire for even his Nirvana—Liberation, since desire is the ultimate cause of soul's wanderings in this woeful and miserable world.

Gandhiji's Words

The sage treats death as the best friend because it is through death only that the soul enjoys the fruits of his noble actions and penances. In this connection Gandhiji's words are very pertinent and enlightening—"*Life becomes livable only to the extent that death is treated as a friend, never as an enemy. To conquer life's temptations summon death to your aid. In order to postpone death a coward surrenders his honour, his wife, his daughter and all. A courageous man prefers death to the surrender of self-respect*" (*Tendulkar-The Mahatma. Vol. VIII P.* 249.)

The following observations of the great Jain scholar and philosopher professor A. Chakravarty clarify all doubts in this regard: "This Sallekhana Vrata is taken by persons who are in the jaws of death, and who find no escape therefrom. When they realise that they have only a short span of life in this world after

realising that they are not going to be saved from the jaws of death, they take a vow that they will not take any more care about their wordly possessions including their own body in order to spend the remaining valuable short span of life in devotion and worship and purifying of heart and not to be worried by anything else. This Sallekhana is very often misinterpreted as meaningless starvation to death or as killing oneselfp-a conduct which is quite inconsistent with the principles of Ahinsa. While preaching mercy and love to all living creatures inflicting pain or himsa on oneself will certainly be an inconsistent course of conduct. But Sallekhana is not such a voluntary pain on oneselfas an end in itself. On the other hand, it is just an attempt to better one's own spiritual condition, when the end is realised as inevitable. (Neelkesi—Tamil work's introduction pp. 160-161)

In this connection it is to be noted that ordinarily a monk takes every care for the preservation of the body because it is of primary use in his penances and supreme type of meditation. This human form is deemed superior to the bodies of celestials because man's body is such whereby all sorts of penance can be practised and the huge forest of karmas can be burnt in the conflagration of concentration. Therefore if the body prolongs it will help the saint in his mission of self-purification and shedding away of karmic shackles which hinder soul's progress towards attainment of Divinity, But when the saint sees that now his body is becoming inimical to soul's progress and it is going to destroy all his treasures acquired by penances and pious practices, he bids adieu to the body and devotes his full attention to Self. This wise and commendable step of the saint is known as Sallekhana, okhen the passions weaken like the body which becomes emaciated and weaker every moment for want of nourishment but the soul-power is increasing wonderfully and the host of karmas acquired in several past incarnations is rapidly destroyed. This state of affairs promises most brilliant career of the soul from every standpoint. Marvellous are the results of this Sallekhana, and therefore every aspirant prays for Samadhi. maran—the ideal death.

(*Continued from page 247*)

Soul as a simple substance survives the bodily dissolution and death.

This sort of facing death is not a way peculir to Jains only. Almost all the religions of this land prescribed it because that is regarded as a higher from of death. In Manu Smriti it reads:

'On the appearance of some incurable disease and the like, facing north-east and maintaining himself only on water and air, and established firmly in Yogic contemplation, he should move steadily onwards till the body falls down. This mode of dying, termed Mahaprasthan, is the one enjoined in the Scripture. Therefore, it is forbidden to die in contravention of the prescribed from.'

In European countries suicide (this sort of welcoming death happily) was legalised and practised freely in ancelnt times. Plato permitted it 'when the law required it and also when men and women had been struck down by intolerable calamity.'

Epicurus asked men to 'weigh carefully whether they would prefer death to come to them, or would themselves go to death.'

There can be no two opinions on this point that the latter way is preferable.

The views of Senecca's come nearest to Sallekhana. He says:

'He who waits for the extermity of old age is not far removed from a coward...........I will not relinquish old age if it leaves my better part intact. But it begins to shake my mind, if it destroys its faculties, only if it leaves me not life but breath, I will depart from the putrid and tottering edifice. I will not escape by death from disease as long as it may be healed and leaves my mind unimpaired. I will not raise my head against myself on account of pain for so to die is to be conquered. But if I know that I must suffer without hope of relief I will depart, not through fear of pain itself, but because it prevents all for which I live.'

Thus we see that there is a world of difference between suicide and Sallekhana which is decidedly the best from of death. traditionally accepted by all those who understand death and life. Let us live and not exist. This feeling is the incentive for adopting the best way of meeting death like a victor and not like a vanquished.

A Transcendental Saint

PROF. LOTHAR WENDEL

In this sweet reminiscence, Prof. Lothar Wendel, a German scholar and spiritualist, has portrayed the picture of Acharya Shanti Sagar Maharaj, stressing both his worldly majesty and transcendental splendour. The unique angle through which Prof. Wendel looks at the rare personality of the Acharya, adds to he charm and depth of his thoughtful pen-picture.

It was on my way to *Shravanabelgola*, where I had an opportunity to attend the *Puja* of the *Gommateshwara Statue*, that I heard first of saint *Shantisagarji*, who was considered as the most outstanding personality of Jainism in our days. It was my friend A. K. Diwakar, who told me so and his brother Sumerchand Diwakar, author of a voluminous work on the great saint, was of the same opinion. So I longed to have an encounter with this great personality.

In a certain sense my sojourn at *Shravanbelgola* was a preparation for my encounter with Shri Shantisagarji. It seems that great art stimulates for the encounter with great men. Both experiences, the *darshan* of the Bahubali Statue and the *darshan* of the grand old man whom I met later on at *Warsi*, near *Sholapur*, were interconnected. I have seen twice the *Gommoteshwara statue* of *Shravanabelgola*; at noon time and at night. At noontime it seemed to be fused with the beautiful tropical landscape, beaming with fertility and life by which it was surrounded, throning on a steep rock, unsurpassed in its majesty.

At night time, which revealed the profoundest source of this majesty, it seemed to be fused with the starry sky; nay. with the whole universe, symbolising the great idea of the cosmical man, so beautifully conceived and expressed in a perfect literary form by *Prof. Heinrich Zimmer*, in his work on Indian philosophy.

Both features we find—and I myself was struck by this discovery – in Shantisagarji. In his features and gestures and in the impressions he produced on his surroundings, there was something of the majesty of an old king. At the same time one felt that this majesty, which was not due to the pageant of a royal status, was the effect of a lofty detachment from all that is worldly and of a style of living which surpassed already the narrow limits of worldly life. He was in fact a cosmical man, whose life on this planet seemed to be a short interval. I remember still the words, with which he defined the meaning of Ahinsa : 'Ahinsa is'—so he told me, 'purity of the Soul.' These words stand for his lofty conception of Ahinsa. He who was a most austere observer of self-imposed rules, the *Mahavratas*, was always conscious that all *vratas* were not an end in themselves, but means of realisation.

Another feature he seems to have in common with the monument of *Shravanbelgola*. When I saw the great *Bahubali* monument at noon-time it struck me that it did not cast any shadow. First I thought that this was only a display of an astonishing technical skill. Later on it dawned on me that it was much more than a technical achievement. This shadowlessness was a symbol of Bahubali as a Hero of Light, which is so pure, so immaterial, that it does not cast any shadow.

This was also the impression produced by Saint *Shantisagarji.* He was beaming with an inner light, which seemed to be without shadow. He was perhaps the most advanced among the Jain saints in our days.

He was so important a personality that even worldly cleverness symbolised by the snake, which seems to have been so very much connected with his life that it appeared in a miraculous way three times before his death and immediately after, could not overlook him.

The *Sallekhana* of *Shantisagarji* brings home an important lesson to all of us : Due to the experience of two World Wars, humanity has become quite accustomed to the nearness of Death. The work of a great writer like *Thomas Mann*, bears witness to this familiarity. What we have still to learn is to become familiar with life as an eternal triumphant over death and despair. That is the optimistic note which strikes the death of the famous Saint.

Sallekhana Through The Ages

by

Shri Kamta Prasad Jain, D. L., M. R. A. S.
Editor, 'The Voice of Ahinsa'

"Right living and an intelligent and peaceful departure from hence" is the basic conception of life laid down in Jainism, according to the learned author of this instructive articlas. Quoting at length many precedents on Sallekhana from early history, the author concludes that "Acharya Shanti Sagar was a living example of this Jain conception of life."

"We need men who will teach us first how to live. Living quite invariably precedes dying. This also is true that when we once know how to live, and live in accordance with what we know, then the dying, as we term it, will in a wonderfully beautiful manner take care of itself"—so wrote Ralph Waldo Trine. And he was right to lay stress on a right living for getting and intelligent and peaceful departure from the particular sojourn in life of this planet. Jainism, in fact, is a way of life, as it teaches the man to live a successful life by adhering to the blessed principles of Truth, Ahinsa and Anekanta and to die also in a wise manner observing the vow of Sallekhana. Shri Acharya Shanti Sagara was a living example of this Jaina conception of life. He lived a beautiful saintly life and departed elegantly like a brave soldier. So when we are here to commemorate his glorious and idealistic example, it is but natural for us to peep into the past and see how the principle of Sallekhana had influenced the Indian life.

Is Sallekhana Suicide ?

But the reader may ask here that what is this Sallekhana ? Is it a kind of suicide, as some scholars have interpreted it ? Certainly not. Rather it is an elegant and elevated form of bidding leave consciously to the mortal coil without any tinge of passion or fear. It is a peculiar rite of the Jainas which leads the man to Moksha or liberation from the miseries of earthly existence. Lord Mahavira declared with an accent of psychology and logic that 'death, willing or unwilling, is inevitable, the latter belongs to helpless fools, the former is called Pandita-marana or death according to wise men' × What could be more logical then, than to train the soul like the caterpillar to slowly shed of life for a man. according to Jainism, is to attain immortality and beatitude. Every living being—man, animal, vegetables and minerals—is made up of soul and body : matter is the cause of the bondage of the soul. So the liberation of the soul from material bondage is the idea of life for a Jain. Both monks and laymen attempt to realise it : the monks in a direct form devoting their whole energy and time for it and the layman attempts partially in an indirect form according to his means and spiritual advancement. Both attempt to conquer flesh, with which the Death is attached. So both of them are

× *Uttaradhyayana—Sutra, V. 20—24.*

expected to observe Sallekhana at the closing moments of life. × ×

Thus the principle of Sallekhana should be distinguished from suicide. This vow is never taken in a passionate mood of anger, deceit, greed, disgust etc; but it is undertaken only when the body is no longer capable of serving its owner as an instrument of Dharma and when the inevitability of death is a matter of undisputed certainty and that too with the permission of the Guru—and according to rules. ∵

Bhadrabahu and Chandragupta

This principle of Sallekhana has played a very important and vital role in the Jaina Order since even prior to the days of Lord Mahavira, the last Tirthankara; but we are concerned here with the historical times only. During the life -time of Tirthankara Mahavira himself, his prominent disciples observed this vow and the example set by them was observed by those who followed him.

The Jaina annals declare unanimously that the great monk Shruta Kevali Bhadhrabahu was the teacher of the Mauryan Emperor Chandragupta, who retired to South India and observed Sallekhana at Sravananbelgola. At Shravanbelgola, there is the hill of Chandragiri, with its cave of Bhadrabahu and the Chandragupta Basti temple on the facade of which are carved ninety scenes from the lives of Bhadrabahu and Chandrdgupta. In the cave are carved the blessed lotus feet of the great Teacher. where he performed Sallekhana. A lithic inscription of the 6th century A. D. records this event in the following way :—

"Bhadrabahu Swamin......who was acquainted with the true nature of the eightfold great omens, and was a seer of the past, present and the future having learnt from an omen and foretold in Ujjaini a calamity lasting for a period of 12 years, the entire Samgha (order) set out from the North to the South, and reached by Degrees a country---fitted with people,......gold,......and herds of buffaloes, goats and sheep.........Then separating himself from the Samgha an Acharya Prabhachandra by name.........desiring to accomplish Samadhi, the goal of penance associated with right conduct, on this high peaked mountain-Kotavapra, bade farewell and dismissed the Samgha in its entirety and in company with a single disciple mortifying his body on the wide expanse of the cold rocks, accomplished samadhi and in course of time, seven hundred Rishis or saints (similarly) accomplished (Samadhi)." (Epi. Carnatica, II pp. 1-2-)

It is evident from this record that not only Bhadrabahu, but his royal disciple Chandragupta also performed Sallekhana at Katavapra hill. And after him no less than 700 monks observed Samadhi. A good many number of epitaphs recording these events are available at Shravanabelagola, some extracts of which we reproduce here:—

1. "Muni Charitshri after observing the vows of a monk and destroying sin, ignorance and perverse knowledge, attained

× *Firm faith in Jainism, observance of Anuvratas and Siksa-vratas and Sallekhana according to rules at the time of death —these complete the duties of a householder.* *Ashadhara, Sagaradharmamrita.*

∵ *See the Sannyasa — Dharma by C. R. Jain.*

the final beatitude. No. 3(12) of Saka-Era 632".

2. "Ugrasenaguru of Matamir, who was the disciple of Pattini-guru, observing a fast of full one month, accomplished Sannyasa (Samadhi)." No. 8 (25) Saka Era 622.

3. "Jaina-guru Shantisha, having restored the Jaina faith, which had become weak, to its flourishing condition, as it was under Bhadrabahu and Chandragupta, conquered the demon of rebirth." No. 17-18 (31) Saka Era 572,

4. "Having relaised the Truth that beauty, life-sojourn and wealth are transitory like rainbow, lightning and the drop of dew, Muni Nandisena accomplishing Sannayasa went to heavens." No. 26 (88) Sakae Era 622.

We need not multiply these instances; but we would point out the fact that the practice of Sallekhana Sannyasa or Samadhi was not limited to the order of the monks onl y: even great kings, generals, merchants and women of all status observed it with due fervor and devotion. Let us have a glimpse of this religious practice of exemplary strength and devotion.

Jaina Monarchs Observed Sallekhana

Among the ruling monarchs we get the earliest mention of Samdhi in the Hathi-gumpha inscription of the Kalinga-monarch Kharavela. He seems to have observed it or anyhow provided all comforts to those who were engaged in observing this rule!

(i) King Marasimqa

Then among the Gangas of Talkada in South India we come across a great patron of Jainism. He was King Marasimha Guttija Ganga, who reigned from A. D. 961 till 974. He was a great ruler and fought out many battles successfully in order to defend his people. He maintained the Doctrine of Jina and caused to be erected at various places the Jaina temples and pillars. Now in the closing year of his life, Marasimha "having reverently carried out works of piety, relinquished the sovereignty and observing the vow of Sallekhana for three days with the rites of worship in the presence of the holy feet of Ajitasena Bhattaraka at Bankapura accomplished Samadhi." He became a hero of spiritual realm as well.

2. King Indra

Among the Rashtrakuta Kings of Malkhed there were such prominent ruler as Amoghavarsha, who were devout followers of the Jaina religion. It is said about Amoghavarsha that he, after renouncing his kingdom became a Digambara Jain monk and performed penances.× As a monk, he must have observed Sallekhana.

Indra IV was the last ruler in the house of Rashtrakuta kings, who was expert in the game of polo and who died by the method of Sallekhana in A. D. 982. On the specified date having observed the vows with an undisturbed and peaceful mind, the world renowned Indra Raja, praised by the people, gained the great power and the glory of King of all celestial beings, i. e. Indra. ××

Jaina Generals Conquered Death

There has been, also, a galaxy of brave generals of the Jaina belief, who glorified their country and religion by their acts of bravery and piety. Chamundaraya, Ganga, Hulla and others were those generals who were in fact the pillars of Jainism and they observed the vows. Dandanayaka Singana of Uddhare was also a great devotee of Lord Jinendra. He

× *Saletore, Mediaeval Jainism p. 98*

×× *Ibid p. 40.*

was called Jain-Chudamani, since he was a hero of battle-field as well as of the spiritual sphere. He accomplished Samadhi just meditating upon the Lotus-feet of Lord Jinendra. (EC. VIII, Sorab, No. 149)

Women As Spiritual Heroes

Women have been an important factor in the formation of the Jaina order and they have been ever the great defenders of the faith. So they were not behind anybody in observing the vow of Sallekhana.

1. Jakkiyabbe

Matasamanta Kalivittarasa was ruling over the province of Banavase in Mysore State as a fudatory of the Rashtrakuta King Krisna III in A. D. 911. He appointed Sattarasa Nagarjuna as the Nal-gavunda officer of the Nagarkhanda. When he died at the age of 70, his wife Jakkiyabbe was placed in her husband's office. This lady who "skilled in ability for good government, faithful to Jinendra Shasana and rejoicing in her beauty," protected the Nagarkhanda. And "though a woman in the pride of her own heroic bravery", committed an act which won for her still greater renown in the eyes of the Jaina world-so aiserts Dr. Saletore and he informs further on that "when she was thus rulling her principality, 'bodily disease having made inroad', she decided that worldly enjoyments were insipid; and sending for her daughter, made over to her posterity, and freeing herself from the entanglements of the chain of desires, while in the holy place of Bandanike, in full faith performed the vow of Sallekhana and died in the basadi of that city. ∵

2. Pambabbe

Pambabbe, the elder sister of Bhutuga (the Ganga king) was a very austere Jaina lady, who flourished towards the end of the 10th century A. D. She "having made her head bald (by plucking out the hair) performed penance for 30 years, and observing the five vows (with Sallekhana) expired in A. D. 971. The scribe tells us that when the earth honoured her as Bhutuga's elder sister, saying 'Jiva ! what are our commands?' She replied 'All that I have received truely renounced as if never received. Such great was her renunciation.

3-4 Santaladevi & Her Mother Machikabbe

The saintly figure of Santaladevi, the queen of the Hoysala King Vishnuvardhanadeva, was a towering personality in the Jaina Order of Karanataka. Lithic records found at Sravanabelgola and elsewhere eulogize the beauty, skill, piety and devotion of this remarkable queen. She was called as "the crest jewel of perfect faith" and "a rampart of the Jaina faith" ∵

True to her faith, she died observing the vow of Sallekhana in A. D. 1131 at the holy place of Sivaganga. On her death her parents too died. When her mother Machikabbe came to know about her death, she exclaimed struck with grief: "The queen has attained to the state of gods; I cannot remain behind" and coming to Belgola adopted Sannayasa and died calmly. "The half closed eyes, the repetition of the five expressions (Namokara), the method of meditating on Jinendra, the dignity of taking leave of relations, indicating Sannyasa, Machikabbe fasting cheerfully for one month, easily attained the state of the gods by Samadhi, in the presence of all the blessed, among whom were Prabhachandra, Siddhantadeva, Vardhamandeva and Ravichandradeva. If the queen Santaladevi was an austere follower of the Jinadharma her mother was a still more puriton devotee."

Thus it is evident that the Principle of Sallekhana has played an important part in the Jaina Samgha. It prepared faithful devotees to be fearless and careless towards the wordly attractions. Certainly the one who is not afraid of death, can do whatever he wishes to do. Jainism teaches the man to live humanely in a successful manner and who lives wonderfully can die also beautifully. Acharya Shanti Sagar ji has proved it by his living example. May his sublime example shine as an accomplished Spiritualism-Siddham.

"Cowards die many times before their Death;

The valiant never taste of Death but once."

∵ *Saletore, Mediaeval Jainism, pp. 1955-1956.*

∵ *Ibid p. 157. 4 Epi. Car : II, pp. 60 & 75.*